

प्रकाशक : मन्त्री, सर्व सेवा संघ,  
 राजघाट, वाराणसी  
 सस्करण : प्रथम : अप्रैल, १९६५ : ३,०००  
 द्वितीय : अक्टूबर, १९६५ : ३,०००  
 कुल प्रतियों : ६,०००  
 मुद्रक : ओम्प्रकाश कपूर,  
 ज्ञानमण्डल लिमिटेड,  
 वाराणसी ( बनारस ) ६५१०-२२  
 मूल्य : ३ रुपये ५० पैसे

*Title* : BINA PAISE DUNIA KA  
 PAIDAL SA  
*Author* : Satish Kumar  
*Subject* : Peace Travel  
*Publisher* : Secretary,  
 Sarva Seva Sangh,  
 Rajghat, Varanasi  
*Edition* : First April, 1965 3,0  
 Second : October, 1965 3,0  
*Total Copies* : 6,000  
*Price* : Rs 3.50

## शान्ति के समर्थकों को समर्पित

- हमने युद्ध के विरोध में दुनिया की पैदल यात्रा की ।
- हमने शान्ति और मित्रता के लिए विश्व के एक सिरे से दूसरे सिरे तक सफर किया ।
- दिल्ली से मास्को और वाशिंगटन तक की आठ हजार मील की पदयात्रा में हमें ऐसे हजारों लोग मिले, जो हृदय से शान्ति चाहते हैं ।
- दुनियाभर के श्रमशील मानव एक जैसे हैं और वे युद्ध तथा अणु-अस्त्रों का विरोध करते हैं ।
- शान्ति-यात्रा के सस्मरणों की अपनी यह पुस्तक मैं उन्हीं शान्ति के उपासक श्रमजीवियों को समर्पित करता हूँ ।

—सतीश कुमार



## प्रकाश की य

सैर कर दुनिया की गाफिल  
जिन्दगानी फिर कहाँ,  
जिन्दगी गर कुछ रही  
तो नौजवानी फिर कहाँ?

दो नौजवान—सतीश कुमार और प्रभाकर मेनन एक दिन दिल्ली से निकल पड़े दुनिया की सैर के लिए। पर यह सैर सैलानी-पन की हविस पूरी करने के लिए नहीं थी, यह थी युद्ध की विभीषिका से त्रस्त जनता को अहिंसा और प्रेम का सन्देश सुनाने के लिए और मास्को, पेरिस, लन्दन, वाशिंगटन आदि में बैठे राजनेताओं से निःशस्त्रीकरण की अपील करने के लिए।

और इतना ही नहीं, इस यात्रा की दो खूबियाँ और थी, यह यात्रा थी बिना पैसे की और बिना मवारी की। पैदल, पैदल, पैदल।

कहाँ दिल्ली, कहाँ वाशिंगटन! वापू की समाधि से शुरू हुई यह यात्रा, समाप्त हुई कैंनेडी की समाधि पर।

भारत के दो शान्ति-यात्रियों का बिना पैसे का सारी दुनिया का यह पैदल सफर साहस से तो ओतप्रोत है ही, अपरिग्रह और शाकाहार के मार्ग में आनेवाली बाधाओं से भी भरा पड़ा है। ये यात्री खैवर दर्रे से भी गुजरे हैं, रेगिस्तानों से भी, बर्फीले मैदानों से भी और जंगलों से भी। पेरिस में इन्हें जेल की भी हवा खानी पड़ी है और अमेरिका में इन्हें पिस्तौल का भी सामना करना पड़ा है।

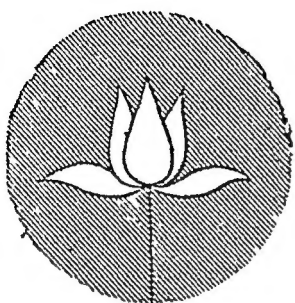
पर, इन सारे अनुभवों की पृष्ठभूमि में सर्वत्र एक बात मिलती है और वह यह कि इन्सान हर जगह इन्सान है। उसके दिल में हर इन्सान के लिए प्रेम है, सहानुभूति है, दर्द है। वह सबके साथ प्रेम से मिल-जुलकर रहना चाहता है। उसे युद्ध नहीं चाहिए, कतई नहीं।

दो-सवा दो वर्ष की इस साहसिक पैदल यात्रा के मनोरंजक सस्मरण और खड़े-मीठे अनुभव जो भी पढ़ेगा, मुग्ध हुए बिना न रहेगा।



## क्रम

भारत से प्रस्थान	७
पड़ोसी देश पाकिस्तान में	३३
अंगूरो के देश	
अफगानिस्तान में	४७
कला और कविता की	
भूमि ईरान में	६९
श्रमिकों की क्रान्ति के देश	
सोवियत संघ में	९७
पोलैंड की प्राणवान	
जनता के बीच	१५९
विभाजित जर्मनी में	१७५
बेल्जियम की सुन्दर गोद में	२११
सगीत, सौन्दर्य और श्रृंगार	
की धरती फ्रांस में	२२१
विचार-स्वातन्त्र्य की भूमि	
ब्रिटेन में	२३७
मान्विक चरमोत्कर्ष के देश	
अमेरिका में	२५५
पूर्व और पश्चिम की	
समन्वय-भूमि जापान में	३०७



ગુરતર સે  
પ્રસ્થાન



पहली जून १९६२ की शाम को नयी दिल्ली में महात्मा गांधी की समाधि से जब हम पैदल रवाना हुए, तब हमने यह फैसला किया कि हम दम-कदम चलकर मास्को जायेंगे, पेरिस जायेंगे, लन्दन जायेंगे और अखिर में वाशिंगटन जाकर अमेरिका के युवा राष्ट्रपति से यह निवेदन देंगे कि आप आनेवाली पीढ़ी को अणु-युद्ध की भट्टी में भस्म होने से बचाने की कोशिश कीजिये। लेकिन आठ हजार मील की पदयात्रा करके व हम ६ जनवरी १९६४ को वाशिंगटन पहुँचे, तो हमने देखा कि राष्ट्रपति केनेडी एक हत्यारे की गोली के शिकार हो चुके थे। वे राष्ट्रपति श्वेत भवन में नहीं, बल्कि स्मशान-भूमि में सो रहे थे। हमने इतनी ठेन और लम्बी यात्रा के बाद जिनसे मिलने की उम्मीद की थी, वे। राष्ट्रपति-भवन में नहीं मिले, तो हम आगे बढ़े और हमने अपनी यात्रा केनेडी की समाधि पर जाकर पूरी की। हम वापू की समाधि से। और केनेडी की समाधि पर पहुँचे। जब वापू ने हिन्दुओं और मुसलमानों को मिलकर रहने के लिए कहा, तो एक हिन्दू ने उन्हें गोली से दिया। जब केनेडी ने काली और गोरी चमड़ी के लोगों को मिलकर

हम दिल्ली से मास्को, पेरिस, लन्दन और वाशिंगटन तक की पद-यात्रा करे ?”

प्रभाकर के मुँह से अचानक एक साहसभरी बात फूट पड़ी। मैंने तुरन्त प्रभाकर की पीठ ठोकी : “शाबास ! तुम्हारी बात मेरे मन में तीर की तरह चुभ गयी है।”

मेरी बात सुनते ही प्रभाकर का जोश कई गुना बढ़ गया। बोले : “पर क्या हम दो ही इसके लिए काफी है ?”

मैंने कहा : “मेरे मित्र, संख्या पर न जाओ, गुण पर जाओ। अगर हम सच्चे दिल से काम करेंगे, तो १ और १ मिलकर २ नहीं, बल्कि ११ जैसे होंगे।”

इसी बातचीत में हमने दो-तीन कप कॉफी पी डाली। बात पक्की हो गयी।

## भाषा की समस्या



मेरे सामने एक समस्या थी। मैं ९ साल की छोटी उम्र में जैन-साधु बना दिया गया था। इसलिए स्कूल में केवल तीन क्लास तक शिक्षा पायी थी। मैंने स्कूल में अंग्रेजी नहीं पढ़ी। साधु बनने के बाद तो मेरी शिक्षा धर्म-ग्रन्थों और संस्कृत तक ही सीमित रही। १८ साल की उम्र में मैं जैन-साधु का जीवन छोड़कर सर्वोदय-आन्दोलन में विनोबाजी के पास चला गया। इसलिए अंग्रेजी की शिक्षा मैंने बिल्कुल नहीं पायी। जब मैंने प्रभाकर के साथ यह तय किया कि हम लोग आणविक अन्तर्-युद्ध अन्धी प्रतियोगिता के चिक्नाफ विश्व की पद-यात्रा करेंगे, तब मैंने मागने मगल आया—भाषा का। क्या बिना अंग्रेजी के यह यात्रा सम्भव है ? मेरे मन का हीन भाव मुझे अन्दर-अन्दर खाता रहा। हमारे अंग्रेजी-भक्त नेताओं ने मानसिक दृष्टि में हमें कितना कमजोर और गलाम बना दिया है। हमका अहंमान मुझे होने लगा। अंग्रेजी को हमने

ऐसी देवी बना दिया है, मानो वही सब कामों को सिद्ध करनेवाली हो । जो अंग्रेजी नहीं जानते, वे अपने-आपको कमजोर, हीन और असहाय महसूस करते हैं ।

प्रभाकर ने कहा : “भापा की कतई चिंता मत करो । हम तो केवल ब्रिटेन या अमेरिका नहीं जा रहे हैं । हमें तो सबसे पहले फारसी और रूसी-भाषी लोगों से मिलना है । चिन्ता केवल अंग्रेजी के लिए नहीं, सभी भाषाओं के लिए करो ।” यों मेरा मन आश्चर्य तो हुआ, फिर भी एक खटका बना हुआ था । लेकिन जब हम ७ हजार मील की पद-यात्रा करके, बारह विभिन्न राष्ट्रों को पार करते हुए अमेरिका पहुँच गये, तब अंग्रेजी के प्रति मेरे मन में जो भ्रान्त कल्पनाएँ खड़ी थीं, वे सब धुल गयीं । मन का खटका मिट गया । सिर पर चढ़ा अंग्रेजी का भूत उतर गया । अंग्रेजी अंतर्राष्ट्रीय भाषा नहीं है, यह स्पष्ट हो गया ।

हमने अफगानिस्तान और ईरान में पाँच महीने तक पद-यात्रा की । इन पाँच महीनों में अंग्रेजी ने रत्तीभर साथ नहीं दिया । हमने एकाग्रता-पूर्वक कोशिश करके फारसी सीखी और उस टूटी-फूटी फारसी ने ही हमारा काम बनाया । चार महीने तक हम सोवियत-संघ में रहे । वहाँ भी हमने रूसी भाषा सीखी । शुरू-शुरू में कुछ कष्ट हुआ । पर जो अभाव खटकता था, वह अंग्रेजी न जानने का नहीं, बल्कि रूसी न जानने का था ।

केवल १४-१५ करोड़ लोगों की मातृभाषा अंग्रेजी है । ब्रिटेन और अमेरिका में भी सब लोगों की मातृभाषा अंग्रेजी नहीं है । हिन्दी-भाषी लोगों की संख्या भी इससे कम नहीं । रूस में यदि हमें अंग्रेजी के दुभाषिया मिले तो हिन्दी के भी मिले । मास्को विश्वविद्यालय में मेरे भाषण का अनुवाद करनेवाली वहन की हिन्दी इतनी शुद्ध और धाराप्रवाह थी कि मुझे भरोसा नहीं हुआ कि वह हिन्दी-भाषी नहीं है । मैंने मास्को विश्व-विद्यालय में भाषण देते हुए एक जगह कहा : “रूस की जनता ‘हमारा’ खूब मदद करती है ।” तुरन्त ही दुभाषिया वहन ने मुझे रोकते हुए कहा : “हमारा मदद ? या ‘हमारी’ मदद ?” मैं आश्चर्य में पड़ गया । उस

तरुणी की शुद्ध हिन्दी देखकर । उसके मुँह से शुद्ध भारतीय स्वर में मीरा-वाई के भजन सुनकर तो मैं चकित ही रह गया । ल्यूदमीला नाम की यह दुभापिया वहन हमें अपने विदेशी भापाओ के महाविद्यालय में ले गयी, जहाँ पचासो विद्यार्थी धड़ल्ले से हिन्दी बोलते हैं । इसी तरह पेरिस में हमारे भारतीय राजदूत ने बताया कि वहाँ संस्कृत और हिन्दी का जैसा विद्यापीठ है, वैसे विद्यापीठ भारत में भी कम ही होंगे । जापान में भी टोकियो और ओसाका विश्वविद्यालय में हिन्दी के अध्ययन की विशेष व्यवस्था है । जब कि भारत के एक भी विश्वविद्यालय में जापानी सिखाने के लिए कोई विभाग नहीं है । इसी तरह अन्य देशों में भी हिन्दी का ज्ञान बढ़ रहा है, पर हमारे अपने ही देश में अपनी ही भापा उपेक्षित और अनाथ पड़ी है । जर्मनी और फ्रांस में हम वहाँ की भापा नहीं जानते थे, इसलिए कभी-कभी तो दिनभर हमें कोई बात करनेवाला तक नहीं मिलता था । अंग्रेजी के बारे में हमने जो ऊँची-ऊँची कल्पनाएँ बाँध रखी हैं, वे सब वास्तविक नहीं हैं ।

इसी बीच मैंने फारसी और रूसी की भाँति अंग्रेजी का भी अभ्यास प्रारम्भ किया । हालाँकि मैं व्याकरण नहीं जानता, अंग्रेजी में लिखने का भी अभ्यास नहीं, लेकिन अंग्रेजी में बात कर सकता हूँ, भाषण कर सकता हूँ । हमें किसी भापा से नफरत नहीं । हम सभी भापाओं का सम्मान करें । अधिक-से-अधिक जितनी भापाएँ सीख सकें, अवश्य सीखें । परन्तु अपने देश की जन-भापा को उपेक्षित करके किसी एक ही भापा के गुलाम बन जायें, यह ठीक नहीं । जो भाई अंग्रेजी नहीं जानते, वे अपने में हीन भाव कतई न महसूस करें । यह ज्ञान मुझे अपने अनुभव में मिला है । मैंने अंग्रेजी नहीं पढ़ी, पर मैं विश्व-यात्रा करने में सफल हुआ ।

मित्रों का सहयोग



हमने गवर्नर पहले वॉशिंग्टन रसेल को और अमेरिका के उन तरुणों को पत्र लिखे, जिन्होंने गवर्नरफ्रान्सिस्को में मास्को की यात्रा की थी । दोनों ने

तुरन्त हमें उत्तर दिया। रसेल ने लिखा कि “आपके मन में यह बात आयी, यही हमारे लिए बड़ी प्रेरणा की बात है। जरूर योजना बनाइये और आगे बढ़िये।” अमेरिका के तरुणों ने लिखा : “स्वागत है आपका ! बस, मन को पक्का कीजिये। बिना बड़े-बड़े नेताओं की तरफ ताके अपनी योजना पर अमल कीजिये। सफलता आपके चरण चूमेगी।” साथ ही साथ इन दोनों ने यह भी लिखा कि “हम अपने क्षेत्र में आपकी यात्रा का पूरा प्रबन्ध करेंगे।” बस, हमारा विचार पक्का हो गया।

हमारे देश के नेताओं के आशीर्वाद का सवाल भी सामने था। क्योंकि विदेश-यात्रा में अनेक औपचारिक दिक्कतें आती हैं। हमने स्व० प्रधानमंत्री पं० नेहरूजी को लिखा। वे उन दिनों आम चुनाव के कारण बहुत व्यस्त थे। फिर भी उन्होंने हमें तुरन्त उत्तर दिया : “इसके परिणाम के बारे में मैं सशक्त हूँ, पर आपका आदर्श ऊँचा है। आपका साहस मुझे पसन्द आया। यह काम बहुत जरूरी है।” इसी तरह डॉ० राधाकृष्णन् ने भी बड़ा उत्साहवर्द्धक सन्देश भेजा। शांति के काम में लगी हुई विभिन्न संस्थाओं को जब हमने अपनी योजना बतायी, तो सभी संस्थाओं ने हमें पूरा-पूरा समर्थन और सहयोग प्रदान किया।

इन सारी तैयारियों के बाद प्रश्न था—आर्थिक संयोजन का। सवा दो वर्ष का लम्बा समय, आठ हजार मील की लम्बी पद-यात्रा, पूरे विश्व की परिक्रमा, इसके लिए कितना धन चाहिए।

इस काम के लिए किसी संस्था से अर्थ-याचना करे, यह भी हमें नहीं ज़रूरी। हमने यही निर्णय किया कि कुछ भी हो, इस काम के लिए न किसी संस्था से धन लेंगे, न सरकार से या किसी निधि से कोई मदद माँगेगे और न कोई चढ़ा करेंगे। जो मित्र व्यक्तिगत रूप से हमें जानते हैं और मित्रता के नाते हमारी मदद कर सकते हैं, केवल उन्हींसे हम सहायता लेंगे। इस बीच मैंने कलकत्ता के अपने मित्रों के सामने इतनी बड़ी यात्रा के लिए होनेवाले भारी खर्च का सवाल रखा। जो व्यापारियों के सामने पैसे का प्रश्न बड़ा कठिन होता है, परन्तु मुझे यह देखकर



आश्चर्य हुआ कि कलकत्ता के मेरे साथी बिना किसी झिझक के हर प्रकार का खर्च उठाने के लिए तैयार हो गये। विदेशी मुद्रा प्राप्त करने का सवाल जटिल था। भारत सरकार के तत्कालीन वित्त-मंत्री श्री मोरारजी देसाई ने विदेशी मुद्रा देने से इनकार कर दिया। पर कलकत्ते के साथी बोले कि आप कोई चिन्ता न करें। विदेश में ही आपको पैसा मिल जाय और ट्रावलर्स चेक के रूप में आप वह पैसा साथ में रख सकें, ऐसी व्यवस्था हम कर देंगे। मित्रों की तरफ से इतना आश्वासन और भरोसा मिलने के बाद मैं निश्चिन्त तो हो गया था, परन्तु यह बात मन में बराबर खटकती थी कि इतने खर्च का बोझ मित्र-मंडली पर कैसे डाला जाय। लेकिन मित्रों का सहयोग स्वीकार करने के अलावा हमारे सामने और कोई चारा भी तो नहीं था।

## पत्नी का साहस

मुझे विवाह किये अभी सालभर भी नहीं हुआ था। मैं इतनी लम्बी अवधि के लिए पत्नी से कैसे दूर चला जाऊँ, यह भी बड़ा कठिन प्रश्न था। उन दिनों जब मैं और प्रभाकर विश्व-यात्रा की योजना बना रहे थे, मेरी पत्नी प्रसव के लिए पीहर गयी हुई थी। ऐसे भावुक और नाजुक समय में अगर मैं अपनी पत्नी से इस विश्व-यात्रा पर निकलने की बात कहूँगा तो उसके मन पर कैसी गुजरेगी, यह सोचते ही मेरा मन कुछ आशंकित होने लगता था। इसलिए दिन पर दिन, सप्ताह पर सप्ताह, यहाँ तक कि महीना भी बीत गया। यात्रा के विभिन्न पहलुओं पर हम विचार-विमर्श करते गये, पर इस सवाल का हल मेरे मन को नहीं सूझ पा रहा था कि गम्भीर पत्नी को इतने लम्बे समय के लिए वियोग में डालकर कैसे जाऊँ? मुझे अपने-आप पर कुछ क्रोध भी आ रहा था कि आग्विर ऐसे मौके पर ऐसी योजना मैंने बनायी ही क्यों? मेरा क्रोध था परी पुनर्प-जाति पर। वहाँ यांग और गन्वास के बताने, कभी साधना और तपस्या के बताने, कभी

पढ़ाई और व्यापार के बहाने पत्नियों को घर पर छोड़कर जाने की परम्परा नयी नहीं है। मैं भी तो वैसा ही करने जा रहा हूँ। जितनी तड़प मुझे इस विश्व-यात्रा पर जाने की थी, उससे कम तड़प पत्नी के साथ रहकर उसका स्नेह पाने के लिए नहीं थी। इसलिए मैंने लम्बे पसोपेश के बाद अपनी पत्नी को दिल थामकर एक पत्र लिखा।

“प्रिय लता,

आज का पत्र प्रतिदिन के पत्रों जैसा पत्र नहीं है। आज के पत्र में स्नेह-उलाहने की बातें नहीं लिखनी हैं। तुम्हें ताज्जुब में डाल देनेवाली एक विचित्र-सी योजना आज लिख रहा हूँ। मैं जानता हूँ कि यह योजना तुम्हारे मन को चोट पहुँचायेगी। फिर भी उसे लिखने का साहस कर रहा हूँ। जब तक इस योजना पर तुम्हारी मुहर नहीं लगेगी, मैं उस पर कोई निर्णय नहीं करूँगा।

योजना यह है कि प्रभाकर और मैं दिल्ली से मास्को और वाशिंगटन की शांति-पद-यात्रा करना चाहते हैं। एक तरह से यह विश्व-यात्रा ही हो जायेगी। इसमें कम-से-कम दो बरस का समय लगेगा। यदि तुम पूरे मन से राजी होकर आज्ञा दोगी, तभी मैं अन्तिम रूप से तय करूँगा। आज दुनिया में जो शस्त्र-प्रतियोगिता चल रही है, उसे खामोश बैठकर देखते रहना मुझसे होता नहीं है। मनुष्य-समाज का एक सदस्य होने के नाते मुझे भी अपनी व्यक्तिगत जिम्मेदारी के रूप में कुछ-न-कुछ करना चाहिए। भले ही मेरा प्रयत्न ‘नकारखाने में तूती की आवाज’ की भाँति विलीन हो जाय। मेरे मन की तड़प स्पष्ट है, पर तुम्हारे अधिकार को मैं पहला स्थान देता हूँ।

पत्र का उत्तर लौटती डाक से देना।

तुम्हारा स्नेहमय  
सतीशकुमार”

मेरा पत्र पाते ही लता ने जो उत्तर दिया, वह पढ़कर मैं आश्चर्य में पड़ गया। लता ने लिखा था :

“प्रियवर,

आपकी योजना साहस और निष्ठा से भरी हुई है। यदि मैं मॉ बननेवाली न होती, तो मैं भी इस शांति-यात्रा में आपके साथ चलती।

अभी हमारे पहले बच्चे का जन्म होनेवाला है। इसलिए इसके जन्म के पूर्व आप कोई निर्णय न करें।

मैं ज्यादा लम्बा पत्र लिख नहीं पा रही हूँ। आपके पत्र ने मन पर तरह-तरह के विचारों का बोझ डाल दिया है। इसलिए यह पत्र मिलते ही एक बार आप मेरे पास तुरन्त चले आइये। यहाँ आने पर विस्तार से बातें करूँगी।

आपकी  
लता”

इस पत्र ने मुझे ढाढ़स बँधाया। मैं अपने-आप पर थोड़ा नाराज था। मेरे मित्रों ने भी कहा कि “तुम लता की और होनेवाली सन्तान की जिम्मेदारी से मुँह मोड़कर भाग रहे हो।” मेरा अन्तर्द्वन्द्व मुझे शांत नहीं बैठने दे रहा था। इसलिए मैं तुरन्त ही लता के पास गया। दो दिन तक उसके साथ विस्तार से बातें कीं। मैंने कहा : “मेरी योजना तुम्हारे सामने है। लेकिन इस योजना पर अमल करने के लिए मैं तब तक प्रतीक्षा करने को तैयार हूँ, जब तक तुम खुद होकर इसे स्वीकार न करो।” इस पर लता ने कहा : “आपके मन में उत्साह और जोश की जो तीव्रता है, वह समय के आवरणों के नीचे दब जाय, ऐसा मैं नहीं चाहती। अब मैं प्रसव के लिए यहाँ पीहर में नहीं रहूँगी। आपके पास बेंगलोर में ही प्रसव होगा। आप तब तक रुकें और उसके बाद यात्रा पर निकलें।” लता के साहस के सामने उस समय तो मैं नतमस्तक हो गया, जब उसने कहा कि “मैं आपके लैटने की प्रतीक्षा करूँगी।”

१० मई को जब मैं दिल्ली के लिए घर में बिदा हुआ, तो लता ने तितक लगाकर, आरती उतारकर मेरे लिए मंगल कामना की। नवजात

शिशु—साधना, जिसका वाद मे मैंने 'यात्रा' नाम रखा, को गोद में लेकर वह बेंगलोर स्टेशन पर आयी और गले में माला पहनाकर मुझे बिदा किया। पूरे ढाई वरस तक मेरे आने का वह इन्तजार करती रही। १० मई १९६२ को बिछुड़े हुए हम दो प्राणी १६ अक्टूबर १९६४ को फिर से मिले। यात्रा बेटी भी अब तक काफी बड़ी हो गयी है। प्रारम्भ में तो वह मुझसे झिझकती रही। पहले-पहल जब हम मिले, तो उसने लता से पूछा : "ये कौन है?" "बाबूजी है" ऐसा बताने पर भी वह मेरे पास आने से डरती रही। पर अब तो वह मुझे छोड़ती ही नहीं।

इस विश्व-यात्रा का श्रेय लता के आशीर्वाद और साहस को ही है, जिसने मेरा जाना सम्भव और सुगम बनाया।

## विनोबा से भेट



विनोबा से मिलने के लिए हम १० मई को बेंगलोर से रवाना हुए और मद्रास तथा कलकत्ता रुकते हुए १६ मई को गौहाटी से २७ मील दूर गोरेश्वर ग्राम में उनसे मिले। विनोबा टीन के छप्पर के नीचे बैठे हुए 'मैत्री आश्रम' की बहनो से बातें कर रहे थे। मुक्त हृदय से वे आश्रम-जीवन की कल्पना प्रस्तुत कर रहे थे कि बीच में ही हमने जाकर प्रणाम किया। "आ गये?" कहकर जब विनोबा मुस्कराये, तो ऐसा लगा, मानो यात्रा की थकान पलभर में ही विलीन हो गयी।

विनोबा ने पूछा कि "किस रास्ते से मास्को पहुँचोगे?" हमने बताया : "दिल्ली से पंजाब होकर पाकिस्तान, अफगानिस्तान, ईरान होते हुए रूस जायेंगे और मास्को के बाद यूरोप की तरफ आगे बढ़ेंगे।"

विनोबा ने 'वर्ल्ड एटलस' खोली और हमारे रास्ते के बारे में गहरी दिलचस्पी से देखने लगे। बोले : "इतना लम्बा रास्ता क्यों ले रहे हो? क्यों नहीं अफगानिस्तान से सीधे ताशकंद होकर मास्को की तरफ आगे बढ़ते?" हमने उत्तर में दो कारण बताये : "एक तो हम अधिक-

से-अधिक लोगो से मिलना चाहते हैं और दूसरा यह कि वह अधिक आसान तथा सड़क का रास्ता है।”

इस प्रकार रास्ते की जानकारी, यात्रा की अब तक की तैयारी, मिशन इत्यादि के सम्बन्ध में थोड़ी चर्चा करने के बाद विनोबा ने पूछा कि “कल तक तो साथ रहोगे न?” हमारे “हाँ” कहने पर बोले : “अच्छा, कल यात्रा में चलते समय बात करेंगे। उस दिन प्रार्थना-प्रवचन में विनोबा ने हमारे लिए अत्यधिक प्रेरणादायक प्रवचन किया। ‘दो जवान हमारे सामने बैठे हैं’ इसी वाक्य से उन्होंने प्रारम्भ किया और फिर निःशस्त्रीकरण, अणु-अस्त्रों का निर्माण और उनका प्रयोग, युद्ध की तैयारियाँ आदि के सम्बन्ध में करीब एक घण्टे तक वे बोलते रहे।

आसाम हिन्दुस्तान का एक किनारा है। पहाड़ों, नदियों एवं सुन्दर प्राकृतिक दृश्यों से भरा हुआ वातावरण सृष्टि के चिर-सौन्दर्य की अनुभूति कराता रहता है। ऐसे शस्य-श्यामल प्रदेश में विनोबा की यात्रा नये प्राणों का संचार कर दिया था। गाँवों में रहकर गाँव का-सा जीवन जीकर विनोबा जिस तरह काम कर रहे हैं, वह सम्पूर्ण देश के लिए और विशेष रूप से राजनैतिक दौड़-पेचों में व्यस्त रहनेवाले तथाकथित नेताओं के लिए अद्भुत प्रेरणादायी है। एक व्यक्ति जिसे उम्र से, शरीर से, हर दृष्टि से आराम की जरूरत है, तरह-तरह के कष्टों का सामना करते हुए वास्तविक काम कर रहा है। यात्रा में चलते समय, प्रवचन करते समय, कभी भी वर्षा आकर तर-बतर कर जाती है। गाँवों के मकान टपकते रहते हैं, पर विनोबा कहते हैं कि “ग्राम-स्वराज्य की प्राप्ति तक मैं इसी तरह सतत चलता रहूँगा।” पूरे देश में केवल एक विनोबा ही हैं, जो आज १३ साल से रोज सबेरे ३ बजे उठता है और लाल्टेन के मंदिम प्रकाश में अगले पड़ाव के लिए चल पड़ता है।

यह है हमारी प्रेरणा का दीप्तिमय, जो हम जवानों को सक्रिय प्रेरणा दे रहा है ! आज देश के अधिकांश लोग सामाजिक जीवन में सुन्न मोड़कर

नौकरी, बच्चे, खाना-पीना-सोना, इतने में ही वेंध गये हैं। आज 'पुत्र-भार्या-पोषण' तक ही कर्तव्य की इतिश्री मान ली जाती है। इन सीमित दायरों के इर्द-गिर्द ही हम सब घूमते रह जाते हैं। ऐसे वातावरण में हमारी जाति-यात्रा के लिए विनोबा का आशीर्वाद और उनकी सक्रिय



प्रणाम हमें उठने, चलने और 'कुछ' करने की स्फूर्ति दे रही थी। विनोबा से मिलने के बाद हमें लगा कि जब उन जैसा व्यक्ति इतने सालों से लगातार घूम सकता है, तो हमारे जैसे तरुणों के लिए दो साल की पद-

यात्रा में कौन-सी कठिनाई है ? हमने पदयात्रा में विनोबा के साथ चलते समय विस्तार से बातें कीं, तो उन्होंने कुछ महत्वपूर्ण सुझाव दिये :

“रास्ते में पानी तो साथ रखोगे ही ?” विनोबा ने पूछा ।

“जी ।”

“पानी सदा गरम पीने की कोशिश करना । गरम पानी स्वास्थ्य के लिए ठीक रहेगा, हल्का और सुपाच्य रहेगा तथा नाना प्रकार के पानी से जो परेशानी हो सकती है, वह नहीं होगी ।”

“हम कोशिश करेंगे ।”—हमने कहा ।

“आहार के सम्बन्ध में क्या सोचा है ?”—विनोबा ने पूछा ।

“आप जानते ही हैं कि हम दोनों ही शाकाहारी हैं । अब आप ही सुझाइये ।”—हमारा प्रतिप्रश्न था ।

“हाँ, यह ठीक है । शान्ति का और अहिंसा का तुम्हारा जो ‘मिशन’ है, उसके लिए शाकाहार पूर्णतः सहायक है । पर इससे तुम्हें कुछ शारीरिक कष्टों का सामना करना होगा । यदि तुम लोग इस समस्या से पार पा गये, तो तुम्हारे ‘मिशन’ को बड़ी मदद मिलगी ।”

विनोबा के इस उत्तर पर हमने कहा : “हम भी ऐसा ही सोचते हैं और हमें भरोसा है कि हम इस दिशा में आपकी सलाह के अनुसार चल सकेंगे ।”

बिना पैसे की यात्रा !



“कितने पैसे साथ लेकर जा रहे हो ?”—विनोबा ने पूछा ।

“हम तो जनता के भरोसे जा रहे हैं । जनता के साथ काम करना है । लोग हमें ठहरायेगे, खिलायेगे, हर तरह की मदद करेंगे । फिर भी डाक, वस्त्र और अनिवार्य जरूरतें पूरी करने के लिए थोड़ा-सा पैसा हम साथ लेंगे ।”

“नहीं ।”—विनोबा ने हमारी इस बात पर कहा : “या तो तुम पूरे खर्च का प्रबन्ध साथ रखो या बिल्कुल पैसा न ले जाओ ।” थोड़ी देर

चुप रहकर फिर बोले : “यदि तुम्हारे साथ पैसा नहीं रहेगा, तो जनता स्वयं तुम्हारी मदद करेगी। इतनी लम्बी यात्रा पर जा रहे हो। देश-देशांतर में तुम्हारी रक्षा के लिए मैं तुम्हें एक चक्र देता हूँ। चक्र यही कि अपनी जेब में एक पैसा भी लेकर मत जाओ। इसके साथ ही आकाश-हार रूपी गदा तुम्हारे पास है ही। यह गदा और चक्र तुम्हें सफलता प्रदान करेंगे।”

आकाश काले बादलों से भरा था। हरे-भरे पेड़-पौधों से आसाम की धरती सँवरी थी। ऊँची पर्वत-श्रेणियों की ओर जाती हुई टेढ़ी-मेढ़ी सड़क पर विनोबा हमारा हाथ पकड़कर लम्बे-लम्बे डग भर रहे थे। हमें ऐसा लगा, मानो विनोबा हमारा हाथ पकड़कर हमें यात्रा करना सिखा रहे हो। सच्चाई भी तो यही थी। वे हमें सीख दे रहे थे। वे स्वयं सवाल को उठाते थे और स्वयं ही उनका समाधान भी करते थे। एकाएक उन्होंने हमारे कंधे पर हाथ रखा। दो मिनट मौन रहे। फिर प्यार से हमारी तरफ देखा। हम कुछ समझे नहीं। इतना जरूर लगा कि हमारी बात-चीत करीब-करीब समाप्त हो गयी है, लेकिन कोई अन्तिम सीख विनोबा हमें देना चाहते हैं।

“सारी जनता शान्ति चाहती है और तुम लोग शान्ति का ‘मिशन’ लेकर जा रहे हो, तो जनता पर विश्वास रखकर जाओ, वह तुम्हें कष्ट में नहीं पड़ने देगी। देशों की सीमाएँ धरती और जमीन के बीच भले हों, आदमियों के दिलों में कहीं कोई सीमा या भेद नहीं।” एक क्षण रुककर विनोबा ने अपना विचार स्पष्ट किया : “जनता के साथ सीधा सम्पर्क होने में पैसा बाधक होता है। मैंने तो पूरा सर्वोदय-आन्दोलन जनाधार पर चलाने का विचार रखा है। तुम्हारी पदयात्रा के लिए भी मैं वही मार्ग सुझाता हूँ। मुझे जनता पर पूर्ण विश्वास है। तुम लोग एक प्रयोग के तौर पर इसे आजमाओ। जाओ, तुम्हारी यात्रा के लिए मेरा पूरा आशीर्वाद है।”



खाना-पीना तो चल जायगा; पर चिट्ठी-पत्र के लिए क्या होगा ? जूते टूट जायेंगे तो क्या होगा ? कपड़े फट जायेंगे तो क्या होगा ? रूस की भयंकर सर्दियों से बचने के लिए गरम कपड़े कहाँ से आयेंगे ? बाल बढ़ जायेंगे तो हजामत कैसे बनेगी ? कहीं बीमार पड़ेंगे तो दवा का क्या होगा ? और सब जाने दीजिये, पर साबुन तो प्रतिदिन चाहिए । विनोबा सन्त है, आदर्शवादी है, पर इन व्यावहारिक कठिनाइयों का सामना तो हमें ही करना होगा न ? पैसे के बिना इतनी लम्बी यात्रा कैसे मुमकिन है ? इस तरह मन ही मन अनेक संकल्प-विकल्प उत्पन्न होते रहे । फिर मस्तिष्क ने तर्क किया—आखिर यहाँ पर पैसे कहाँ से आयेंगे । मित्रों से ही तो एकत्र करेंगे । तो फिर क्या जिन देशों में हम जा रहे हैं, वहाँ के लोग हमारे मित्र नहीं, अमित्र हैं । यह 'तो' जहाँ भी आता है, बंट-धार कर देता है । कल आसमान फट जायगा 'तो' क्या होगा ? कल मौत आ जायगी 'तो' क्या होगा ? इस तरह सोचने से क्या कभी काम चलता है ?

●

मस्तिष्क का यह तीव्र प्रतिवाद हृदय की कमजोरियों पर छा गया । आसाम की पहाड़ियों में रुके हुए बादल फिर एक बार दिल्ली में गरज उठे । भयंकर गर्मी से तपी हुई दिल्ली की सड़को पर पहली जून, १९६२ को वर्षा बरस उठी । पुरवाई हवा के ठंडे झोके अलसाये हुए शरीर में चेतना भरने लगे । जमना के किनारे चिरनिद्रा में सोये बापू की समाधि पर हम खड़े थे । विनोबा ने हमें अपना आशीर्वाद देने से पहले वर्षा और बादलों की साक्षी में जो सीख दी थी, उसकी याद दिलाने के लिए ही मानो बापू की समाधि पर भी वर्षा और बादल दोनों उपस्थित थे । हमें लगा, जैसे बापू चुपचाप हमें कह रहे हों कि “जनता बादलों की तरह उदार है और वर्षा की तरह सुखद-शीतल !” विनोबा-बापू ! बापू-विनोबा ! दोनों ने मिलकर हमारे मन-मस्तिष्क को साहस से भर दिया और हमने निर्णय किया—“हमारी यात्रा जनाधार का एक प्रयोग बने ।

पैसे का आधार हम छोड़ते हैं। पूरी यात्रा में कहीं, कभी भी हम पैसा स्वीकार नहीं करेंगे।”

वह शुक्रवार का दिन था। इसी दिन सायंकाल बापू ने सत्य और शान्ति की शोध में जीवन-बलिदान किया था। पहली जून '६२ को भी शुक्रवार था। सायंकाल प्रार्थना के लिए राजघाट पर हम सब एकत्र हुए। प्रार्थना के बाद हमारी काचन-मुक्त पदयात्रा प्रारम्भ हो गयी। हम अपने पथ पर चल पड़े।

हमारी यात्रा में पैसे ग्रहण करने का आग्रह जगह-जगह होता रहा। पाकिस्तान का हमारा पहला पड़ाव था लाहौर में। वहाँ कोई भी व्यक्ति हमारे लिए परिचित नहीं था। वहाँ भी हमें एक युवक मेजबान मिले। उन्होंने हमारी सारी व्यवस्था की और चलते समय जबर्दस्ती हमारी जेब में पाकिस्तानी सिक्के रख दिये। ये थे श्री गुलाम यसीन, जिन्हें किसी तरह समझा-बुझाकर हमने रुपये वापस किये। पाकिस्तान के बाद अफगानिस्तान पहुँचे। जलालाबाद में दैनिक 'निग्रहार' के सम्पादक श्री ब्रह्मान ने कहा : “शान्ति-यात्रा के लिए हमारी कुछ तो मदद स्वीकार कीजिये ही”, और अफगानी सिक्के पेश कर दिये। काबुल में भाई अमृतलाल की दूकान पर हम बैठे थे। वे हमारी यात्रा की योजना से इतने प्रसन्न हुए कि भावुक बनकर उन्होंने दूकान के 'कैश बॉक्स' में से मुट्ठीभर अफगानी मुद्रा बिना देखे, बिना गिने निकालकर हमारे सामने रख दी : “मुझे सेवा का मौका दे।” उनकी दूकान से एक-एक फाउटेनपेन लेकर हमने उनसे धमा मँगी। “पैसा नहीं, आपका स्नेह ही हमारी शक्ति है”—कहकर हमने उन्हें समझाया। काबुल के हमारे मेजबान श्री रामलाल आनन्द और भारतीय दूतावास के प्रथम सचिव श्री मुरगेशन का यह तर्क था कि “पैदल चलने का एक आग्रह ही पर्याप्त है। पैसा रखने में आपत्ति ही क्या है? साधारण तौर पर खर्च मत कीजिये, पर कभी वक्त-बे-वक्त के लिए कुछ मुद्रा पास में रख लीजिये।”

हम ईरान में पहुँचे तो गोवदे काबूस के एक बड़े जमींदार कैप्टेन हुनरवर ने और तेहरान के व्यापारी श्री शोभानी ने कहा : “हम लोग ऐसे ही सैकड़ों-हजारों खर्च करने रहते हैं । यदि आपकी यात्रा में हम कुछ मदद कर सकेंगे, तो हमारा चित्त बहुत प्रसन्न होगा ।” पर हमने कहा : “हमें रातभर के आतिथ्य से और आपकी सहानुभूति से जो मट्ट मिलेगी, उसकी तुलना कितनी भी बड़ी धनराशि से नहीं की जा सकती ।” वाराणसी से श्री सिद्धराजजी ने तेहरान स्थित भारतीय राजदूत को लिखा कि “उन्हें पैसे की जरूरत हो तो आप मुहय्या करें, हम यहाँ से उसका प्रबन्ध करेंगे ।” तेहरान पहुँचते ही हमारे राजदूत ने हमारी पैसे की आवश्यकता के बारे में पूछा । पर, हमने बताया कि “दिल्ली से तेहरान तक बिना पैसे के हम पहुँच गये । हमें इतना अच्छा लगा कि पैसे की जरूरत भूल ही गये हैं । यदि किसी वस्तु की हमें आवश्यकता होगी, तो हम आपको बतायेंगे । पर पैसा हमें नहीं चाहिए ।”

ईरान के बाद हम सोवियत संघ में पहुँचे, तो स्टालिन की जन्मभूमि गोरी में रात को धीरह बजे एक टैक्सी ड्राइवर ने हमारा दरवाजा खट-खटाया । उसने कहा : “मैंने अखबारों में आपके बारे में पढ़ा है : आज दिन में मैंने आपको सड़क पर देखा । आप कहाँ ठहरे हैं, इसका पता लगाते-लगाते अब यहाँ पहुँचा हूँ । ये २० रूबल ( करीब १०० रुपये ) आपको भेंट करना चाहता हूँ ।” अपनी भेंट वापस ले जाने के लिए उन्हें बड़ी कठिनाई से हम राजी कर पाये । सोवियत शान्ति-परिषद् के प्रतिनिधि एलेक्जेंडर इवानोविच पलादीन ने सुखुमी नगर में आकर कहा : “हमें आश्चर्य होता है कि आप कैसे बिना पैसे के दिल्ली से यहाँ तक पहुँच गये ? ये लीजिये ४० रूबल ( करीब २०० रुपये ) । कहीं भी जरूरत पड़ने पर इस्तेमाल कीजिये । सफ़ा की बात नहीं । आप हमारे अतिथि हैं और अतिथि को कष्ट होने से हमें बहुत कष्ट होता है ।” उन्हें किसी तरह समझाया कि “कष्ट पैसे रखने से होता है, न रखने से नहीं ।” ऐसे कितने ही प्रसंग यूरोप व अमेरिका में भी आये, जब हमारे अनजान

मित्रों ने जाने-पहचाने मित्रों की भोंति ही हमें प्यार दिया, अपनत्व दिया और हर प्रकार की मदद करने के लिए उत्सुकता दिखायी ।

## मुसीबतें



बिना पैसे की यात्रा में कभी-कभी कठिनाइयों का आना भी स्वाभाविक ही है । एक बार जब महीनेभर से भी अधिक समय तक हम भारत के लिए एक भी चिट्ठी नहीं लिख सके, तो तेहरान के दूतावास में तार और चिट्ठियों के ढेर लग गये—हम कहीं खो गये, इसका पता लगाने के लिए । कहीं ईरान के भयंकर भूकम्प की चपेट में तो नहीं आ गये, इस सन्देह ने मित्रों और परिवारवालों को चिन्ता में डाल दिया । तीन महीने तक एक बार हजामत न बनवा पाये, तो तेहरान के एक मित्र ने कहा : “क्या अणु-अस्त्रों पर प्रतिबन्ध न लगने तक बाल कटवाने की कसम खा ली है ?” एक बार दो गाँवों में जगह न मिलने पर सामने के होटल में इसीलिए नहीं ठहरे कि जेब खाली थी ।

इसी तरह लगातार तीस घंटे तक भोजन न मिलने पर भी इसीलिए चलते ही रहे कि होटल में जाकर खाने के बाद विल कहीं से चुकाया जायगा ? गरीब किसान-परिवारों में बिना दूध-चीनी की चाय और सूखी रोटी खाकर थके हुए शरीर को निद्रादेवी की शरण में इसीलिए सौंप देते थे कि अच्छे और पौष्टिक भोजन के लिए पैसे की शरण में जाना हमें स्वीकार नहीं था । परन्तु ऐसे कठिन अवसरों में भी मन को एक सन्तोष मिलता था, तृप्ति मिलती थी और इसीलिए यात्रा के प्रति कभी अनुत्साह पैदा नहीं हुआ । सच तो यह है कि ऐसे रूखे प्रसंग आनन्द-प्रद प्रसंगों की तुलना में नगण्य हैं ।

सबसे दिलचस्प बात यह है कि हम अपनी आवश्यकताएँ कैसे पूरी करते थे ? जैसे, कपड़े की आवश्यकता को ले । काबुल में हमें भारत से श्री हरिरामजी चोपड़ा और श्री सोमभाई ने अफगानिस्तान की सड़ों सहने

लायक कपड़े भेज दिये। सिर पर टोपी और पैरो में जूतों की व्यवस्था काबुल में हमारे मेजवान श्री रामलाल आनन्द ने की और इस तरह तेहरान तक हमें कोई दिक्कत नहीं हुई। वेशक काबुल के जूते तेहरान तक नहीं पहुँच सके। वेहशहर में श्री अब्बास खियानी ने हमारे टूटे जूते देखकर न जाने मन ही मन क्या सोचा। वे उठे, हमसे कुछ कहे बिना चल दिये। थोड़ी देर में हमने देखा कि वे दो जोड़ी जूते लिये चले आ रहे हैं। हमारे आश्चर्य का ठिकाना न रहा। तेहरान के बाद हमें बर्फ और रूसी सर्दी के मुँह में जाना था। तेहरान के भारतीय व्यापारी श्री मकखन-सिंहजी ने लगभग पाँच सौ रुपया खर्च करके 'स्लीपिंग बैग', स्वेटर, जूते और कोट का प्रबन्ध किया। वे कहने लगे : "हम खुद आपके साथ चल नहीं सकते, इसी तरह कुछ मदद करके हम आपके 'मिशन' में साथ दे सकते हैं।" तेहरानवाले जूते जुल्फा तक काफी घिस गये तो जुल्फा नगर-पालिका के अध्यक्ष ने जूतों की मरम्मत करवायी। सोवियत संघ में पहुँचे। अरमीनियन शान्ति-परिपद् की मन्त्रिणी ने हमारे लिए ऐसी टोपियाँ भेंट की, जिन्हें पहनने पर कैंसी भी सर्दी का असर नहीं हो सकता। आँख, नाक और मुँह को छोड़कर गले तक पूरा ढाँक सके, ऐसी ये टोपियाँ थीं। मास्को में हम पहुँचे तो लखनऊ से श्री कपिलभाई द्वारा भेजा हुआ और बँगलोर से डॉक्टर नटराजन द्वारा भेजा हुआ गरम कपड़ों का पर्सल हमारी प्रतीक्षा कर रहा था। सोवियत शान्ति-परिपद् ने ओवरकोट भेंट किया। वारसा में राधाकृष्णजी बजाज द्वारा चर्धा से भेजे हुए जूते और वाशिंगटन में सुशीलकुमारजी द्वारा राजपुरा से भेजे हुए कपड़े भी इसी तरह सहायक बने।

ब्रिटेन से अमेरिका तक हमें ब्रिटेन के शान्तिवादी लोगो ने जहाज से भेजा, अमेरिका से जापान तक अमेरिका के पैसिफिस्ट लोगो ने हवाई जहाज से भेजा और जापान से भारत तक जापान के शान्तिवादियों ने जहाज से भेजा। इस तरह विवेन्द्रित ढंग से सारी व्यवस्था सहज होती गयी।

डाक भेजने की परेशानी अवश्य कभी-कभी सताती थी। अक्सर तो हम अपने मेजबान को ही इसके लिए पूछते थे। यदि वैसी अनुकूलता न हो तो चिट्ठी लिखकर जेब में रख लेते और सड़क पर चलते हुए, प्रायः कोई न कोई कारवाला हमें 'लिफ्ट' देने के लिए या हमारे बारे में कुछ अखबारों में पढ़ा होने के कारण कुशल-क्षेम पूछने के लिए अपनी कार रोकता, तो उसे हम टिकट लगाकर चिट्ठी भेज देने का काम सौंप देते थे। टाब्रोज में तो हम बड़े डाकघर के 'डाइरेक्टर' के पास गये और १०-१२ 'एरोग्राम' ले लिये। इस तरह हम कोई-न-कोई तरीका निकाल ही लेते थे। किसी भी शहर में जब किसीके घर ठहरते, तो उनसे साबुन, डाक-टिकट आदि की छोटी-मोटी जरूरतें बहुत आसानी से पूरी कर लेते थे। रूस में एक जगह दाढ़ी बनाने के लिए हमने अपने मेजबान से ब्लेड पूछा। उनके पास ब्लेड नहीं, उस्तरा था, जिससे दाढ़ी बनाने की हमें आदत नहीं। हमारे मेजबान ने खुद अपने हाथ से ही हमारी दाढ़ी बना दी। कैसा दिलचस्प प्रसंग था यह रूस के एक छोटे-से गाँव में।

हमारे पास पैसा नहीं है, यह जानकर तो लोग हमारी और भी ज्यादा चिन्ता करते थे। हमें अक्सर यह अनुभव ही नहीं होता था कि हमारे पास पैसा नहीं है।

## साथ का सामान



हमारी यात्रा की पूर्वतैयारी का ज्यादा सम्बन्ध बाहरी प्रश्नों से नहीं था। सबसे बड़ी बात एक ही थी कि इस यात्रा के लिए हमारे मन में एक तड़प थी और एक आकर्षण था। वह तड़प इतनी तीव्र थी कि उसके सामने सभी प्रश्न या तो गौण होते चले गये या अपने-आप सुलझते चले गये। हमें चारों ओर से इतनी शक्ति और स्फूर्ति मिली कि यात्रा का श्रीगणेश कर दो, इसीके इन्तजार में हम बेचैन रहने लगे। कई मित्रों ने इस लम्बी पदयात्रा में आनेवाले कष्टों, मुसीबतों और तकलीफों की

ओर हमारा ध्यान खींचा। पर हमने यही सोचा कि तकलीफें न आये तो यात्रा का मजा ही क्या? इसलिए हर मुसीबत का, हर कष्ट का हम सामना करेंगे—यही हमारा निश्चय था। कुछ बुजुर्गों को हमारे 'मिशन' की सफलता में सन्देह भी था। पर हमने कहा कि कोई भी काम करने से पहले ही सफलता-असफलता के लिए जो चिन्ता करता रहता है, वह कभी कोई काम कर ही नहीं सकता। हमारा साध्य अच्छा है और उसके लिए हमने जो साधन अपनाया है, वह भी अच्छा है, तो फिर उस साधन में जुट जाना ही हमारा काम है।

यात्रा में हमें जो भी आवश्यक सामान चाहिए था, वह हमने अपने साथ रखा। हम अपनी पीठ पर एक थैले में करीब १० किलो वजन रखते थे। इसमें वे सभी चीजें आ जाती थीं, जिनकी हमें नित्य जरूरत पड़ती है। किसी भी गाँव में दो समय भोजन के सिवा हमें कुछ भी भ्रमण करना पड़े, इस तरह से हमने सामान का प्रबन्ध किया। हमारे पास निम्नलिखित सामान रहता था :

दो चादरे	डॉट पेन	चाकू
तीन पाजामे	पुस्तकें दो	रस्सी
तीन कुरते	लेटरपैड	बरनोल
रूमाल	पीठ का थैला	आइडेक्स
दो बनियान	दो बगल-थैले	टिचराइडिन
दो अंडरवियर	पानी की कुप्पी	सैरिडोन
तौलिया	लुटा और मग	ग्लूकोज
रेनकोट-टोपी	आईना, कंघा, तेल	पेचिंग की दवा
बूट-जूता	दंत मज्जन	रेडीमेड चाय
चप्पल-जूता	साबुन	घड़ी
टार्च	रेजर, ब्लेड और ब्रश	टीन और कपड़े का
कैमरा	दो चम्मच	साइन बोर्ड
थर्मस	पिन कुशन	वर्ल्ड एटलस और नक्शे

दो फाइले

पेन इंक

शब्दकोश

डायरी

कैची

‘रूसी भाषा शिक्षक’

फाउटेन पेन

नेल कटर

पुस्तक

पासपोर्ट ।



पासपोर्ट के लिए हमने बहुत पहले ही मद्रास-क्षेत्र से आवेदन किया था । किन्तु मद्रास-क्षेत्र के पासपोर्ट अधिकारी ने ‘राजनीतिक मामला’ कहकर हमारा आवेदन-पत्र विदेश-मन्त्रालय, दिल्ली को भेज दिया । सबसे पहला प्रश्न था, २० हजार रुपये की गारंटी का । इसे हम कैसे हल करते ? हमारी जिम्मेदारी कौन उठाता ? सुरक्षा की गारंटी कौन देता ? आखिर कलकत्ता के मेरे एक एडवोकेट मित्र मागीलाल जैन ने यह जिम्मेदारी ली । इस तरह सभी औपचारिक कार्रवाइयाँ पूरी हो जाने के बावजूद हमें समय पर पासपोर्ट नहीं मिल सका । मई महीने की चिलचिलाती धूप और लू में हमने विदेश-मन्त्रालय के कितने ही चक्कर लगाये । परन्तु लाल-फीताशाही में फँसे हुए हमारे कागजात मुक्ति नहीं पा सके । यद्यपि विश्व-नागरिक होने के नाते हमें पासपोर्ट जैसी चीज पर कोई विश्वास नहीं है, फिर भी हम सरकारी तंत्र को सन्तुष्ट करने के लिए पासपोर्ट माँग रहे थे । जब हम अपने प्रयत्न में असफल रहे और गांधी-समाधि, नयी दिल्ली से अपनी पदयात्रा पर चलने लगे, तब हमारे हाथ खाली थे । दूसरे ही दिन के एक दैनिक अखबार ने यह समाचार छापा कि “दो भारतीय शान्ति-यात्री दिल्ली से अमेरिका तक की पदयात्रा पर निकले हैं, किन्तु उनकी जेब में न तो पैसा है और न हाथ में पासपोर्ट ।”

इस खबर ने कुछ खलबली मचायी । लोकसभा के एक सदस्य को यह प्रश्न पूछने की प्रेरणा मिली कि जब हमारे मन्त्रिगण तरह-तरह के लोगों को, व्यापारियों को, अपने सम्बन्धियों को नये-नये कारण ढूँढ़कर विदेश-यात्रा पर भेज देते हैं, तो इन शान्ति-यात्रियों को पासपोर्ट देने में

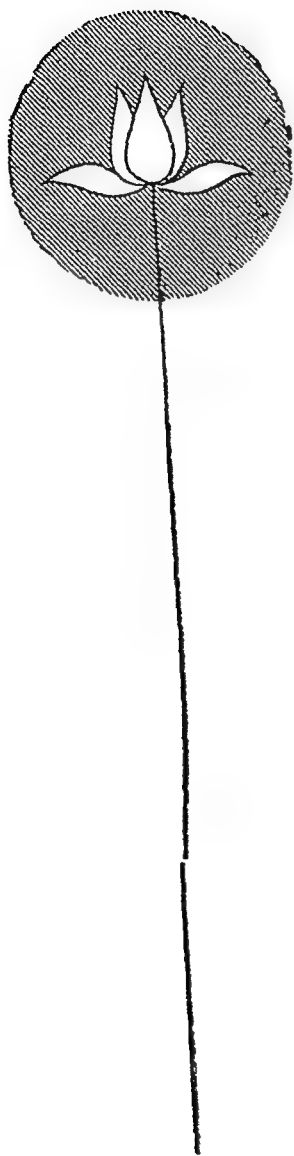


क्या बाधा हो सकती है ? वास्तव में नीति सम्बन्धी तो कोई बाधा थी भी नहीं । दफ्तरो में चलनेवाली शिथिलता और भ्रष्टाचार ही इसके पोछे कारण हो सकता था । पर हमने यही तय किया कि जो भी हो, हम वापस नहीं आयेगे और अपने कार्यक्रम के अनुसार आगे बढ़ते जायेगे । अपने कार्यक्रम में फेर-बदल न करने की हमारी इच्छा के कारण ही हमने राष्ट्रपति राधाकृष्णन् से मिलने का विचार भी रद्द कर दिया । कारण, राष्ट्रपति ने हमें ३ जून को मिलने का समय दिया था और हम पहली जून को ही दिल्ली से चल पडने का निश्चय कर चुके थे । पासपोर्ट के लिए दिल्ली में पहली जून के बाद रुकना हमने उचित नहीं समझा और अपनी यात्रा शुरू कर दी । जब हम पाकिस्तान की सरहद के पास पहुँच रहे थे, तब दिल्ली से एक भाई आये और बोले : “शान्ति-यात्रियों, यह लीजिये आपका पासपोर्ट ।”

पाकिस्तान की सरहद तक हमने ३२ दिन यात्रा की ।

पंजाब का हमारा कार्यक्रम अत्यन्त उत्साहवर्धक रहा । पानीपत, अम्बाला, राजपुरा, लुधियाना, आदमपुर, जालन्धर और अमृतसर का सम्पूर्ण कार्यक्रम इतना व्यस्त और स्फूर्तिदायक रहा कि अब भी वह सारी यात्रा चलचित्र की भाँति नजरो के सामने है । सभी जगह बड़ी-बड़ी आम-सभाएँ, विद्यार्थियों और युवकों की सभाएँ, बुद्धिजीवियों की सभाएँ हुई । दिल्ली से रवाना होते समय हमें इसका अन्दाज भी नहीं था कि पंजाब में हमारा कार्यक्रम इतना सफल रहेगा ।

हमने देखा कि सब जगह आणविक हथियारों के खिलाफ जनता का हृदय तैयार है । पर उसे यह समझ में नहीं आ रहा है कि किन तरीकों से इसका विरोध किया जाय ।



पड़ोसी देश पाकिस्तान में





३ जुलाई को हमने हिन्द-सीमा पार की। अमृतसर से एक विशेष बस का प्रबन्ध करके करीब ३५ भाई-बहन हमें सीमा से बिदा करने आये थे। पाक-सीमा में दाखिल होने के बाद हमारा क्या प्रबन्ध होगा, यह कोई नहीं जानता था। हमारा परिचित या जान-पहचान का भी कोई आदमी पाक-सीमा में या पाकिस्तान में नहीं था। इसलिए सब लोग बहुत चिन्ता व्यक्त कर रहे थे।

अमृतसर से आनेवालों में पन्द्रह-बीस बहनें थीं। किसी जमाने में माताएँ, बहनें और पत्नियाँ अपने पुत्रों, भाइयों तथा पतियों को तिलक लगाकर युद्ध-भूमि में प्रस्थान करने के लिए जैसे बिदा किया करती थी, करीब-करीब वैसा ही दृश्य हमारे सामने उपस्थित था। कुछ बहनें साथ में भोजन भी ले आयी थीं। कहने लगी : “पता नहीं, पाकिस्तान में आपको भोजन मिलेगा या नहीं। खाने का डिब्बा साथ ले लें।” हमें यह प्रस्ताव कैसे स्वीकार होता ! हमने कहा कि “हम अविश्वास की यह गठरी अपने साथ लेकर नहीं जायेंगे। हमारे मन में पाकिस्तानी भाइयों के प्रति पूरा विश्वास है।” बूढ़ी माताएँ और युवा बहनें मंगल

विचारों में हमें इस बात की झलक मिलती है कि वे लोग भारत-पाक सम्बन्धों को सुधारने के लिए कितने उत्सुक हैं।

हमने अपनी प्रयात्रा के दौरान में यह महसूस किया कि अस्सी प्रतिशत समस्या भावनात्मक और मनोवैज्ञानिक है। पाकिस्तान के आम लोग तो इन बातों को जानते ही नहीं कि वास्तविकता क्या है। उनके मन में एक भ्रम और गलतफहमी बैठ गयी है कि भारत के मुसलमान बहुत खतरे में हैं, उन्हें कोई हक हासिल नहीं है और उनकी जान सुरक्षित नहीं है। लोग हमसे पूछते थे कि हिन्दुस्तान में अमन है न? कोई पूछता था कि हिन्दुस्तान में मुसलमानों की क्या स्थिति है? इन सवालों के पीछे उनकी यह भावना प्रतिबिम्बित होती थी, मानो हिन्दुस्तान में मुसलमान बड़ी मुसीबत से गुजर कर रहे हैं। कहीं-कहीं पर यदा-कदा कुछ गड़बड़ होती है, तो उसे बहुत बढ़ा-चढ़ाकर अखबारों में छापा जाता है। इस तरह भावनाओं ही भावनाओं में वैमनस्य तथा द्वेष बढ़ता जाता है। दोनों ओर से अगर पूरा प्रयत्न किया जाय, तो भावनात्मक एकता और मनोवैज्ञानिक सान्निध्य कायम करने में जरूर सफलता मिल सकती है।

सभी जगह लोग हमसे पूछते थे कि “आपकी जाति क्या है? आपका मजहब क्या है? आप हिन्दू हैं या मुसलमान?” हमने बड़ी दृढ़ता के साथ सर्वत्र इन सवालों का एक ही जवाब दिया : “हमारी जाति इन्सान है, हमारा मजहब इन्सानियत है, इन्सानियत से बढ़कर इस दुनिया में कोई मजहब हो नहीं सकता। न हम हिन्दू हैं, न मुसलमान। सारा जहाँ हमारा है।” हमारे इस उत्तर से बहुत बहस होती थी, लोग चकित भी होते थे और परेशान भी। पर कुल मिलाकर हमारे इस रुख का अच्छा असर पड़ता था।

“कश्मीर को आजाद कराने के लिए हमें अभी एक और जग लड़ना है”, ऐसे भावुकतापूर्ण जज्बात कभी-कभी पाकिस्तान की यात्रा में हमें सुनने को मिले। कबल इसके कि ऐसे जज्बात फूटे, हम अहिंसावादियों

और शान्तिवादियों को इस प्रश्न पर गम्भीरता से सोचना चाहिए तथा अमन के लिए कोई खतरा पैदा न हो, इसकी पुरजोर कोशिश करनी चाहिए। मनुष्यों की भावनाएँ अहिंसा के तथा शान्ति के पक्ष में हो, तो फिर कोई भी बाहरी शक्ति उसे हिंसा के लिए प्रेरित नहीं कर सकती। सबसे पहला और सबसे बड़ा काम भावनाओं का निर्माण करना ही है। “युद्ध मनुष्य के दिमाग से प्रारम्भ होता है, इसलिए शान्ति की रक्षा के विचारों का निर्माण भी मनुष्य के दिमाग में ही करना चाहिए।”

## खैबर दर्रा



खैबर दर्रा ! हिन्दुस्तान पर आक्रमण करनेवालों के आने का ऐतिहासिक स्थल-मार्ग ! जिस मार्ग के बारे में हमने बहुत कुछ सुना था और जिस मार्ग की भयंकरता के बारे में बहुत-सी कहानियाँ प्रचलित हैं, उसे आँखों से देखने का अवसर मिला, तो मन में एक प्रकार की विचित्र उत्सुकता का संचार हो उठा। आँखों से देखना और वह भी पैदल चलकर।

१ जून, १९६२ के सायंकाल से ही, जब हम पद-यात्रा पर रवाना हुए, हम अपनी पदयात्रा के मार्ग के बारे में काफी जानकारी प्राप्त कर रहे थे। इस पदयात्रा का सबसे कठिन, भयावना और दुरूह पड़ाव था—खैबर दर्रे का पड़ाव। पहले दिन से ही, जिस-जिस व्यक्ति ने भी खैबर दर्रे के बारे में और वहाँ के निवासी पठानों के बारे में जो कुछ बताया, वह दिल में भय पैदा करनेवाला था।

आखिर ६२२ मील और एक माह सत्ताईस दिन चल चुकने के बाद २८ जुलाई '६२ का दिन आया। हम पेशावर से १० मील आगे जमरूद में थे। पाकिस्तान की सरहद का यह आखिरी पड़ाव था। इसके बाद खैबर दर्रे का २५ मील का 'आजाद कवायली' इलाका प्रारम्भ हो जाता है। इसे 'गैर इलाका' 'ड्राइवल एरिया' कहते हैं। इस इलाके में

पाकिस्तान सरकार का कोई कानून लागू नहीं होता। पाल-पुलिस भी यहाँ नहीं जा सकती। यहाँ कोर्ट, कचहरी आदि भी नहीं है। ब्रिटिश-शासन-काल में भी यह क्षेत्र इसी तरह आजाद था। जब हम इस तरफ चलने के लिए तैयार हुए, तब यहाँ के लोगो ने हमें हर सम्भव तरीके से समझाने की और पैदल जाने से रोकने की कोशिश की। स्थानीय अधिकारियों ने कहा : “आप दिल्ली से यहाँ तक पैदल आये हैं, यह और बात है, पर इस क्षेत्र में पैदल जाना खतरनाक है और आपको कम-से-कम इस २५ मील की दूरी तय करने के लिए अपना पैदल चलने का आग्रह छोड़ देना चाहिए। सबसे बड़ी बात यह है कि पठान लोग अनपढ़ और जंगली-जैसे हैं। हरएक के पास बन्दूक रहती है। जान का खतरा है। उन पर हमारा कानून भी नहीं चलता।” इत्यादि।

पर हमने अधिकारियों से निवेदन किया : “हम खास तौर से ऐसे क्षेत्रों का अध्ययन करना चाहते हैं। आप बिल्कुल न डरें। हमारी जान अगर जायगी तो उसका उत्तरदायित्व हमारा अपना है।”

अधिकारियों को हमने किसी तरह मनाया। उन्होंने हमें खैबर दर्रे के रास्ते से पैदल जाने की इजाजत दे दी। हम गान्ति-यात्रियों की रक्षा के लिए चार बन्दूकधारी सैनिक भेजे गये।

साढ़े तीन हजार फुट ऊँची खैबर-चोटियों हमें आमन्त्रण दे रही थीं। मानो कहती हो कि डरने की कोई बात नहीं है। यहाँ का रास्ता टेढ़ा-मेढ़ा जरूर है, पर सड़क बहुत अच्छी है। इस सड़क पर अभी पाक-सरकार का अधिकार है। सड़क के दोनों तरफ १०-१० गज का क्षेत्र भी सरकार का है। सवेरे ५ बजे से शाम को ७ बजे तक पूरे १४ घंटे हमने इस २५ मील के खैबर-क्षेत्र में व्यतीत किये। शाम को जब हम अफगानिस्तान की सरहद में ‘तोरखाम’ आये, तब हमें लगा कि वह सारा डर, जो प्रातःकाल जमरूट के अधिकारी हममें पैदा कर रहे थे, निरा काल्पनिक था। बीच-बीच में पीने के पानी का प्रबन्ध है। जगह-

जगह पर खैबर खासादार फोर्स की चौकियाँ बनी हैं। एक नदी, जो काबुल से आती है, सड़क के साथ-साथ चलती है।

कुछ पठानों से बातें हुईं। उन्होंने कहा : “हमारे खिलाफ हमारे बारे में जो कुछ कहा जाता है, उससे हमारी सारी पठान जाति उपेक्षित हो गयी है और हमारे मन में प्रतिक्रियास्वरूप बाहर के लोगों से नफरत पैदा हो गयी है।”

यह सच है कि पठान वीर होता है। वह अपने कंधे पर बंदूक रखना न केवल अपनी शान समझता है, बल्कि यह उसकी सभ्यता में शामिल हो गया है। पठानों का इतिहास बहादुरी का इतिहास है। यदि किसीके साथ पठान का झगड़ा हो जाय, तो फिर वह उसके प्राण लेने में तनिक भी नहीं हिचकिचाता। वह इतना स्वाभिमानी होता है कि किसी-का शासन कभी सहन नहीं कर सकता। यह स्वाभिमान ही आज स्वतन्त्र पख्तूनिस्तान के आन्दोलन के रूप में प्रकट हो रहा है। स्वतन्त्रता-आन्दोलन के पुराने नेता सरहदी गाधी खान अब्दुल गफ्फारखान स्वतन्त्र पख्तूनिस्तान-आन्दोलन के नेता हैं और इसीलिए वे अभी तक जेल में बन्द रहे। ‘खुदाई खिदमतगार’ नाम की एक संस्था खान साहब ने चलायी थी। इस संस्था के सदस्य पूरी तरह अहिंसा में विश्वास करते हैं। उनके कपड़े लाल होते हैं, इसलिए इस संस्था को ‘लाल कुरती दल’ के नाम से भी पुकारा जाता है। यदि ये पठान अपनी दिलेरी और वीरता के लिए प्रसिद्ध हैं, तो मेहमानों का स्वागत करने में, आतिथ्य करने में और उनकी सेवा करने में भी किसी तरह कम नहीं हैं। पठान के घर अतिथि होने का अर्थ है—पूर्ण सुरक्षा। यदि आप किसी पठान के मेहमान हैं और उस बीच किसीसे आपका झगड़ा हो गया अथवा किसीने आपकी कोई चीज छीन ली, तो आपका मेजबान पठान अपने प्राणों की बाजी लगाकर भी वह चीज आपको वापस लाकर देगा तथा आपकी हिफाजत करेगा।



करीब १ करोड़ पख्तून आज बड़ी उपेक्षित स्थिति में है। शिक्षा का प्रसार तो नहीं के बराबर है। पहाड़ी क्षेत्र होने से जमीन बहुत कम है। उनका अपना कोई राज्य नहीं। कोई सामूहिक प्रयत्न भी नहीं। उनके यहाँ न कोई विशेष उद्योग-धन्धे हैं, न कोई विशेष कला-कारीगरी। पहले बहुत-से पठान उत्तम कसीदाकार होते थे। उनकी कसीदेवाली टोपियाँ चार सौ, पाँच सौ रुपये तक में बिकती थी। जूतों पर भी वे बहुत सुन्दर नक्काशी करते थे। पर अब उस तरह का फैशन न रहने से उनका धन्धा चौपट हो गया है। कुल मिलाकर साधारण पठान बहुत गरीब हालत में है।

भले ही झगड़े-फसाद के लिए और मरने-मारने के लिए पठान बदनाम हो, पर हमारी तथाकथित सभ्य जाति की अपेक्षा उनमें झगड़े कम होते हैं और सभ्य तरीके के नाम पर जिस तरह न्यायालयों में हम वकीलों के पीछे पानी की तरह पैसे बहाकर आये दिन सैकड़ों झगड़ों का गलत-सही फैसला कराते हैं, वैसा यहाँ नहीं होता। यदि गाँव में पंचायत को यह ज्ञात हो गया कि अमुक व्यक्ति ने गाँव के अमुक व्यक्ति को बिना अपराध के सताया है, तो पंचायत क्षणभर में फैसला कर देगी, उस अपराधी को दण्डित भी कर देगी और वह अपराधी बिना किसी 'ननु न-च' के पंच-फैसला मजूर भी कर लेगा।

खैबर-क्षेत्र का प्रसिद्ध नगर है—लडीकोतल। यह जमरूठ से २० मील आगे है और अफगान सीमा तोरखाम से ५ मील पहले है। पठान लोग जो कुछ खरीद-फरोख्त करते हैं, उसका सबसे बड़ा केन्द्र यही है। यहाँ पर हमने पठानों को बड़े-बड़े जत्था के रूप में देखा। आध सेर आटे की एक मोटी रोटी और बिना दूध की हरी चाय से अपना पेट भरकर मस्ती से जीनेवाले इन पठानों की अपनी दुनिया ही अलग है। वे जब किसीसे प्रेम करते हैं, तो वह भी उत्कृष्ट और अनुपम होता है। वे जब किसीसे गलबहियाँ डालकर मिलते हैं, तो वह दृश्य भी दर्शनीय होता है। वे जब किसीकी सेवा में लीन होते हैं, तो अपने-आपको भूल

जाते हैं। ये शासनमुक्त लोग खूब घेरदार सलवार और ढीला, लम्बा, झोलदार कुर्ता पहनते हैं। लम्बी दाढ़ी, सिर पर टोपी और उसके ऊपर पगड़ी ! बड़ा आकर्षक व्यक्तित्व होता है उनका। लम्बा-चौड़ा ढील-डौल, गोरा रंग, चौड़ा ललाट और ऊँचा स्वर। सब-कुछ लुभावना।

हमने अपनी इस यात्रा में पठानों को निकट से देखा। खैबर दर्रे से गुजरने में किसी तरह का किञ्चित् भी भय नहीं। हाँ, तोरखाम-सीमा पर पाकिस्तानी अधिकारियों के व्यवहार का रूखापन खटकनेवाला था। पर ये अधिकारी पठान नहीं, 'बाहरी' लोग थे।

पाकिस्तान की यात्रा में पुलिस तथा सी० आइ० डी० के अधिकारी हमारे साथ रहते थे। हमारी सुरक्षा के लिए। अक्सर ये पुलिसवाले बड़े हमदर्द और सहयोगी साबित होते थे। पर तोरखाम-सीमा पर काम करनेवाले पाकिस्तान-सरकार के प्रतिनिधियों ने तो रातभर पनाह देने से भी इन्कार कर दिया। हमने पीछे मुड़कर देखा। खैबर की चोटियों पठानों का हँसता हुआ चेहरा। पाकिस्तान में बिताये हुए दिनों की स्मृतियों ! हम आगे बढ़ गये। सीमा के पार।

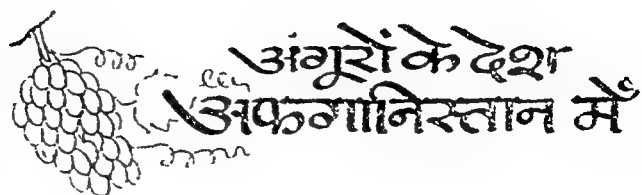
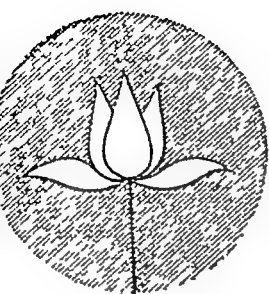
1

2

3

4

5



अंगूरों के देश  
अफगानिस्तान में



अब चलिये अफगानिस्तान की ओर । ऊँची-ऊँची चोटियों पर रहनेवाले लोगो के देश की ओर । यह सड़क जो हमें दिल्ली में मिली, लाहौर, पेशावर और खैबर में से मार्ग दिखाती हुई काबुल तक जा रही है ।

भारत और पाकिस्तान में ५८ दिन की पदयात्रा के अनुभव के बाद जब हम अफगानिस्तान में प्रवेश करने के दिन खैबर दर्रे की घाटियों से गुजर रहे थे, तो मन में कई तरह के विचार उठ रहे थे । भारत-पाकिस्तान की परिस्थिति से अफगानिस्तान की परिस्थिति सर्वथा भिन्न है, यह खैबर दर्रे के वातावरण से हमें ज्ञात हो रहा था । खैबर दर्रे से ही भापा, वेश-भूषा, भोजन इत्यादि की भिन्नता प्रारम्भ हो गयी । मन में लग रहा था कि हमारी वास्तविक यात्रा अफगानिस्तान से ही प्रारम्भ हो रही है ।

जब हमने अफगान-सीमा को अभिवादन किया तो सूरज डूब चुका था, हल्का-सा अन्धेरा छा रहा था और काबुल रेडियो फारसी गीतों की मधुर धुन बजा रहा था । पीठ पर सामान, गति में गतिधिलता और चेहरे पर थकान लिये जब हम अफगान अधिकारी के पास पहुँचे, तो

उसने कहा : “इस समय ! अभी तो आगे जाने के लिए कोई वाहन भी उपलब्ध नहीं होगा !” अधिकारी हिन्दी में बात कर रहा था । हमने बताया कि “हम वाहन का उपयोग नहीं करते । ५८ दिनों में ६४७ मील की पैदल यात्रा करके हम दिल्ली से आ रहे हैं । आगे भी पैदल ही जाना है ।” अधिकारी को आश्चर्य हुआ । उसने कहा : “अब तक आप पैदल आये, यह ठीक है । पर यहाँ से आगे का रास्ता बहुत खराब है । रेगिस्तान है । पानी का अभाव है । अतः अब बस से ही जाइये ।” हमने कहा कि “हमें तो यह सारी कठिनाइयाँ आयेगी ही । अमेरिका तक न जाने कितने ब्रीहड़ मार्ग तय करने हैं ।” काफी देर तक उससे बातचीत होती रही । उसे जब हमारे शान्ति तथा निरस्त्रीकरण के ‘मिशन’ की और अर्थमुक्त पदयात्रा की पूरी कहानी मालूम हुई, तो अत्यन्त सहानुभूति के साथ उसने हमारे उद्देश्यों का समर्थन किया और हमें अपना अतिथि बनाया । इस पठान अधिकारी ने एक साधारण मानव का रूप धरकर हमारे लिए भोजन-स्नान आदि की व्यवस्था की ।

२९ जुलाई ’६२ को प्रातःकाल अफगानिस्तान की धरती पर हमने पहली बार सूर्य के दर्शन किये । शुष्क मरुभूमि के रास्ते हम आगे बढ़े । चार दिन की पदयात्रा के बाद ५० मील चलकर हम अफगानिस्तान के प्रथम शहर, जलालाबाद पहुँचे । हमें यह देखकर प्रसन्नता हुई कि शुष्क भूमि में बसनेवाले इस क्षेत्र के निवासियों का हृदय अत्यन्त आर्द्र था ।

जलालाबाद में स्वतंत्र पख्तूनिस्तान-आन्दोलन के नेता श्री स्याल साहब के हम अतिथि बने । उन्होंने गांधीजी के बारे में काफी सुन रखा था । बोले : “हम अपनी आजादी के लिए संघर्ष कर रहे हैं । हमारे नेता खान अब्दुलगफ्फार खान हमें शान्तिपूर्ण तरीके से अपनी गतिविधि चलाने की बात कहते हैं । स्याल साहब ने हमारे मिशन के बारे में पूरी सहानुभूति बतायी । उनके कारण जलालाबाद में हमारे समर्थन में अच्छा वातावरण बन गया । यहाँ के दैनिक अखबार ने भी हमारी पदयात्रा का स्वागत किया ।

अफगानिस्तान मे हमारे लिए सबसे बड़ी परेशानी भाषा की थी । भाषा का क्या महत्त्व है और उसके अभाव मे आदमी कितना असहाय हो जाता है, यह हमे कदम-कदम पर अनुभव हो रहा था । हमने संकेतो और इशारो का सहारा लिया । एक बार यह समझाने के लिए कि हम मास मे मुर्गीं और मछली भी नहीं खाते, हमे चित्र बनाकर समझाना पडा । भाषा के माध्यम से भी बड़ा माध्यम आँखो का स्नेह तथा सौजन्य है और वह माध्यम सशक्त बनकर हमारे काम आया । हमने धीरे-धीरे फारसी का अध्ययन प्रारम्भ किया । बाद मे टूटी-फूटी फारसी मे बोलकर हम अपना काम चलाने लगे ।

२ अगस्त को हम जलालाबाद से चलकर ६ दिन मे अफगानिस्तान की राजधानी काबुल आ गये । ९२ मील का यह रास्ता नदी के किनारे ऊँची पहाड़ियों की तराई मे से होकर करीब ६ हजार फुट की ऊँचाई पर बसे हुए मध्य एशिया के सुन्दर नगर काबुल को जाता है । काबुल की सुन्दरता का अनुमान न केवल उस सुन्दर मार्ग को देखकर, बल्कि अनेक मनोहारी जलस्रोतो को अपने मे समेटते हुए कलकल करती अविरल बहनेवाली उस जलधारा को देखकर भी लगाया जा सकता है, जो काबुल नदी के नाम से हमे तरोताजा कर रही थी ।

कहाँ वह युग, जब भारत की राजधानी तक्षशिला थी और काबुल-कन्धार तक भारत की सीमाएँ फैली थी, और कहाँ आज का युग ! दोनो मे बहुत अन्तर है । लेकिन आज भी भारत-अफगान-मित्रता का सूत्र अत्यन्त दृढ़ है । वह इतिहास, जिसमे काबुल नदी की गरिमा का गान करते हुए ऋग्वेद के सूक्त लिखे गये, और काबुल के निकट वासियान की बौद्ध मूर्तियाँ बनी, इस बात का साक्षी है कि दोनो देशो की सांस्कृतिक एकता चिरंजीवी रहेगी ।

हमारे जैसे अकिचन मुसाफिर जब चलते थे, तो कोई पता नहीं रहता था कि हम कहाँ ठहरेंगे ? कहाँ भोजन करेंगे ? भोजन मिलेगा भी या नहीं ? पर हम जहाँ भी जाते, वहाँ लोग यह कहकर हमे अपनी



बर्फानी चोटियों के अतिरिक्त और है भी क्या ? न कोई शहर न याता-यात के साधन, न अखबार, न बिजली । अशिक्षित जन-समुदाय, गरीब किसानों के छोटे-छोटे गाँव और साल में ६ महीने चारों तरफ बर्फ ही बर्फ !

हम करीब २० दिन तो ८ हजार फुट से ऊपर ही रहे । कई बार साढ़े दस हजार फुट से अधिक ऊँचाई तक गये । एक शिखर से उतरना और दूसरे शिखर पर चढ़ना ! कई बार तो बीस-पच्चीस मील तक कोई गाँव नहीं ! ऊँटों के लम्बे-लम्बे काफिले । हजारों भेड़ों के काफिले और इन सबके बीच सीधे, सरल, निम्नल ग्रामवासी । यह मार्ग आम तौर से चालू नहीं है । कोई यातायात भी नहीं है । 'कारवा-रूट' है । काबुल से हैरात जाने के लिए गजनी, कंधार होकर ही लोग आते-जाते हैं । पर वह रास्ता इस रास्ते से करीब दो सौ मील अधिक लम्बा है, अतः हमने यह सीधा रास्ता लिया ।

इन ग्रामवासी निष्कपट लोगों के लिए यह बड़ी अद्भुत बात थी कि बिना भाषा जाने ये दो परदेशी युवक इधर आखिर किस मतलब से आये हैं ! जब ऊँचे पर्वत-शिखरों पर चढ़ते हुए हम लोग शिथिल-से दीख पड़ते, तो अपने ऊँट या घोड़े पर सवार ये ग्रामवासी हमें भी अपने वाहन पर बैठाने की कोशिश करते थे । "हम तो पैदल ही चलेंगे ।" ऐसा समझाने पर अक्सर वे लोग हमारी पीठ पर लदे सामान को अपने ऊँट या घोड़े पर रख लेते थे । इस एक महीने में ऐसे लोग तो कम ही मिले, जो युद्ध, अणु-अस्त्र और शान्ति के प्रश्नों को ठीक तरह से समझ सकें । बीच-बीच में सरकारी हाकिमों के साथ हम लोग ठहरते थे । वे लोग हमारी यात्रा के उद्देश्यों को समझकर हमारे विचारों को सुनते थे ।

हमारे इस मार्ग पर जो प्रमुख स्थान आये, उनमें पंजाब, लाल, कासी, ख्वाजा-ए-चेस्त और ओवेह के नाम उल्लेखनीय हैं । इन स्थानों पर सरकारी दफ्तर भी हैं । अंगूर, रोटी और बिना दूध-चीनी की चाय ( हरा कावा ) के साथ भोजन से परितृप्त होते हुए जब हम दिल्ली में

१३५० मील की दूरी तय करके अफगानिस्तान के एक बड़े नगर हैरात पहुँचे, तो मन को बड़ा सन्तोष एवं उत्साह मिला कि हमने अपनी मजिल का एक लम्बा फासला पूरा कर लिया ।

हैरात से और ७५ मील चलकर ईरान में हमने जब कदम रखा, तब हमारे हृदय में ऐसा अहसास होने लगा कि एक दिन इसी तरह हमारे कदम मास्को और वाशिगटन की भूमि पर भी पड़ेंगे और हम वहाँ की जनता को दूसरे देशों की जनता का यह सन्देश देगे कि “हम शान्ति चाहते हैं और युद्ध की सम्भावनाओं की समाप्ति चाहते हैं ।”

अफगानिस्तान की पचपन दिन की यात्रा में हमने देखा कि यह देश बहुत गरीब है, फिर भी यहाँ के लोगो ने सदा ही धन, सुख और वैभव-विलास से आजादी को अधिक पसन्द किया है । अफगानी पठान जितने सरल और प्रेमल हृदयवाले हैं, उतने ही बहादुर भी हैं । इसीलिए उन्होंने आजादी के साथ सौदा नहीं किया । गरीब रहे, पर गुलाम नहीं बने । केवल १७० लाख की आबादीवाला यह छोटा-सा देश पाकिस्तान के साथ अच्छे सम्बन्ध न होने के बावजूद रूसी या अमेरिकी फौजी संगठन में शामिल नहीं हुआ । किसी दूसरे मुल्क की सैनिक सहायता के बल पर अपनी आजादी की रक्षा करने का सपना उसने कभी नहीं देखा । सदा तटस्थ विदेश-नीति के आधार पर ही उसने बाहरी देशों के साथ अपने सम्बन्ध बनाये ।

हमने अफगानिस्तान की सरहद में जब प्रवेश किया था तो मन में एक आशंका-सी थी, अनजानापन-सा था । पर २१ सितम्बर को ७७९ मील की यात्रा पूरी करके जब हम पीछे मुड़कर कृतज्ञ भाव से अफगानिस्तान को ‘खुदा-हाफिज’ कह रहे थे, तब एक-एक दिन चल-चित्र की भाँति हमारी आँखों के सामने नाच रहा था । वह हार्दिक स्वागत, उदार आतिथ्य, प्रेमल आशीर्वाद और हमारे मिशन का पुरजोर समर्थन, सब कुछ हमें याद आ रहा था । यदि हम विमान से यहाँ आते तो बहुत

होता तो काबुल आते या एक-दो और भी बड़े नगरों में आते ! क्या उस समय अफगान-जीवन का यह सच्चा दर्शन मिल पाता ? कभी नहीं ।

अफगानिस्तान दो करोड़ की आबादीवाला एक छोटा, परन्तु अत्यन्त सुन्दर देश है । गाँवों और नगरों की पदयात्रा के बाद मुझे लगा कि इस मनोरम देश को यदि कोई पिछड़ा हुआ, अविकसित देश कहता है, तो उसके देखने का नजरिया केवल ऊपरी है । यह सही है कि इस देश में बड़े-बड़े उद्योग और कारखानों का अभाव है । यह भी सही है कि इस देश में भारी मशीनें और बिजली का उत्पादन अत्यल्प है । यह भी सही है कि यह देश अभी तक तथाकथित भौतिक, वैज्ञानिक एवं औद्योगिक प्रगति की दौड़ में यूरोप के देशों के साथ कदम नहीं मिला पा रहा है । परन्तु ये सारे लक्षण किसी देश को पिछड़ा हुआ या अविकसित कहने के लिए पर्याप्त नहीं हैं । आज औद्योगीकरण के कारण जिस तरह शहर खूबसूरत परिधान पहनकर गाँवों के शोषण पर इठल रहे हैं, वह कोई प्रगति का लक्षण नहीं । रेलें, मोटरे, विमान, सड़कें, मशीनें, कारखाने प्रगति के चिह्न माने जाते हैं, पर इन सबका आधार तो गाँवों का शोषण ही है ।

व्यक्तिगत स्वामित्व तथा व्यक्तिगत पूँजीवाद के कारण थोड़े-से शहरों की चमक-दमक, प्रगति एवं आधुनिकता के पीछे हजारों छोटे-छोटे गाँवों का चीत्कार छिपा है । श्रमिक के श्रम का उपहास छिपा है ।

अफगानिस्तान में विकेन्द्रित अर्थ-व्यवस्था का शास्त्र बड़ी आसानी से अपनी उपयोगिता सिद्ध कर सकता है । गाँवों में आज भी चरखा जीवित है । हमने पदयात्रा के बीच गाँवों में देखा कि स्त्रियाँ करघे पर कपड़ा तथा कंबल बुन रही हैं । उन्हें जब हम यह बताते थे कि हमने जो कपड़े पहन रखे हैं, वे भी हाथ से बनाये हुए हैं, तो ये ग्रामीण बहुत प्रसन्न होते थे और कहते थे कि “क्या आपके देश में मशीन के कपड़े में यह कपड़ा ज्यादा सस्ता है ?” यह सवाल बाजार ने पैदा किया है । यद्यपि उनके जीवन में बाजार बहुत कम है, फिर भी जो आदमी शहर

जाता है, वह अमेरिका से आया हुआ 'सेकण्डहैंड' कपड़ा बहुत सस्ते में ले आता है। इस 'सेकण्डहैंड' कपड़े ने लोगो को न केवल श्रम-विमुख बनाना शुरू किया है, बल्कि लोगो की रुचि को भी विकृत करना शुरू किया है। कपड़े के बाजार पर अमेरिका व यूरोप के 'सेकण्डहैंड' कपड़ो का प्रभुत्व है। अभी अफगानिस्तान में कपड़े की मिले ज्यादा नहीं है। आम तौर से भेड़-पालन यहाँ के किसानो का प्रधान धन्धा है। अफगानिस्तान की भेड़े बहुत ऊँची, मोटी और घने ऊनवाली होती है। एक-एक आठमी हजार-हजार भेड़े रखता है। अफगानिस्तान बहुत ठंडा देश होने से इन भेड़ो से मिलनेवाले ऊन का महत्व इन किसानो के लिए सर्वाधिक है।

## डॉ० काकार से भेट

अफगानिस्तान की यात्रा के बीच डॉ० काकार से हुई हमारी भेट को मैं कभी भूल नहीं सकूँगा। ऊँचा ललाट, लम्बा कद, गम्भीर आँखें, विनम्र और मिलनसार स्वभाव तथा विश्व-शान्ति के प्रयत्नो में निरन्तर अभिरुचि रखनेवाले श्री काकार का व्यक्तित्व जितना सरल सीधा है, उतना ही आकर्षक है। काबुल विश्वविद्यालय के विज्ञान-विभाग के सचालक और अफगानिस्तान-अणुशक्ति-आयोग के अध्यक्ष होने के कारण मानव-जाति की वैज्ञानिक प्रगति में उनका योगदान सहज ही हो रहा है, पर यह योगदान विज्ञान की शक्तियो पर राजनीतिज्ञो का प्रभुत्व होने के कारण गलत दिशा में न चला जाय, इसका खतरा उन्हें भी है। वे अणुशक्ति-आयोग के अध्यक्ष के-नाते इस दिशा में पुरजोर प्रयत्न कर रहे हैं कि अफगानिस्तान आणविक शक्ति का इस्तेमाल मानव-जाति के विनाश के लिए नहीं, बल्कि उसकी शान्तिपूर्ण प्रगति के लिए करे।

मास्को शान्ति-सम्मेलन में उन्हीं दिनो वे अफगानिस्तान की इस नीति को जोरदार शब्दो में प्रस्तुत करके आये थे कि रूस और अमेरिका

मिलकर आज रोटी-कंपड़े के लिए मुँहताज विश्व का करोड़ों-अरबों रुपया सामरिक तैयारियों पर और अणु-अस्त्रों की प्रतियोगिता पर खर्च कर रहे हैं, यह मानवता के साथ द्रोह है !

“शान्ति-यात्रियों, इस देश में आपका स्वागत है !” ऐसा कहकर श्री काकार ने हमारे साथ बातचीत प्रारम्भ की। उन्हें हमारी इस पद-यात्रा के प्रति बड़ी उत्सुकता और दिलचस्पी थी। चूँकि भारत में पद-यात्रा की बात अब नयी नहीं रह गयी है, लेकिन बाहर के देशों में किसी खास ‘मिशन’ या विचार के लिए इस तरह पदयात्रा करना सर्वथा नवीन उपक्रम है। इसलिए “कैसे चलते हैं ? कहाँ ठहरते हैं ? लोगों का व्यवहार कैसा है ? आपको दिक्कत तो नहीं ? लोगों को आप क्या समझाते हैं ? गाँवों में आपको भोजन मिलता है या नहीं ?” आदि अनेक प्रश्न श्री काकार ने हमसे पूछे।

हमने विस्तार से उन्हें जानकारी दी और बताया कि गाँवों के लोग यह जानकर बड़े प्रसन्न होते हैं कि भारत जैसे दूर देश के दो यात्री पैदल चलकर हमारे यहाँ आये हैं। इसलिए हमें सभी जगह खूब आतिथ्य मिलता है। हम जब लोगों को अपनी यात्रा के उद्देश्यों के बारे में बताते हैं, तो प्रायः सर्वस्व हमें एक ही उत्तर मिलता है कि ‘आप अपने उद्देश्य में सफल हों। जंग की तैयारी बन्द हो। हमें वम नहीं चाहिए। हमें तो जीवन-यापन के साधन चाहिए। आप इस यात्रा के द्वारा मुल्क की बड़ी खिदमत कर रहे हैं।’ इस तरह जनता हमें अपना पूरा समर्थन और हार्दिक सहयोग देती है।

यह सुनकर श्री काकार बोले : “यह विलकुल सही है। दुनिया के लोग वस्तुतः शान्ति चाहते हैं। वास्तविकता तो यह है कि न केवल रूस-अमेरिका की जनता, बल्कि वहाँ के राज्याधिकारी भी हृदय से शान्ति चाहते हैं। परन्तु मुसीबत यह है कि वे एक-दूसरे पर भरोसा नहीं रख पाते हैं। अब सवाल यह है कि पहला कदम कौन आगे बढ़ाये ? एक बात यह भी है कि अब यह निःशस्त्रीकरण का प्रश्न नहीं रह गया है, बल्कि

दोनों देशों की प्रतिष्ठा का प्रश्न बन गया है। किस देश का प्रस्ताव मान्य किया जाय, किसका तरीका अपनाया जाय, इसका झगडा चल रहा है। मास्को के शान्ति-सम्मेलन में भी मैंने यही महसूस किया।”

एक पर्वत-कुमारी ! एक पठान !



अफगानिस्तान के जीवन की निष्कपट बहार से दिल प्रभावित हुए बिना नहीं रहता। उस दिन हम चलते-चलते एक नदी किनारे पहुँचे। सुनसान और सूखी पहाड़ियों में बहनेवाली यह नदी यात्रियों के लिए बहुत बड़ा सहारा है। ६-७ वर्ष की एक छोटी सी अफगान-बालिका का मनोहर रूप देखकर मैं तो मुग्ध रह गया। उसके चाँद जैसे गोरे मुँह पर ऐसी भोली मुस्कान बिछी थी कि उसके सामने से हटने को मन नहीं कर रहा था। दुनिया की राजनीति, युद्ध की तैयारियाँ, ऐटम बमों के विस्फोट आदि दौंव-पेचों से इस बाला का कोई सम्बन्ध नहीं। वह स्कुल नहीं जायगी। वह टेग-विदेश की यात्रा नहीं करेगी, वह जंगल के फूल की तरह जहाँ पैदा हुई, वहीं मुरझा जायगी। उसकी आँखों में भरा हुआ अनन्त गाम्भीर्य कभी भी परखा नहीं जायगा। उसकी पीठ पर एक टोकरी बँधी थी। उस टोकरी में वह गोबर चुनती है। यही उसके लिए जिन्दगीभर का पेगा है। उसने काले रंग की कमीज और सलवार पहन रखी थी। सिर पर गोल टोपी और उसके ऊपर से लाल ओढ़नी। १० हजार फुट ऊँचे पहाड़ पर रहनेवाली इस रूपवती पर्वत-कुमारी के लिए श्रम ही जीवन है। श्रम से ही जीवन प्रारम्भ हुआ और श्रम में ही जीवन की समाप्ति होगी।

कुछ कदम आगे बढ़कर हम अपनी पानी की कुप्पी भरने के लिए नदी में उतरे। वहाँ एक अफगानकोचीवाला पठान बैठा था। बिना रजर के, खाली ब्लेड हाथ से पकड़कर दाढ़ी बना रहा था। न साबुन, न ब्रुश, न आईना, न क्रीम।

“क्यों भाई, अगले गाँव तक पहुँचने में कितना वक्त लगेगा ?” यहाँ दूरी जानने का यही तरीका है। न मील का पत्थर, न किलोमीटर का अन्दाज। उनका अपना एक नाम है—‘फरसाक’—जो शायद साढ़े चार मील का होता है। हम अपना सामान पीठ पर लेकर प्रति घण्टे तीन मील की गति से चलते थे। सामान न हो तो चार मील चल सकते थे।

“डेढ़-दो घण्टे का रास्ता है”—पठान ने कहा। “कहाँ से आये हो यात्रियो”—हमारा रग-ढंग और गले में लटकता हुआ इस्तहार देखकर जवान ने पूछा।

“दिल्ली से आये हैं।” हमने अपनी यात्रा के उद्देश्य की उसे जानकारी दी।

“गजब की हिम्मत की है तुमने !” पठान बहुत खुश हुआ। “थोड़ी दूर पर मेरा खेमा है। चलो, वहाँ चाय बनायेगे। फिर आगे बढ़ना।” हम खेमे की तरफ बढ़े।

“मैं हर तीन महीने काबुल से तरह-तरह का सामान, कपड़ा आदि ऊँट पर लादकर लाता हूँ। इस क्षेत्र में वह सामान बेचकर वापस जाता हूँ। सालों से यही क्रम चल रहा है। अगर पूरा जोड़ लगाऊँ, तो हजारों मील का सफर मैंने किया है। आप दिल्ली से यहाँ तक आये, यह कुछ भी नहीं। किन्तु मेरा सफर मुझ तक सीमित है, आपका सफर हम सबके लिए है। मेरा सफर ‘मतलब का सफर’ है, लेकिन आपका सफर तो ‘अमन का सफर’ है।” एक सरल-हृदय पठान के मुँह से ऐसी तात्त्विक बातें सुनने को मिल रही थीं। उसके कंधे पर बन्दूक टँगी थी। पर उसके व्यवहार पर बन्दूक का प्रभाव नहीं था।

थोड़ी देर बाद उस पठान ने एक दार्शनिक की भोंति कहा : “पता नहीं किसने इस बन्दूक को बनाया। अगर यह बन्दूक बनायी ही नहीं जाती तो हमारे मनो में डर क्यों पैदा होता ? आदमी, आदमी की जान लेने को क्यों लपकता ? आज बन्दूक के बल पर आदमी, आदमी पर

हक चलाता है। बन्दूक न होती तो प्यार के बल पर हक चलता। जैसे बाप का बेटे पर चलता है, भाई का भाई पर चलता है, मित्र का मित्र पर चलता है, पति का पत्नी पर चलता है।” मैं ताज्जुब में डूबा जा रहा था। पहाड़ों में सामान बेचनेवाला पठान इतनी बारीक बात करेगा, इसकी मुझे कल्पना भी नहीं थी। इस एक बन्दूक रखनेवाले को प्यार के हक की ऐसी व्याख्या करते देखकर तो मैंने दाँतो तले अँगुली दबा ली। हमें काबुल में कहा गया था कि कम-से-कम आत्मरक्षा के लिए ही कोई चाकू या पिस्तौल साथ में रखिये। पर हमने इस सलाह को स्वीकार न करके अच्छा ही किया, क्योंकि ये पठान तो हमारे साथ प्यार के हक की बातें करते हैं और हमारा आतिथ्य करते हैं, यह हमने अफगानिस्तान में परखून-पठानों के साथ रहकर देखा। जब हम इस पठान के साथ उसके खेमे में गये, तो उसने झोली भरकर बादाम, किसमिस और पिस्ते हमारे सामने रख दिये।

“गांधी कैसे है?” पठान ने बीच में ऐसे पूछा, जैसे वह नींद से जागा हो। “बहुत बड़ा आदमी है गांधी।” पठान ने आवाज धीमी करके कहा : “क्या आप मेरे सलाम गांधी के पास पहुँचायेगे?” उसे यह मालूम नहीं था कि गांधी अब जीवित नहीं है। हमारे लिए यह बताना बड़ा कठिन हो रहा था कि गांधी ने जीवनभर प्रेम और अहिंसा की उपासना की, पर आखिर में स्वयं ढाल बनकर, स्वयं बलिदान होकर किस तरह धर्म और जाति के नाम पर फैली हुई हिंसा को बन्द किया।

“गांधी तो अब जीवित नहीं है।” मैंने धीरे से कहा।

“सच?” पठान चौंका। उसका चेहरा उदास हो गया। फिर हम लोग कुछ देर तक गांधी के बारे में ही बातें करते रहे। गांधी ने इन पहाड़ों तक अपनी छाया डाली है।

“हमारे बीच भी एक गांधी है।” पठान ने कहा।

“कौन?” मैंने उत्सुकता में पूछा।



“खान अब्दुल गफ्फार खान ।” पठान तुरत बोला : “वह हम परखूनो की आजादी का पैगम्बर है । वह भी अमन और प्यार का पुजारी है । पर यह तो बताओ की अमन और प्यार की, इन्सानियत और आजादी की बात कहनेवाले को ये हुक्मतवाले लोग जेलो मे क्यों बन्द कर देते है बाबू ?” सरल-हृदय पठान की बाते भोली-भाली थी, पर उनमे तत्व गहरा था । हमने उसे कुछ कारण समझाये ।

फिर हमने देखा पठान का सामान । अनेक अमेरिकी कोट, ब्रिटिश सेना के कपड़े, अमेरिकन स्त्रियों के ‘फ्रॉक’ इत्यादि उसके पास थे । ये सारे इस्तेमाल किये हुए पुराने कपड़े थे । बहुत सस्ते मे यूरोप और अमेरिका से ये कपड़े काबुल पहुँचते है और काबुल से यह जवान अपने ऊँट पर लादकर ये कपड़े यहाँ लाता है ।

“अमेरिका से आया हुआ ‘सेकण्डहैंड’ कपड़ा पहनने के बजाय अपने घर पर, अपने देश का मोटा कपड़ा पहनना क्या बुरा है ?” मैंने पूछा । “आप क्या कहते है जनाब ? काबुल का बड़ा व्यापारी इस धन्धे से काफी पैसा कमा लेता है । हमारे जैसे कुछ लोगो की भी गुजर हो जाती है । उसके आगे के नुकसान-फायदे की बात हम क्या जाने ?”

हमारे पास ज्यादा समय नही था । हमने पठान से विदा ली और आगे चल पडे । अफगानिस्तान के इस पहाडी रास्ते के कष्ट इन अनुभवो से भी ज्यादा दिलचस्प है । जब हमने काबुल से गजनी और कन्धार का लम्बा रास्ता छोडकर ऊँची पहाडियो का यह रास्ता अपनाया, तो भारतीय दूतावास के अधिकारी बहुत चिन्ता प्रकट कर रहे थे । कुछ महीनो पहले इस रास्ते से एक अमेरिकी दम्पति ‘हिच हाइक’ यात्रा पर गये थे, वे कभी वापस नही लौटे । इस घटना के कारण सभी परेजानी में थे । अफगान सरकार ने पूरे रास्ते पर सरकारी कर्मचारियों के पाग मूचना भेजी कि “जान्ति-यात्रियों को हर सम्भव मदद की जाय ।” बीच-बीच मे भारतीय दूतावास के प्रथम सचिव टेलीफोन करके जानकारी प्राप्त करते रहते थे । हमारे पास भी सरकार की तगफ से एक चिट्ठी थी

कि “भारतीय शान्ति-यात्री अफगानिस्तान के अतिथि होकर यात्रा कर रहे हैं।” इतना सारा प्रबन्ध होने से किसीके लिए भी कोई सन्देह की गुजाइश नहीं थी।

काफिलेवाला पठान ।



यह अफगानिस्तान के पहाड़ों की कहानी है। यहाँ ऐसी कहानियाँ रोज घटती हैं। उस दिन हम सूखी रोटी और बिना दूध-चीनी की काली चाय का नाश्ता करके सुबह छह बजे पदयात्रा पर रवाना हुए। अफगानिस्तान की सुपरिचित पर्वत-श्रेणी, कोहिवावा के ऊपर से हम गुजर रहे थे। घाटियों के उतार-चढ़ाव पार करते हुए हम आगे बढ़ रहे थे। ऐसा सुनसान रास्ता, जहाँ न बसे चलती है, न कारे। वायुयान या रेलों का तो सवाल ही नहीं। ऊँची, तगड़ी भेड़ों के झुण्ड शिकारी कुत्तों के साथ पहाड़ियों पर बिखरे हुए थे। ये कुत्ते हमारे लिए सदैव परेशानी के कारण बनते थे। जोर-जोर से भूँककर तंग कर डालते थे। हमें कई बार यह सलाह मिली कि हम हाथ में लाठी लेकर यात्रा करें। पर यह सलाह मानने के लिए दिल ने गवाही नहीं दी। लोगों की सलाह तो यह भी थी कि अफगानिस्तान के भयंकर निर्जन रास्तों में यात्रा करने के लिए हम साथ में कोई छोटा-मोटा हथियार भी रखें, पर ऐसी सलाह पर ध्यान देने का तो कोई प्रश्न ही नहीं था। आदमी से डरकर आदमी के खिलाफ हम हथियार रखें, इस तर्क को तो मैं स्वप्न में भी नहीं समझ सकता, पर कुत्तों की करामात के आगे हमें कई बार परेशान होना पड़ा।

कोहिवावा १० हजार फुट ऊँची पहाड़ी है। हम उसे पार कर रहे थे। रास्ते में ऊँटों का एक लम्बा कारवाँ मिला। वैसे तो एकाध कारवाँ हमें रोज ही मिलता था, पर उस दिन का कारवाँ तो बहुत ही बड़ा था। ८०-९० के करीब ऊँट-ऊँटनियाँ और करीब ४०-५० स्त्री-पुरुष और बच्चे थे। उसके बाद और भी एक छोटा काफिला हमें मिला, क्योंकि

पहाड़ पर बहुत सर्दी पड़नी आरम्भ हो गयी थी। एक-दो महीने में पूरा पहाड़ बर्फ से ढँक जानेवाला था। इसलिए गाँव के गरीब किसान रोज-गार-धन्धे के लिए काबुल, जलालाबाद, कन्धार, पेशावर और कोई-कोई तो दिल्ली तक चले जाते हैं। ये लोग अपने साथ अपने बाग की उपज-बादाम, किशमिश, अखरोट आदि भी ले जाते हैं। सर्दियों बीत जाने पर ये लोग वापस अपनी जन्म-भूमि में लौट आते हैं।

इन पठानों का अपना मकान तो कम ही के पास होता है। ये लोग अपने हाथ से तैयार किये हुए कबलों के खेमे तम्बू, गाड़कर गर्मियों में थोड़ी-बहुत खेती करते हैं। इनका जीवन बहुत कठिन और परिश्रमी होता है। पर ये लोग बड़े उदार दिल, साहसी और वीर होते हैं। हमारी पीठ पर लदा हुआ थैला एक पठान ने हमसे लेकर अपने ऊँट पर रख लिया। कहने लगा : “जब तक हमारा रास्ता एक है, तब तक आप क्यों बोझ उठाये ?” फिर वह अपने जीवन की कहानियाँ सुनाता रहा। लम्बा, गठीला, चौड़ा ललाट, सिर पर सफेद पगड़ी, ढीला मैला-सा कुरता और उस पर छोटी-सी फटी जाकट, घेरदार सलवार, हाथ में छोटी-सी छड़ी। बड़ा फुर्तीला जवान था वह। दिल्ली और कराची का सफर ऊँट पर कर चुका था। धडाके से हिन्दी बोलता था। कहने लगा : “मेरा घर और मेरी जमीन साल में छह-सात महीने बर्फ से ढँकी रहती है। हम गरीबों के लिए सर्दों का मौसम बहुत तकलीफदेह होता है। हमारे पास मकान के नाम पर एक छोटा-सा मिट्टी का ओपडा है। उसीमें मैं, बीबी, बच्चे और बूढ़ी माँ—सब रहते हैं। उसीमें हमारी भेड़ें और गायें रहती हैं। सर्दों के पूरे मौसम के लिए २-३ बड़ी-बड़ी भेड़ हम रखते हैं। यही हमारा भोजन है। पूरे कपड़े हमारे पास नहीं होते, इसलिए लकड़ी जलाकर गर्मी प्राप्त करते हैं। पर इस साल तो कुछ भी नहीं रहा, अतः मैं पूरे परिवार के साथ निकल पड़ा हूँ। पेशावर जाकर कुछ काम करूँगा और सर्दों बीतने पर वापस आऊँगा।” हमने देखा कि वह अपने ऊँट पर पूरा घर लादे हुए था। बूढ़ी माँ और दो बच्चे

ऊँट पर थे। एक बड़ा बच्चा, पत्नी और खुद पैदल चल रहे थे। फिर उस जवान ने पूछा : “सुना है इस साल हमारी हुकूमत और पाकिस्तानी हुकूमत के बीच कुछ झगडा हो गया है और खैबर दर्रा का रास्ता बन्द कर दिया है। फिर आप लोग किस तरह आये ?” मैंने कहा : “रास्ता बन्द तो जरूर हुआ है, पर हम तो तीसरे देश से आये हैं। हमारे पास पासपोर्ट है। इसलिए हमें जाने-आने में कोई दिक्कत नहीं है। पर भाईजान, आप कैसे जायेंगे ?” पठान बोला : “ये हुकूमते हम गरीब लोगो के गले में रोज फन्दा लगाये रहती हैं। नित-नये झगड़े, नित-नये कानून। पर पेशावर हमारा है। पठानो का है। हम पीडियो से वहाँ जाते रहे हैं। हुकूमत किसीकी हो, वहाँ रहनेवाले पख्तून हमारे भाई हैं। हमें वहाँ जाने से कोई नहीं रोक सकता। मैं तो पहाडियो के अन्दर से बीसो रास्ते जानता हूँ। अगर मुझे अपने पख्तून पठानो से मिलने के लिए कोई रोकेगा, तो बन्दूक मेरे कंधे पर है।” यह था असली पठानी रंग।

पर थोड़ी ही देर में उसका दूसरा रंग सामने आया। उसने देखा कि वगल में ठंडे पानी का झरना बह रहा है। इसलिए उसने कहा : “क्या आप लोग थके नहीं हैं ? क्या आपको भूख लगी है ? झरना पास में बह रहा है। कहिये तो चाय बनाऊँ ? मेरे पास रोटी है।” बड़ा अप्रत्याशित निमन्त्रण था। इन सूखे पहाडो में ऐसा हरे-भरे दिलवाला पठान मिला। वरना हमारे लिए अक्सर तो ठंडा पानी और विटामिन की गोलियों का ही सहारा था। कानुल से रवाना होते समय हमारे मेजवान श्री रामलाल आनन्द ने विटामिन की गोलियाँ हमारे साथ दी थीं। ये गोलियाँ ही हमारा प्रमुख भोजन बनकर साथ देती रही। हम इन पहाडी चोटियों पर चढ़ते और हर चोटी पर चढ़कर १०-१५ मिनट विश्राम करते। दिनभर खाने-पीने का नाम नहीं। सुबह-शाम जो खाना मिलता, वह भी अपर्याप्त होता था। इस युवक के अप्रत्याशित निमन्त्रण को हमने स्वीकार किया। पर उसकी तीन इंच मोटी,

ऊपर से जली, अन्दर से कच्ची रोटी हम खा नहीं सके। हमारे इस प्यारे मेजवान ने झरने से केतली में पानी भरा और दो पत्थरो के बीच आग जलाकर पानी गरम किया। केतलीभर पानी में चम्मच भरकर हरी चाय की पत्ती डाली। अफगानिस्तान में यही चाय ज्यादा चलती है। पेट में भूख जरूर थी, पर यह चाय और रोटी भायी नहीं। फिर भी १५-२० मिनट हमने अपने पठान साथी के साथ बिताये। फिर वह अपने रास्ते पर बढ़ा। हमारा सामान हमारी पीठ पर आ गया।

## गरीब गाँव : अमीर लोग



हम चलते रहे। घाटियों के अनेक उतार-चढ़ाव थे, रास्तेभर में कोई गाँव नहीं मिला। काफिलो का मिलना भी बन्द हो गया। हम दोनों बहुत थक गये। पर चारा क्या? तभी बहुत दूर पर एक बड़ा-सा मकान हमें दिखाई दिया। हालाँकि उस मकान तक पहुँचने के लिए हमें लम्बा रास्ता पार करना था, फिर भी मन में आशा का संचार हुआ कि निश्चित रूप से हम एक स्थान पर पहुँचनेवाले हैं। झरने से हमने अपनी पानी की केतली भर ली थी। उस झरने से हम १५ मील चल चुके थे और सामने दीखनेवाला मकान करीब पाँच मील था। इस पाँच मील को हम दो घंटे में पार कर सके। सामान के साथ किची-नीची पहाड़ियों में चलने की गति बहुत कम हो जाती है और थकान ज्यादा आती है। पर जब हम इस मकान के पास पहुँचे, तो हमने देखा कि यह बड़ा-सा मकान केवल खँडहर मात्र था। वह २८ अगस्त का दिन। दिन में तेज धूप और रात में तेज सर्दों का मौसम। इस धूप में निरन्तर चलने के कारण शरीर पसीने से तरबतर हो रहा था। प्यास भी ज्यादा लग रही थी। हमने अपनी छोटी-सी केतली का सारा पानी पी डाला। इन सूखे-नंगे पहाड़ों में पानी भी तो हर जगह नहीं मिलता। थोड़ी देर आगम करके हम आगे बढ़े।

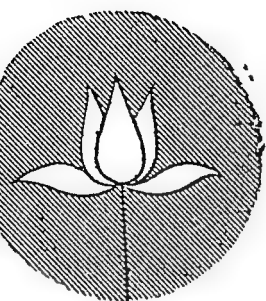
दो-तीन मील और चलने पर एक नदी मिली। यद्यपि इस छोटी-सी नदी का पानी बहुत साफ और पीने लायक नहीं था, फिर भी तेज प्यास के सामने हमने समझौता किया। थोड़ा और आगे बढ़ने पर बायें हाथ की तरफ करीब एक मील दूर एक छोटी-सी बस्ती नजर आयी। यद्यपि हमें एक मील अपने रास्ते से हटकर जाना था, फिर भी सिवा वहाँ जाने के और कोई चारा नहीं था। इस गाँव में जाने के लिए इस नदी को भी पार करना था। नदी में घुटनों तक ही पानी था, यह गनीमत थी। आखिर हम २५ मील चलकर थके-मोड़े, भूखे इस छोटे-से गाँव में पहुँचे। यह गाँव था—स्पिद्देवार किरमान ! छोटा-सा गाँव। एक टूटी-फूटी-सी मस्जिद। मस्जिद के पास ही एक मुल्ला साहब बैठे मजहब की कोई किताब पढ़ रहे थे। पूरे गाँव में यही एक आदमी थे, जो किताब पढ़ना जानते हो। हमारे चेहरे थके थे। पैर और कंधे दर्द कर रहे थे। गाम को ७ बजे हम मुल्ला साहब के पास पहुँचे। सामान उतारा। मुल्ला साहब ने बैठने का इशारा किया। हम बैठ गये। अपनी टूटी-फूटी फारसी में हमने बातचीत शुरू की। दो अजनबी आगन्तुकों को देखकर गाँवभर की स्त्रियाँ, बच्चे और पुरुष इकट्ठे हो गये।

मुल्ला साहब तथा अन्य ग्रामवासियों के लिए सचमुच यह समस्या थी कि हमें यहाँ ठहराये ? एक परिवार के लिए एक-एक मिट्टी की ओपड़ी थी। इन ओपड़ियों में स्त्री, पुरुष, बच्चे, भेड़े, गाय, मुर्गे—सभी रात में पनाह पाते हैं। ऐसी स्थिति में हमारे जैसे विदेश से आये हुए अतिथियों को कहाँ ठहराया जाय ? फिर इतने गरीब लोग कि हम दो आदमियों के लिए भोजन जुटाना भी किसी एक आदमी के लिए कठिन था। आखिर तीन-चार घरों से थोड़ा-थोड़ा भोजन इकट्ठा किया गया। मुल्ला साहब ने कहा : “हम गरीब हैं। ज़ायद हम अच्छी तरह से मेहमान-नवाजी नहीं कर सकेंगे। पर जो कुछ हमारे पास है, आपके लिए हाजिर है।” रात को हम मस्जिद में सोये। ५-७ घरों से एक-एक कम्बल लाया गया। ये कम्बल बहुत गन्दे, धूल से भरे हुए और

गन्धवाले थे । पर रात को सर्दी तेज हो जाती थी, इसलिए हमारे लिए ये कम्बल जरूरी थे । हमने अनुभव किया कि भले ही ये लोग गरीब थे, परन्तु दिलो से ये लोग अमीर थे । बार-बार वे हमारे पास आते । हमारी कुशल पूछते और अच्छी तरह मेहमान-नवाजी न कर सकने के लिए क्षमा-याचना करते । उनके लिए यह नयी और ताज्जुब की बात थी कि दो अमन के मुसाफिर उनके गाँव में पहुँचे हैं । वरना कहीं कोई विदेशी मुसाफिर यहाँ पहुँचता है ! कैसा कष्ट से भरा परीक्षा का दिन था वह !

ऐसी थी हमारी अफगानिस्तान की यात्रा ! फलो, फूलो और अगूरों के देश की यात्रा । जैसे मीठे खरबूजे, सरदे और अगूर अफगानिस्तान में खाये, वैसे दुनिया में कहीं नहीं मिले । अब कभी अगूर खाता हूँ, तो लगता है मानो कोई नकली अगूर खा रहा हूँ । वही हाल अनार का भी है । “जैसा खाओ अन्न, वैसा होगा मन” वाली कहावत के अनुसार इस देश के लोग भी अपने दग के निराले हैं ।

दिल्ली से चले । लाहौर-पेशावर से गुजरे । काबुल भी पीछे रह गया । ‘चलता मुसाफिर ही पायेगा मजिल और मुकाम ।’ अब सामने है ईरान ।



ओला \*  
और कविता की भूमि  
ईरान में \*





तायाबात ! ईरान का पहला पड़ाव ! यह है अनजान देश और अनजान भाषा । चारों ओर रेगिस्तान और सॉय-सॉय करती हुई भयकर ओधी । हम हूँद रहे थे कोई मेजवान । इतने में एक युवक ने पूछा : “आप क्या चाहते हैं ?” हमने बताया : “हम रातभर ठहरने की जगह चाहते हैं ।” बड़ा अजीब उत्तर था । अनेक होटल सामने हैं, फिर भी ठहरने की जगह चाहिए । वह बोला : “मैं कुछ समझा नहीं । मेरे साथ चलिये, हम चाय पीयेंगे और आपकी पूरी कहानी सुनेंगे ।” चाय के टेबल पर उसे मालूम हुआ कि हम केवल यात्री नहीं हैं, शान्ति के प्रचारक हैं, पैदल चलते हैं आदि । उसने ग़र के एक प्रतिष्ठित व्यक्ति के बगीचे में हमें ठहराया ।

क्या हिन्दू मुसलमान के घर खायेगा ?

७.

ईरान कला, कविता और सत्कृति का देश है, यह पहले ही दिन लोगों के जीवन तथा रहन-सहन से मालूम हुआ । हम ठहर गये । ग्राम

कोई धोभ नहीं। हमने विनम्र भाव से 'खुदा-हाफिज' किया और तीसरे गाँव में जाकर पनाह पायी।

## कष्टभरा मार्ग : सुखभरा आतिथ्य

हम एक रात सिसाब में ठहरे थे। वहाँ रात को एक सरकारी अधिकारी श्री फरीदून किरमानी भी रुके। वे जीप से आये थे। अचानक परिचय हुआ।

बोले : “मेरी जीप खाली है। चलिये, मेरे घर पर अतिथि बनिये।”

“हम तो केवल पैदल ही चलते हैं। हमें न बस चाहिए, न कार; न जीप, न साइकिल, न घोडा।” इस वाक्य से हमने अपनी कहानी प्रारम्भ की और “आणविक हथियारों के खिलाफ हमारा यह सक्रिय विरोध है” इस वाक्य के साथ हमने अपनी कहानी समाप्त की।

फरीदून बोले : “अच्छी बात है, मैं आपके इस विचार से पूरी तरह सहमत हूँ। कल जब आप बोजनूद् आये, तो मेरे अतिथि बनने का सौभाग्य मुझे प्रदान करे। आप मेरे अजीज मेहमान हैं। आपको मैं अपनी आँखों पर बिठाऊँगा।” वे बड़ी भावुकता में भरकर बोल रहे थे। फारसी भाषा कितनी मीठी, कितनी कोमल और कितनी ललित है, यह हमें उनके एक-एक वाक्य से महसूस हो रहा था।

दूसरे दिन २५ मील का रास्ता हमने पार किया। दिनभर वर्षा होती रही। हमारे जूतों में सेर-सेरभर मिट्टी लिपट गयी। सारा रान्ना कीचड़मय हो गया था। हम उस दिन जितना थके, उतना जायद उमसे पहले किसी दिन नहीं थके होंगे। दिनभर कुछ भी खाने को नहीं मिला। रास्ते में ही रात पड़ गयी। दूर से जब बोजनूद् शहर की चमकती हुई बिजली हमें दीव्य पड़ी, तो लगा अभी भी हमें घंटाभर चलना होगा। ठण्डी हवा की धार और अन्धेरी रात की वर्षा में चल रहे दो यात्रियों को देखकर सरसर करती हुई एक काग हमारे पास रुकी।

“बैठियेगा कार मे ! कहाँ जाइयेगा ?” एक साथ दो प्रश्न । अन्धेरी और वर्षा । उसके बीच ठण्डी हवा के झोके ।

हमने उत्तर दिया : “हम बोजनूर्द जा रहे है ।”

“गाडी मे बैठिये । शहर अभी दो तीन मील है ।”

“आप चलिये । हम पैदल चलकर आयेगे ।” हमारा उत्तर सुनकर कारवाला मन-ही-मन शायद हमे पागल समझकर आगे बढ़ गया । हमने सोचा कि क्या इस कठिन समय मे यह कार हमारी परीक्षा करने आयी थी ।

बहुत थककर जब हम बोजनूर्द पहुँचे, तो हमारे मेजबान ओखे फाड़े वेताबी से हमारी प्रतीक्षा कर रहे थे । हम पहुँचे कि उन्होंने फारस के बेहतरीन गलीचो से सजे कमरे मे हमारे ठहरने का प्रबन्ध किया । बेहतरीन शराब मँगायी । पर जब हमने बताया कि हमने शराब कभी नहीं पी और न पीते है, तो वे बहुत चकित हुए । बोले : “इस ठण्डे देश मे यह बहुत जरूरी है । खैर, आप नहीं पीयेगे तो आज मैं भी नहीं पीऊँगा । पर बिना इसके काम चलेगा आपका ? खास तौर से रूस मे तो ब्रोदका बहुत जरूरी है ।” खैर, दिनभर की बेतहाशा थकान और भूख के बावजूद जब हम भोजन करके गरम लिहाफ मे सोये, तो पलभर में सुखभरी नींद आ गयी ।

## अणुबम और विवाह



हम गोवद-ए-कावूस शहर के एक अवकाश-प्राप्त कप्तान और बहुत धनी सज्जन श्री हुनरवर के घर पर मेहमान बने थे । रातभर उनके साथ विभिन्न विषयों पर हमारी चर्चा होती रही । प्रातः जब हम चलने लगे, तो वे बोले : “आप मुझे अपना भाई समझिये । यह घर आपका घर है । आप अभी गाँवो मे पैदल जायेंगे । कोई आपके ‘मिशन’ को समझेगा, कोई नहीं भी समझेगा । अतः आप कुछ पैसे पाम रख लीजिये ।

संकोच की बात नहीं। यदि आप यह स्वीकार करेंगे तो मैं अपना सौभाग्य मानूँगा। मैं तो अपने शिकार के शौक पर ही हजारों खर्च कर देता हूँ। इस पुण्य-कार्य में भी मेरा कुछ सहयोग हो जायेगा, तो मुझे बहुत प्रसन्नता होगी।” पर हमने उन्हें अपने ‘मिशन’ की बात समझायी कि “आणविक हथियारों और तैयारियों के विरोध के प्रतीकस्वरूप हमने पैसा न रखने और पैदल चलने का तय किया है। फिर आप जैसे लोग सर्वत्र हमें अपना प्रेम प्रदान करेंगे। आप चिन्ता न करें। आप जैसे बुजुर्गों का आशीर्वाद ही हमारा सबसे बड़ा धन और पाथेय है। हमें और कुछ नहीं चाहिए।”

उनसे विदा लेकर हम निकल ही रहे थे कि मोटर पार्ट्स की एक बड़ी दुकान में बैठे एक युवक की नजरो से हमारी नजरे टकरायी। वह युवक अपने चश्मे के पीछे से हमारी ओर देखकर कुछ सोचने लगा कि निरन्तर आगे बढ़ने के अभ्यस्त हमारे कदम उस दुकान से कुछ आगे बढ़ गये। इतने में पीछे से एक आदमी साइकिल पर आया और उस दुकान पर चलने का आग्रह करने लगा। हम उस युवक के प्रथम दर्शन से ही इतने प्रभावित थे कि तीन सौ कदम वापस जाकर उससे मिलने का लोभ सवरण न कर सके।

दुकान के द्वार पर प्रतीक्षा करनेवाले उस युवक से हम मिले तो हमें लगा, मानो हम सदा के मित्र हैं। यह युवक गांधी का भक्त था और आणविक हथियारों का दुश्मन। उसने अपने विवाह न करने का कारण बताते हुए कहा : “इस असुरक्षित विश्व में मैं सन्तान उत्पन्न करना नहीं चाहता।” हमने श्री मानुचेर नाम के इस युवक के साथ दो घंटे बिताये। श्री मानुचेर ने हमें कहा कि “मैं आपके साथ ही चल पड़ूँ, ऐसा जी चाहता है। पर कुछ जिम्मेदारियों और परिस्थितियों में उलझा हूँ। आपका हर तरह में सहयोग करना हमारा कर्तव्य है। आप जो काम कर रहे हैं, वह किसी एक देश, एक वर्ग या जाति के लिए नहीं, सबके लिए है। आप केवल भाग्य के प्रतिनिधि नहीं, बल्कि हम

सबके है।” उस युवक की तीव्रता और जागरूकता ने हमें मोह लिया। ऐसे युवक किसी भी दिन सब कुछ छोड़कर कार्यक्षेत्र में उतर सकते हैं।

शाकाहार या दिल की हिंसा !



शाहपसन्द में हम एक बहुत ही साधारण मध्यवित्त परिवार के अतिथि थे। उन्हें हमारे आने की इतनी प्रसन्नता थी कि वे हर तरह से हमें आराम पहुँचाने और आतिथ्य करने की कोशिश में थे। हमारे मेजबान की पत्नी तो हमारे पहुँचने के क्षण से ही हमारी सेवा में जुटी थी। उसने अपनी सारी कला सँजोकर हमारे लिए एक खास तरह का ईरानी पुलाव तैयार किया। उस पुलाव में उसने सुगन्ध और स्वाद के लिए मास के कुछ टुकड़े भी डाले। हार्दिक श्रद्धा और उमड़ते हुए प्यार से उसने हमारे सामने पुलाव परोसा। हमने देखा कि उसमें गोमूत्र के कुछ टुकड़े पड़े हैं। हमने उन्हें बताया कि “क्षमा करें, हम शाकाहारी हैं। अतः यह पुलाव नहीं खा सकेंगे।” वस, हमारा यह कहना था कि मेजबान की पत्नी का चेहरा उतर गया। बेचारी निराश हो गयी। हम भी बड़े धर्म-सकट में थे। उस बहन का उतरा हुआ चेहरा देखकर मुझे स्पष्ट प्रतीत हुआ कि हमारा शाकाहार उसके दिल पर गहरा आघात लगा रहा है। कभी-कभी अहिंसा में से कैसे असन्तोष पैदा होता है, इसका अनुभव मिला। हमने आखिर पुलाव नहीं खाया। दूध चीनी के साथ रोटी और उसके बाद गहरे लाल रंग की गिरीवाला मीठा तरबूज खाकर हमने उनसे क्षमा माँगी। रह-रहकर उसका निराग मुँह सामने आ रहा था। वहन तो हमारे साथ ठीक वैसा ही बर्ताव कर रही थी, मानो कोई सालों से बिछुड़ा भाई उसे मिल गया हो। उसने कहा : “अच्छा, आप मास नहीं खाते तो ठीक है, इन मास-खण्डों को अलग कर दीजिये। पुलाव खाने में क्या आपत्ति है ?” फिर कहने लगी : “आपको इतना लम्बा सफर करना है। दुबला-पतला-सा शरीर है। कैसी-

कैसी भयकर सर्दी का सामना करना है। यह कठिन व्रत क्यों ले रखा है ?” पर हमने विस्तार से, अहिंसा की बात समझाते हुए शाकाहारी रहने का कारण बताया।

## विस्कुट का डिब्बा



हम चल ही रहे थे कि धीरे से एक जर्मन कार हमारे पास आकर रुकी। उसमें से एक ३५ साल का आकर्षक व्यक्तित्ववाला युवक निकला और पूछा : “आपको कहाँ जाना है ? क्या आप यात्री है ?”

हमने बताया : “हम पदयात्री है और पैदल गोरगान जा रहे हैं।”  
“पैदल क्यों ? हमारी गाड़ी में बैठिये।”

उसके इस निवेदन पर हमने कहा : “हमें खेद है कि आपके इस निमन्त्रण को स्वीकार करने की स्थिति में हम नहीं हैं। दिल्ली से यहाँ तक आप जैसे अनेक वन्धुओं के निवेदन को अस्वीकार करके हम पैदल आये हैं और इसी तरह अभी दूर तक चलते रहना है।”

बड़ी दिलचस्पी हुई, उन्हें हमारी बातों में। बोले : “आपके साथ कुछ समय बिताने को जी चाहता है। क्या गोरगान में आप हमारे अतिथि बनेंगे ?”

हमने कहा : “यह स्वीकार है।” वे अपने घर का पता देकर चले गये।

हम अगले दिन पहुँचे गोरगान। हम उक्त युवक श्री कताची के घर अतिथि बने। अगले दिन प्रातः चलने की तैयारी की, तो उनकी पत्नी ने अपना नया आग्रह पेश कर दिया। बोली : “आपके आने का लाभ ही क्या, यदि आप मेरे हाथ का भोजन करके न जायें। दोपहर तक तो रुकना ही होगा।” चूँकि पिछली शाम को बहुत देर हो जाने में हमने होटल में भोजन किया था, इस बहाने के आग्रह को हम टाल नहीं सके। सुबह चलने का कार्यक्रम स्थगित किया। उन्होंने अपने

अनेक मित्रों को भी हमसे मिलाने के लिए भोजन के समय आमन्त्रित किया। वहन बोली : “कहाँ भारत, कहाँ ईरान। उसमें भी गोरगान, एक कोने पर। लेकिन फिर भी हम कितने भाग्यशाली हैं कि आप आये। यह मित्रता का प्रारम्भ चिरस्थायी हो। आप अपने पवित्र उद्देश्य को पूरा करके भारत पहुँचे।” वह न जाने इसी तरह कितनी देर गदगद होकर हमें देखती रही और कुछ-न-कुछ कहती रही। जब दोपहर बाद हम चलने लगे, तो श्री कताची ने धीरे से हमारे कान में आकर कहा : “आप मेरे भाई के समान हैं। कतई सकोच न करें। ये कुछ तुमन (रुपये) साथ रख लें।” हम उनका यह हार्दिक प्यार और भोला अपनत्व पाकर धन्य हो रहे थे। उनकी यह सहानुभूति उस सारे ‘मिशन’ और आन्दोलन के प्रति थी, जो युद्ध और आणविक आयुधों के विरुद्ध चल रहा है तथा जिसके हम अग हैं। हमने उन्हें समझाया कि “क्या आपके इस अमित प्यार से बढ़कर भी कोई धन हो सकता है? आपकी सहानुभूति का धन ही हमें आगे बढ़ने की ताकत देगा।” पर वे बड़े चिन्तित थे। न जाने हमें रास्ते में भोजन मिले न मिले। कोई दिक्कत हो। उनका हृदय आश्वस्त नहीं हो रहा था। आखिर चलते समय दो पाउंड विस्कुट का एक डिब्बा जवरन हमें दे ही दिया और वह हमने स्वीकार किया। ओह, सब जगह प्यार की कैसी गंगा बह रही थी!

जूतों की भेंट और पुत्री की माँग



पिछले दिन के पड़ाव पर हमें श्री अल्वास खियानी और उनके भाई मिले थे। वे अपने घर आने का निमन्त्रण दे गये थे। एक ओर मध्य एशिया का सबसे ऊँचा देमावन्द शिखर १८ हजार फुट की ऊँचाई पर आसमान से बात कर रहा है, दूसरी ओर समुद्र सतह से भी ५० फुट नीचे संसार की सबसे विशाल झील ‘कास्पियन सी’ हिलोरें ले रही है। इन दोनों के बीच बसे हुए रूस के सरहद्दी नगर वेहशहर में लगभग दो



घंटे के लिए हम अब्बास खियानी के अतिथि थे। बैठे-बैठे उनकी नजर गयी हमारे घिसे जूतों की तरफ। न जाने उनके मन में क्या आया कि अचानक उठे और पास की ही दुकान से दो जोड़ी नये जूते ले आये। हमने कहा : “अभी इनसे काम चल रहा है, आप चिन्ता न करें।” तो बोले : “मुझे भी तो कुछ सेवा करने का अवसर दीजिये। आप तो किसी-न-किसी मित्र से कहीं तो जूते लेंगे ही। फिर इतनी सेवा मेरी भी लीजिये।” वे किसी तरह न माने। हमने भी उनका आग्रह स्वीकार किया। हमें इस यात्रा में जूता ही सबसे ज्यादा जरूरी, सहायक और उपयोगी चीज थी। पर एक जूता एक हजार मील से ज्यादा नहीं चलता। दिल्ली से लिया हुआ जूता काबुल में समाप्त और काबुल का जूता यहाँ समाप्त। हम तो पूरी तरह जनावारित थे। हमें भोजन चाहिए, या कपड़े, जूता, साबुन, पोस्टेज, कलम-कागज, कुछ भी चाहिए—सारी चीजें सीधी वस्तु के रूप में ही हम लोगों से प्राप्त करते थे।

अब्बास खियानी के एक मित्र भी वही बैठे हमारे साथ बातें कर रहे थे। हमारी बातचीत पहुँची व्यक्तिगत जीवन तक और उन्होंने पूछ डाला : “क्या आपने शादी की है?” प्रभाकर तो अविवाहित थे, पर मैंने कहा कि “मैं अपनी पुत्री को घर छोड़कर आया हूँ, जो अब करीब छह महीने की होगी।” इस पर वे भाई बोले : “मेरी पहली सन्तान एक पुत्र है, जिसका नाम है—हमीद। उसकी उम्र भी सालभर से कम है। अन्तर्राष्ट्रीय मित्रता और भारत-ईरान-मित्रता को दृढ़ करने के लिए क्या आप अपनी पुत्री का मेरे पुत्र के साथ विवाह करेंगे?”

गजब का प्रस्ताव था। मैंने कहा, “मेरी पुत्री और आपका पुत्र अपने विवाह के बारे में स्वयं ही निर्णय करेंगे, मेरी तरफ से कोई बाधा खड़ी होने का सवाल ही नहीं।”

“क्या नाम है आपकी पुत्री का?” उस भाई ने पृच्छा।

“माधना” मैंने बताया। परन्तु इस भाई को ‘माधना’ नाम का उच्चारण कठिन मान्द्रम दे रहा था। अतः उसने कहा कि “यदि आप

एतराज न करे, तो मैं उसके लिए एक नया नाम भी सुझाना चाहता हूँ और उसने साधना का नाम 'पाकीजा' रख दिया। कितना भावुक जवान था वह और कितना स्नेह था उसके मन में भारत के प्रति !

## ‘भाईजी’ के साथ



तेहरान में १६ दिन का हमारा प्रवास हमारे लिए एक मधुर यादगार बनकर रहेगा। भारत में बैठकर हम यह कल्पना भी नहीं कर सकते थे कि तेहरान जैसे अति आधुनिक नगर में हम अपनी जेब में एक भी पैसा रखे बिना एक लम्बे समय तक रह सकेंगे। पर ऊँचे विचार और आचार से परिपूर्ण एक आदर्श जीवन व्यतीत करनेवाले भाई मक़्खनसिंह जैसे मेजवान के मिलने पर यह आसानी से सम्भव हो सका।

सफेद पगड़ी और लम्बी दाढ़ी के बीच सदैव मुस्करानेवाला चेहरा और गम्भीर आँखें ‘भाईजी’ के व्यक्तित्व को समझने में पर्याप्त मदद करती हैं। हाँ, वे तेहरान में ‘भाईजी’ के नाम से ही पहचाने जाते हैं। तेहरान में सैकड़ों भारतीय व्यापारी हैं और उनके लिए भाईजी, सचमुच भाईजी ही है। कोई भी भारतीय किसी भी कठिनाई में भाईजी की सहायता सहज प्राप्त कर लेता है। कोई बीमार है या किसीके घर के लोग भारत गये हुए हैं या किसीको और किसी तरह की सहायता चाहिए, वह भाईजी से मिलेगी।

भाईजी सायकल अपने घर से कार में निकलेगे और ऐसे घरे का एक चक्कर लगाकर उनसे पूछेंगे कि “सब कुछ ठीक है ? और क्या आवश्यकता है ?” इत्यादि। सेवा का ऐसा आदर्श व्यवहार देखकर कोई भी उनके प्रति सहज नतमस्तक हो जाता है।

तेहरान के व्यापारी भारतीयों में वे शायद सबसे अधिक धनी हैं। पर धन का गर्व उन्हें छू भी नहीं गया है। उन्हें देखकर किसीको यह अनुमान भी होना कठिन है कि वे एक धनवान् व्यक्ति हैं ! बहुत सादा

भोजन, बहुत सादा लिवास और बहुत सादी रहन-सहन। प्रतिदिन अपने हाथ से कपड़े धोते देखकर सब लोग कहते हैं : “विदेग में आप जैसा धनी व्यक्ति अपने हाथ से कपड़े धोये, वह शोभा नहीं देता।” पर भाईजी के अपने मूल्य ही उनकी शोभा है। “धन का उपयोग में अपने निजी सुख और भोग के लिए करें, यह मेरा अधिकार नहीं।” —इस तरह वे कहते हैं और सचमुच समाज के एक ट्रस्टी की तरह सँभलकर धन का उपयोग करते हैं। सामाजिक कामों में वे नुक्तहस्त से धन देते हैं और आज के सामाजिक कानून द्वारा मान्यता प्राप्त साधनों से दूर हटकर अनैतिक उपायों द्वारा धनोपार्जन का प्रयत्न नहीं करते।

क्षण-क्षण का पूरा उपयोग करनेवाला ही समय की पावन्दी भी निभा सकता है। भाईजी का पूरा दिन व्यस्त रहता है। सारा कार्यक्रम बँधा हुआ रहता है। वे किञ्चित् मात्र समय व्यर्थ नहीं खोते। उनका दिन प्रातः चार बजे प्रारम्भ होता है और रात १० बजे समाप्त होता है। जब तक हम उनके साथ रहे, प्रतिदिन ठीक सात बजे वे अपने हाथ से नाश्ता तैयार करके हमें खिलाते थे। हमें बड़ा सकोच महसूस होता था कि भाईजी हमारे लिए इतने सवेरे नाश्ता तैयार करते हैं, पर भाईजी ने कहा : “आप अपने कर्तव्य को पूरा करने के लिए जीवन खपा रहे हैं, मैं यदि आपकी थोड़ी-सी सेवा कर लूँ, तो इसमें कौन बड़ी बात है। यह तो मेरा कर्तव्य ही है।”

भाईजी के निरीक्षण में एक भारतीय स्कूल भी चलता है। भाईजी अपने व्यापार-धन्धे से छुट्टी लेकर प्रतिदिन एक घंटा वहाँ पढ़ाते हैं। तेहरान जैसे नगर में उन्होंने भारतीय बालक-बालिकाओं के लिए बहुत ही उत्तम शिक्षा का प्रबन्ध किया है। भाईजी गुरु नानक के सच्चे भक्त हैं और अपने जीवन में गुरु नानक के सिद्धान्तों को उतारने के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहते हैं। वे समाज के एक ऐसे सेवक हैं, जो सेवा के बदले समाज से किसी तरह का प्रतिदान नहीं चाहते, यत्र नहीं

चाहते। 'सेवा, सेवा के लिए हो' यह उनका जीवन-सूत्र है। उनके जीवन में सादगी और नम्रता का सुन्दर समन्वय हुआ है।

भाईजी के साथ रहने का हमें अवसर मिला, यह हमारा ही सौभाग्य था। भाईजी कहने लगे कि "आप जैसे युवक अहिंसा और शान्ति का मंत्र लेकर निकल पड़े हैं, यही इस बात का प्रमाण है कि अहिंसा में कितनी बड़ी शक्ति है। भले ही आज ससार में युद्ध और शस्त्रास्त्रों की होड़ हो और आपकी बात कोई न सुने, पर आपके प्रयत्न कभी व्यर्थ नहीं जायेंगे।"

### शिक्षित किसान के घर पर



तेहरान से ४० मील दूर एक गाँव है, कमालावाद, और कमालावाद में ८ लाख वर्गमीटर भूमि का एक बड़ा फार्म है। यद्यपि ईरान के लिए, जहाँ जनसंख्या कम और भूमि अधिक है, यह कोई बड़ा कृषि-फार्म नहीं, फिर भी हम इसे एक अच्छा, बड़ा फार्म कह सकते हैं। इस फार्म को चलानेवाले श्री रजा के साथ हम एक दिन रहे। यह दिन हमारी ईरान-यात्रा का एक स्मरणीय दिन रहेगा।

जब हम श्री रजा से पहली बार मिले, तो हमें यह किसी तरह अनुमान नहीं हो सकता था कि यह व्यक्ति इस बड़े फार्म का मालिक है। तेहरान में इनका एक बड़ा मकान है और घर पर दो कारें हैं। इस तरह के धनी व्यक्ति तो बड़ी शान-शौकत के साथ रहना पसन्द करते हैं, जब कि श्री रजा छुटनों तक का खूब का जूता पहने मिट्टी में काम कर रहे थे। कीचड़ के अनेक निशान लगे थे। श्री रजा कहते हैं : "हर इन्सान को पूरी मेहनत करने के बाद ही खाने का हक है। मिट्टी में काम करना हो या दफ्तर में, काम तो काम ही है।" कृषि-कालेज से डिप्लोमा लेकर तथा यूरोप और एशिया के अनेक देशों का भ्रमण करने के बाद एक युवक इस दृढ़ता के साथ सुबह से शाम तक कड़ी मेहनत करता हो, ऐसे उदाहरण बहुत कम ही मिलेंगे। श्री रजा ने कहा :

“ईरान के पढ़े-लिखे लोगो मे भयकर वेकारी है, क्योंकि वे श्रम करना नहीं चाहते, बल्कि दफ्तरो मे बैठनेवाले बाबू बनना चाहते है।” वातचीत के प्रसंग मे हम श्री रजा के प्रगतिशील विचारो की सुगन्ध अनुभव कर रहे थे। वे एक किसान है, श्रमिक है, पर गांधी, टालस्टाय और हेमिंग्वे की पुस्तको से उनका कमरा सजा है। फारसी गलीचो से श्री रजा को जितना प्यार है, उतना ही इस विचारक-त्रयी की पुस्तको से भी प्यार है। इसीलिए उनका घर इन दोनो की सजावट का एक नमूना है। वे केवल उन किताबो को पढ़ते ही नहीं है, बल्कि अपना और अपने परिवार का जीवन उसी बुनियाद पर खड़ा कर रहे हैं। श्री रजा ने हमें बताया कि “तेहरान मे मेरी एक बहुत सुन्दर कोठी है, पर मेरा वहाँ मन नहीं लगता। बड़े शहर मे विलास और ऐयाशी के वातावरण के बीच अनेक दोष तथा दुर्गुण पैदा होते है, आलस्य बढ़ता है, ज्ञान-शौकत बढ़ती है। तेहरान की जिन्दगी नाच, सिनेमा, काफी हाउस और क्लबो के इर्द-गिर्द घूमती है। यह सब मुझे पसन्द नहीं। वच्चो को भी वहाँ बुरे संस्कार मिलते हैं। इसलिए इतनी दूर आकर जंगल मे रहता हूँ, श्रम करता हूँ और अपने परिवार के साथ आनन्दपूर्ण जीवन व्यतीत करता हूँ। दिनभर खेती आदि कामो मे व्यस्त रहने से मुझे शहर की याद भी नहीं आती।”

धर्म के बारे मे भी उनका दृष्टिकोण बहुत स्पष्ट और सन्तुलित था। उनके ख्याल से भूत, भविष्य और वर्तमान के लिए किसी एक ही नियम को अपरिवर्तनीय और अतिम नहीं माना जा सकता। मजहब अपरिवर्तनीय बना, इसीलिए वह आज के वैज्ञानिक दृष्टिकोण से मेल नहीं खाता। उन्होने कहा कि “मैं इन्सान हूँ और इन्सानियत के अलावा मेरा कोई मजहब नहीं।”

श्री रजा की तरह ही श्रीमती रजा भी बहुत प्रगतिशील और मधुर स्वभाव की महिला है। उनके प्रेमपरिपूर्ण व्यवहार और आतिथ्य से हमें ऐसा लग रहा था, मानो यह पूरा परिवार हमारा बहुत पुराना मित्र है।

श्री रजा के एक पुत्र है सईद, दो पुत्रिया हैं जिनके नाम उन्होंने सीमा और शीला रखे हैं। संस्कृत नाम ! श्री रजा अपनी पुत्र-पुत्रियों का निर्माण अत्यन्त मुक्त, प्राकृतिक और श्रम-परायण वातावरण में कर रहे हैं। बच्चों के जीवन में मानवीय मूल्यों का अवतरण हो, यही उनका प्रयत्न है। श्री रजा अपने बच्चों से बेहद प्यार करते हैं। वे सही अर्थ में इन बच्चों के लिए नयी तालीम के शिक्षक हैं।

श्री रजा ने हमें अपनी शुभ कामना देते हुए कहा : “यदि हम इस धरती पर सुन्दर, बुद्धिमान और स्वस्थ मानव को देखना चाहते हैं, तो अविलम्ब आणविक प्रयोगों पर प्रतिबन्ध लगाना होगा। जब मैं अपने इन तीन सुकुमार बच्चों के भविष्य को आणविक प्रयोगों की अवस्थिति के साथ मिलाकर देखता हूँ, तो मेरा हृदय कॉप उठता है। आणविक अस्त्रों के खिलाफ ऐसे तीव्र जन-आंदोलन की जरूरत है, जिससे कि बड़ी शक्तियों को बाध्य होकर इन हथियारों का विसर्जन करना पड़े।”

कार में चलो न, यहाँ कौन देखता है ?



एक ठंडी सुबह ! बादलों से भरा हुआ आकाश और शीतलहरी से भरी हुई धरती। हम दो यात्री सिर से पैर तक सारे शरीर को गरम कपड़ों से ढँककर सड़क पर चल रहे थे। उस ठंडी में सड़क पर चलने-वाला शायद ही कोई देख पड़े। पर हम चल रहे थे। जब सॉय-सॉय करती हुई हवा रुकने का नाम नहीं लेती, तो हम ही क्यों रुके ? इतने में एक छोटी जर्मन कार का हॉर्न हमारे कान में पड़ा। हमने देखा कि एक पुरुष और एक स्त्री हमसे पूछ रहे हैं कि “कहाँ जायेंगे ?”

“हम गाजविन जा रहे हैं, वहाँ से आगे रूस की तरफ जायेंगे।” हमारा यह उत्तर सुनकर महिला ने बहुत मधुर स्वर में कहा : “हम भी गाजविन जा रहे हैं। बहुत तेज सड़ें हैं, कार में बैठ जाइये।”

हमने बताया : “हम भारत से यहाँ तक करीब पचीस सौ मील पैदल चलकर आये हैं और मास्को तथा वाशिगटन तक पैदल ही जायेंगे, ऐसा हमारा प्रण है।”

“ओह, हमने अखवार में आपके बारे में पढ़ा था। आप अणुअस्त्रों के विरोधी हैं और मास्को तथा वाशिगटन जा रहे हैं।”—पुरुष यह कहते-कहते कार से बाहर निकले।

ये थे श्री रहीमी रजावी। गाजविन शहर के प्रतिष्ठित नागरिक।

श्री रहीमी ने कहा : “आपकी बात ठीक है, पर कार में चलो न, किसीको पता नहीं चलेगा। यहाँ कौन देखता है? मैं भारत के लोगों से जाकर यह कहूँगा नहीं कि आपने पदयात्रा भंग कर दी थी। अभी गाजविन पचीस मील दूर है। घटेभर में पहुँच जायेंगे, वरना इस सर्दी में दो दिन चलना पड़ेगा।” उनकी बात पर हमें हँसी आयी।

“दो दिन नहीं, हमें तो दो साल इसी तरह चलना है। फिर किसी देखनेवाले के लिए हम पैदल नहीं चलते! स्वयं हमने यह निर्णय किया है। यदि हम आपकी कार में चले, तो हमें कोई रोकनेवाला भी नहीं। पर जब तक जनता का शान्ति-सन्देश हम रूस और अमेरिका तक नहीं पहुँचायेंगे, तब तक यथासम्भव पैदल चलने का हमारा निर्णय है। यह पैदल यात्रा अणुअस्त्रों के विरुद्ध एक सघर्ष है।”

उनसे काफी देर बातें हुईं। उन्होंने पूछा : “आप लोग कौन हैं? भारत में क्या करते हैं?”

हमने बताया : “हम गांधी के सिपाही हैं और भारत में समाज-सेवा का काम करते हैं।”

श्री रहीमी ने तुरन्त अपनी पत्नी से कहा : “ओह, ये उस गांधी के सिपाही हैं, जिन गांधी ने भारत की आजादी के लिए सत्ताहो तक अन्न नहीं खाया। ये किसी तरह कार में नहीं चलेगे।”

उनकी पत्नी ने कहा : “अच्छा, कल गाजविन में आप आयेंगे तो हमारे अतिथि रहेंगे।”

श्री रहीमी ने कहा : “मुझे तो सर्दी लग रही है । कल आप हमारे घर आये, वही ठहरे । विस्तार से बातें होगी ।”

जब हम श्री रहीमी के सदैव प्रसन्न वातावरण में रहनेवाले घर पर पहुँचे, तो वे सायकाल की नमाज पढ़ रहे थे । उनका सिर नीचे झुका हुआ था । नमाज में खलल न पड़े, इस खयाल से हम बाहर बरामदे में ही खड़े हो गये । ज्योंही श्री रहीमी ने सिर ऊपर किया कि खिड़की में से हम उन्हें दिखाई पड़े । न जाने उन्हें कैसा भावोद्रेक हुआ कि नमाज को बीच में ही छोड़कर वे बाहर आये और उन्होंने हमें अपनी बाँहों में भर लिया । हमने जब उनसे क्षमा माँगी कि आपकी नमाज में हमारे कारण व्यवधान हो गया, तो कहने लगे : “हमारे पैगम्बर ने सत्य पर चलनेवालों को खुदा का बन्दा कहा है । जब हमने पिछले दिन आपसे कहा था कि कार में हमारे साथ चलिये । किसीको पता नहीं चलेगा । फिर भी आप कार में नहीं आये । आप सत्य पर चलनेवाले हैं । अतः आपको अतिथि के रूप में स्वागत देना ही सच्ची नमाज है ।”

श्री रहीमी अत्यन्त विनोद-प्रिय और अतिथि-प्रेमी है । वे अपने बालबच्चों को जितना प्यार करते हैं, उतना ही उनका आदर भी करते हैं । गहनाज और महनाज नाम की दोनों पुत्रियाँ और श्रीमती रहीमी हमारे आतिथ्य में जुट गयीं । बादाम, अखरोट, किसमिस, पिस्ता और सेब-सतरों का हमने नाश्ता किया । हमारे लिए कुछ विशिष्ट प्रकार का ईरानी ढंग का मास पकाने की योजना बन रही थी । पर हमने बताया कि “हम तो मासाहार से पूर्णतः परहेज करते हैं ।” इस पर सभी घर-वालों को बड़ा आश्चर्य हुआ । श्री रहीमी अपने बच्चों की तरफ मुखातिब होकर कहने लगे : “ये गांधी के सिपाही हैं । एक पवित्र मिशन के लिए घर-द्वार से दूर कितने कष्ट उठा रहे हैं । पैदल चटना, पैसा साथ न रखना, सिगरेट नहीं, गराब नहीं, मास नहीं । ऐसे युवकों की भावना और उनका प्रयत्न अवश्य सफल होगा ।” फिर हमसे कहने लगे : “आप जैसे नये ढंग के अतिथियों की सेवा का अवसर मेरे लिए एक,



ऐतिहासिक महत्त्व की घटना है। मैं हृदय से कामना करता हूँ कि आप अपने उद्देश्य में सफल हों।”

घर क्या था, स्नेह का दरिया था। दूसरे दिन प्रातः हमारे विदा होने का समय आया, तो श्रीमती रहीमी बोली : “कल शाम को आये और आज सुबह चल दिये ! ऐसी भी क्या जल्दी है ! कम-से-कम एक दिन तो रहिये।” हमारे बहुत अनुनय-आग्रह के बाद प्यारभरे दिल से श्रीमती रहीमी और पूरे परिवार से आज्ञा मिली। लग रहा था, मानो हम अपनी माँ से और अपने घर से विदा ले रहे हैं। हमारी इस माँ ने हमारी जेबों में सन्तरे और सेब भर दिये। “रास्ते में कहीं भूख लग जाय तो !” और तब तो हमारे आश्चर्य का ठिकाना ही नहीं रहा, जब करीब १२ बजे पूरे परिवार के साथ श्री रहीमी अपनी कार में आकर गाजविन से आठ मील दूर मिले। बोले : “आज के रास्ते पर आपके लिए कोई गाँव नहीं है। दोपहर को आप भोजन कहाँ करोगे, इसकी मुझे चिन्ता हुई। सोचा, क्यों न आपके साथ रास्ते पर ही पिकनिक का आयोजन हो ?” हम कुछ न कह सके। लगा, मानो हम अपनत्व और प्यार की गंगा में पिकनिक कर रहे थे। कहाँ भारत और कहाँ ईरान ! पर मान-वीय स्नेह की धारा सर्वत्र समान है।

यों बादशाह से मिले

“आपको हमारे बादशाह से भेंट करने के लिए काला सूट पहनकर आना होगा। यह शाही दरबार की परम्परा है !” ईरान के वजीरे-दरबार ने हमारे पास यह खबर भारतीय दूतावास की मार्फत भिजवायी। हम इससे पहले वजीरे-दरबार से रूबरू मिल चुके थे। उस समय ऐसी कोई बात नहीं आयी थी। हम अपना सादा कुरता-पाजामा पहनकर ही गये थे। शाह से मिलने के २४ घण्टे पहले जब हमें यह खबर मिली, तो हमने भारतीय दूतावास के प्रथम सचिव से कहा कि “हम भारत से

पैदल चलकर इस खूबसूरत नगरी तेहरान तक यही कुरता-पाजामा पहनकर पहुँच गये। हजार-हजार ईरानी जनता से हम इसी वेश में मिले हैं। ईरान के बादशाह के दरबार में भी हम अपनी इसी वेशभूषा में जायेंगे। बादशाह से मिलने 'हम' जा रहे हैं, हमारा 'वेश' नहीं।" हमारी यह बात सुनते ही हमारे पास बैठे एक भारतीय मित्र ने कहा : "आप क्यों चिन्ता करते हैं, मैं आपके लिए और आपके साथी के लिए काले सूट का प्रबन्ध कर दूँगा।"

मैंने तुरन्त प्रतिवाद किया : "नहीं ! सवाल काले सूट के प्रबन्ध का नहीं। सवाल तो विचारों और सिद्धान्तों का है। हम एक भी पैसा जेब में रखे बिना दिल्ली से यहाँ तक पहुँच गये। हमारा यह भी निश्चय है कि हम अपनी पूरी शान्ति-यात्रा पैदल और बिना पैसे के करेंगे। फिर हम बादशाह से मिलने के लिए आपसे ब्लैक सूट खरीदने के लिए कहे, क्या यह उचित है ?" मेरे साथी प्रभाकर ने भी कहा : "वापू जब गोलमेज कान्फ्रेंस में भाग लेने लन्दन गये थे, तो अपनी धोती और चदर में ही गये थे।" आखिर दूतावास के सचिव को भी, जो बहुत खूबसूरत सूट पहने हुए थे, हमारी बात ने प्रभावित किया। वे बोले : "आप लोग ठीक कहते हैं। आप जो कपड़े भारत में पहनते हैं, वही कपड़े पहनकर बादशाह से मिले, यह बात वजीरे-दरबार को स्वीकार होनी चाहिए।"

हमने अपने मन में यह तय किया था कि यदि दरबार की तहजीब के नाम पर हमें फिर भी काले सूट में ही आने के लिए कहा जायगा, तो हम शाह से मिलने का विचार ही छोड़ देंगे, लेकिन किसीसे सूट की भीख नहीं माँगेगे। दूतावास के सचिव ने सारी बात वजीरे-दरबार के सामने रखी। अजीब मामला था। इस तरह की बात शायद ही पहले कभी उठी हो। बहुत सोच-विचार के बाद हमें यह सूचना दी गयी कि हम अपना कुरता-पाजामा पहनकर बादशाह से मुलाकात कर सकेंगे। हमारे मेजबान ने उसी दिन हमारे कपड़े 'लाण्डी' में धुलवाये। मेरा

कुरता तो कमर के पास से थोड़ा फट भी गया था, पर मेरे पास वही एक कुरता था। फटा कुरता पहनकर मिलने जाना अच्छा नहीं लग रहा था, पर मेरे सामने तो मजबूरी थी।

ईरान के गरीब लोगो की झोपड़ियो में हम अपनी राते गुजारते थे। हमने थोड़ा-थोड़ा फारसी बोलना भी सीख लिया था। उमर खैयाम, गेख सादी और फिरदौसी जैसे कवियो को जन्म देनेवाली ईरान की धरती ने हमें बड़ी प्रेरणा दी। फारसी गलीचो की कला ने हमारे मन में चेतना का संचार किया। इस काव्य भूमि में स्वयं ईरान के शाह ने अपने दरबारी नियमों के प्रतिकूल कुरता-पाजामा पहनकर आनेवाले हम दो भारतीय युवकों का अपने महल में स्वागत किया।

“इस जमाने में भी आप जैसे जवान एक ऊँचे मकसद को लेकर दुनिया की पैदल यात्रा कर रहे हैं, यह बड़ी बात है। इसलिए बहुत व्यस्त होते हुए भी मैं आप लोगों से मिलने के प्रसंग को टाल नहीं सका। आप एटमी हथियारों के खिलाफ और निःशस्त्रीकरण के लिए जो काम कर रहे हैं, उसमें मैं और मेरा पूरा देश हमेशा आपके साथ है।” शाह ने बहुत धीमे शब्दों में, पर मुस्कराते हुए हमें अपनी शुभ कामना दी। उसके बाद उन्होंने हमारी यात्रा के अनुभव सुने। खासतौर से ईरान में हमारी यात्रा के लिए किसी भी तरह का सहयोग चाहिए, तो वह जुटाने की तैयारी बतायी। हमें शाह के व्यक्तित्व ने प्रभावित किया। उनके किसी भी तौर-तरीके से पलभर को भी यह नहीं टपकता था कि वे एक शाह हैं। उन्होंने कहा कि हमें भूमि-सुधार तथा अन्य सामाजिक प्रगति के कामों में चाहे जितनी दिक्कतें हों, पर भूमि का बँटवारा युग की माँग है। और इसलिए मैं अपने देश में यह सुधार लागू करने के लिए कटिबद्ध हूँ।” उन्होंने भारत में चलनेवाले भूदान-ग्रामदान आन्दोलन के बारे में जानने की उत्सुकता प्रकट की। बोले : “विनोबाजी एक जबरदस्त काम कर रहे हैं। उनके इस काम ने हमें बड़ी प्रेरणा

दी है। मैंने अपनी हजारों एकड़ जमीन का बँटवारा उन लोगों में कर दिया, जो उस पर काम करते थे।”

हमारी इस पूरी बातचीत में कुरता-पाजामा कहीं बाधा पैदा नहीं कर रहा था। कुरता-पाजामा पहननेवाले हमारे बहुत-से मित्र जब विदेश जाते हैं, तो नये सूट सिलवाने में सैकड़ों रुपया खर्च करते हैं। पर हमने यह अनुभव किया कि भले ही कुरता-पाजामा सूट की भाँति बहुत ‘भाग्य-शाली’ न हो, पर बुरा नहीं है। मास्को, बर्लिन, पेरिस, लन्दन, न्यूयार्क, टोकियो आदि शहरों की सड़कों पर कुरता-पाजामा पहनकर धड़ल्ले से हम घूमते थे। वहाँ के लोग इस वेशभूषा को बहुत पसन्द करते थे। हमारा अपना ही ‘हीन-भाव’ हमें सूट की तरफ ले जाता है। मई से अक्टूबर तक एक ऊनी कुरता और उस पर बण्डी ( जाकिट ) पहनकर यूरोप में अच्छी तरह काम चलता है। विशेष ठण्डी नहीं रहती। नवम्बर से अप्रैल तक ओवरकोट जरूरी है। ओवरकोट के नीचे कुरता-पाजामा ( ऊनी ) कोई तकलीफ नहीं देता !

## यो रूस का वीसा मिला



ईरान के शाह से मिलने के बाद हमारा लक्ष्य था रूस की यात्रा करने का, पर रूस का वीसा ? वह हमारे पास नहीं था। विदेशों की यात्रा पर जाने के लिए अपनी सरकार से ‘पासपोर्ट’ लेना पड़ता है और जिन-जिन देशों में जाना हो, उन देशों की सरकारों से वीसा लेना पड़ता है। जब से हम पदयात्रा पर निकले, हमारे सामने यह प्रश्न खड़ा था। दिल्ली से हमने केवल पाकिस्तान, अफगानिस्तान और ईरान का वीसा प्राप्त किया था। पर रूस का वीसा मिलना क्या आसान है खासतौर से हमें, जब कि हम रूस की जनता के बीच अणु-अस्त्र-नीति के विरोध में प्रचार करने के लिए वीसा माँग रहे थे। एक कम्युनिस्ट देश जिस पर तथाकथित ‘लौह-पर्दा’ ( आयरन कर्टेन ) लगा है, क्या हमें गॉव-गॉव

मे पैदल घूमने और अहिंसा तथा निःशस्त्रीकरण के अपने विचारों का प्रचार करने की अनुमति देगा ? हमारा मस्तिष्क सन्देहों से भरा था। पर इन सब सन्देहों के ऊपर खड़ा था दृढ़ निश्चय और आत्म-विश्वास। हर कीमत पर हमें रूस की पैदल यात्रा करनी है।

पहले हमने सोचा था कि काबुल में हिन्दूकुश पर्वत लॉघते हुए हम ताशकन्द के पास सोवियत सघ में प्रवेश करें। ताशकन्द से मास्को की पटयात्रा बहुत लम्बी होती। जब हम काबुल में सोवियत दूतावास में वीसा के लिए गये तो हमें कुछ निराशाजनक उत्तर मिला। हमने तत्कालीन काबुल स्थित भारतीय राजदूत श्री जगन्नाथ धामीजा से बात की। श्री धामीजा को हमारी यात्रा के कार्यक्रम में वेहद अभिरुचि थी। उन्होंने रूसी राजदूत से खुद बात की। दोनों राजदूतों की बातचीत के परिणामस्वरूप ताशकन्द का रास्ता न चुनकर ईरान होते हुए सोवियत सघ में प्रवेश करने की हमें सलाह दी गयी। हालाँकि इस सलाह के कारण हमें कई सौ मील का रास्ता अधिक चलना पड़ा। इस कारण हमें ईरान में लम्बा समय बिताने का अवसर भी मिला। परन्तु हमारे मन में यह सवाल बराबर बना ही रहा कि कहीं हमें यो ही टाल तो नहीं दिया गया है। हमें काबुल में वीसा न देकर तेहरान में देने का आश्वासन तो मिला, फिर भी चित्र साफ नहीं था।

तेहरान का सोवियत दूतावास एक बड़े गढ़ के समान है। दूतावास के चारों ओर बड़ा परकोटा बना हुआ है। अफगानिस्तान के पहाड़ों और ईरान के रेगिस्तानों की पैदल यात्रा हमारे लिए ज्यादा आसान थी, पर इस परकोटे के अन्दर रहनेवाले सोवियत अधिकारियों से वीसा प्राप्त करना कहीं कठिन प्रतीत हो रहा था। परन्तु हम जिन रूसी अधिकारी महोदय से मिले, उन्होंने पहली ही मुलाकात में हमें वेहद प्रभावित किया। “आप लोगो ने रूस की यात्रा के लिए जो समय चुना है, वह भयंकर सर्दी और वर्षाई आँधी के लिए मशहूर है। जनवरी से अप्रैल तक का समय सब से खतरनाक समय है। ऐसे मौसम में पैदल यात्रा

करने की इजाजत किसी हालत में नहीं दी जा सकती।” एक रूसी युवक ने शुद्ध हिन्दी में अपने अधिकारी की बात का अनुवाद किया। हमें इस युवक ने आश्चर्य में डाल दिया। तेहरान स्थित सोवियत दूतावास में ऐसी अच्छी हिन्दी जाननेवाला दुभाषिया !

“आप सर्दी की चिन्ता न करें। हमारे पास कपडों का पूरा प्रबन्ध है”—हमने कहा।

“पूरा प्रबन्ध ?” अधिकारी ने रूसी वोदका ( मदिरा ) का प्याला हमारे सामने उपस्थित करते हुए पूछा। जब हमने वोदका न पीने की बात उन्हें समझायी तब तो वे और भी आश्चर्य से बोले : “विना वोदका पिये, क्या आप रूसी सर्दी का मुकाबला करना चाहते हैं ? यह असम्भव है ! जिस बर्फ में नेपोलियन और हिटलर की सेना ने भी घुटने टेक दिये, वहाँ आपकी क्या चलेगी ?” इस तरह हमारी बहस चलती रही। हम अपनी झोली में निराशा लेकर वापस लौट आये। समस्या कठिन थी। पर रूसी अधिकारी के मीठे व्यवहार ने हमारा उत्साह ठण्डा नहीं होने दिया। हमने दूसरे दिन फिर सोवियत दूतावास जाकर अधिकारी से मुलाकात की। फिर वही बर्फ और सर्दी का पुराना तर्क सुनने को मिला। किन्तु अधिकारी ने दुभाषिया युवक से कहा : “कार बुलाओ। भारतीय दूतावास चलेगे।” मैं कुछ समझा नहीं। मेरे साथी प्रभाकर ने मुझसे कहा : “पता नहीं, भारतीय अधिकारी से क्या पूछेंगे !” खैर, हम सब भारतीय दूतावास पहुँचे और प्रथम सचिव श्री चन्द्रभान से मिले।

“ये दो युवक, जिनके पास भारतीय पासपोर्ट है, ऐसी भयंकर सर्दी के मौसम में रूस की यात्रा करना चाहते हैं, निःशस्त्रीकरण का मन्देश लेकर। आपकी क्या सलाह है ?” रूसी अधिकारी ने सीधा सवाल किया, भारतीय दूतावास के प्रथम सचिव से।

“हम इतना जानते हैं कि ये दोनों दिल्ली से पैदल चलकर वहाँ तक पहुँच गये हैं। इनके पास केवल भारतीय पासपोर्ट ही नहीं, बल्कि ५० नेहरू और डॉ० राधाकृष्णन की चिट्ठियाँ भी हैं। परन्तु भारत सरकार

इनके विचारों के लिए, इनकी निःशस्त्रीकरण आन्दोलन सम्बन्धी प्रवृत्तियों के लिए कर्तर्द जिम्मेदार नहीं है। यह इनका व्यक्तिगत उत्तरदायित्व है। वीसा देना न देना आप पर निर्भर है। यदि आप वीसा दे और ये लोग रूस की यात्रा करते समय किसी दैहिक कष्ट में हों, तो हमारा मास्कोस्थित दूतावास इनकी मदद अवश्य करेगा।” भारतीय अधिकारी ने अपनी स्थिति स्पष्ट की।

हम वापस सोवियत दूतावास आये। “अगर आप इस मौसम में रूस की यात्रा करने पर तुले ही हुए हैं, तो मैं २० दिन का वीसा दे देता हूँ। पर गाँव-गाँव में पैदल चलने की आज्ञा नहीं मिलेगी।” रूसी अधिकारी ने नया प्रस्ताव उपस्थित किया। “आप मास्को, लेनिनग्राड आदि शहरों में जाइये। निश्चय ही किसी-न-किसी वाहन का उपयोग आपको करना होगा। आप जिस निःशस्त्रीकरण की बात लोगो तक पहुँचाना चाहते हैं, उसके लिए २० दिन काफी है। आप इस असें में जितने चाहें, उतने भापण कर सकते हैं।” रूसी अधिकारी ने अपनी बात जारी रखी। “यह २० दिन का वीसा भी तब मिलेगा, जब आप यहाँ पर हमारी यात्रा कम्पनी ‘इण्टूरिस्ट’ के प्रतिनिधि के पास यात्रा का पूरा खर्च जमा करवाकर रसीदे प्राप्त कर लेंगे।”

“कृपया हमें ठीक से समझने का कष्ट कीजिये” हमने नम्रतापूर्वक पर स्पष्ट शब्दों में अपनी बात रखी। “पहली बात, हम ‘टूरिस्ट’ नहीं हैं। इसलिए ‘इण्टूरिस्ट’ से हमारा मतलब नहीं। दूसरी बात, हम पैदल और केवल पैदल ही चलेगे। जब तक दुनिया में एटम बम कायम है, हम अपनी इस पदयात्रा द्वारा उन बमों के खिलाफ अपना प्रदर्शन जारी रखेंगे। हाँ, अगर आपकी सरकार हमें यह वचन दे कि इसके बाद सोवियत संघ सभी एटमी हथियारों को नष्ट कर देगा, तो हम अपनी पदयात्रा बन्द करने को तैयार हैं और बिना सोवियत संघ की यात्रा किये, सीधे हम अमेरिका, फ्रान्स और ग्रेट ब्रिटेन का रास्ता पकड़ेंगे। तीसरी बात, हम दिल्ली में गांधीजी की समाधि से यह निश्चय करके चले हैं कि

हमारी सम्पूर्ण यात्रा जनाधारित चलेगी। हम यहाँ तक बिना एक भी पैसे के पहुँचे हैं। सर्वत्र लोगो के आतिथ्य पर रहे हैं। अफगानिस्तान के दुरूह पहाड़ों में बसनेवाले गरीब पठानों की ओपड़ियों में भी हमने आतिथ्य पाया है और वही आतिथ्य रूसी जनता से भी मिलेगा, यह हमारा भरोसा है।” हमने अपनी बात में अन्तिम वाक्य यह भी जोड़ा कि “हम सम्पूर्ण विश्व को एक ही मानते हैं। हम विश्व-नागरिक हैं। राष्ट्रीय सीमाओं में हमारी श्रद्धा नहीं। पासपोर्ट, वीसा भी विश्व की निर्बाध एकता में बाधक हैं। उनपर हम ज्यादा भरोसा नहीं रखते। हम आपसे वीसा प्राप्त करके, आपके नियमों को सन्तुष्ट मात्र करना चाहते हैं। किन्तु हमारी रूस-यात्रा का निर्णय अपरिवर्तनीय है।”

हमारे इस लम्बे वक्तव्य को सुनकर रूसी अधिकारी के चेहरे पर मुस्कान बिछ गयी। वे बोले : “युवको, आप दोनों गान्धी के देश से आये हैं। भारत के युवको में ही ऐसी बिना पैसे की विश्वयात्रा करने का साहस हो सकता है। वह भी पैदल और निःशस्त्रीकरण के सन्देश के साथ। रूस, शान्ति के लिए काम करनेवाले आप जैसे साहसी युवको का सदैव स्वागत करता है। पर हमें कुछ औपचारिक नियमों का पालन करना होता है। मेरे सामने ऐसा प्रश्न शायद पहली ही बार आया है। ग्वैर, मुझे थोड़ा समय दीजिये और कल आने की कृपा कीजिये।”

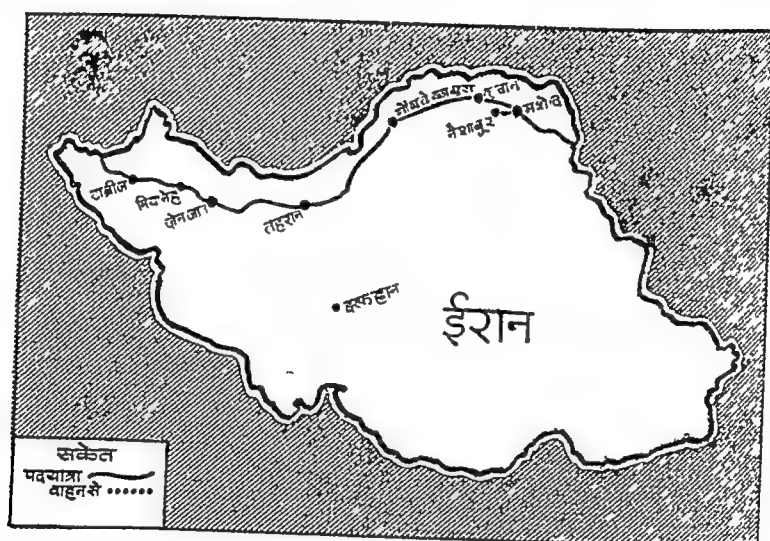
हम दूसरे दिन पहुँचे। वीसा अधिकारी ने अपने सहायक से कहा : “इनका मामला बिल्कुल अपवादस्वरूप है। इन्हें वीसा देने का हमने निश्चय किया है।” सहायक अधिकारी ने रजिस्टर में हमारे पासपोर्ट का नम्बर लिखा और हमारे पासपोर्ट में वीसा की मुहर लगा दी। न हमें कोई फार्म भरना पड़ा, न फोटो की जरूरत पड़ी। हिन्दी बोलनेवाले दुभाषिया ने कहा : “आप लेनिन के देश में जा रहे हैं। लेनिन की जीवन-कथा का हिन्दी अनुवाद आपको भेंट कर रहा हूँ। आपकी यात्रा सुखद हो।” वो हम चार महीने की पदयात्रा के लिए वीसा लेकर सोवियत दूतावास से बिदा हुए।



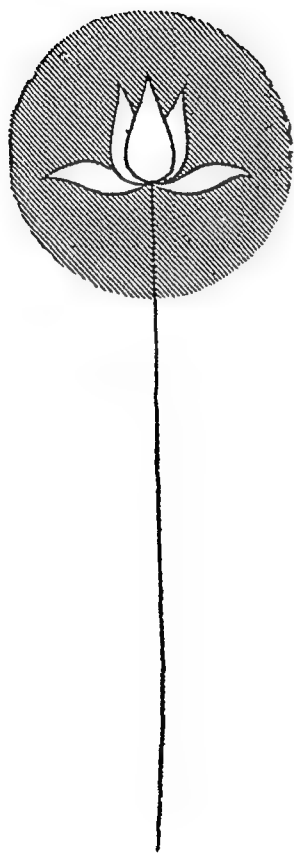
## १०० दिनों की यात्रा



इस तरह उमर खैयाम और फिरदौसी की धरती पर हमने १०० दिन की यात्रा का खूब आनन्द उठाया। उमर खैयाम की समाधि पर अपनी श्रद्धा के फूल चढ़ाने के लिए हम मशहद से नैशाबूर गये थे। हम भयंकर रेगिस्तानी इलाकों को पार करते हुए ईरान के उत्तरी हिस्से को पूरी तरह देख सके। परन्तु शिराज तथा इस्फहान जैसे ऐतिहासिक स्थानों को देखने के लिए हम नहीं जा सके। ईरान में शहरों की सड़के



तो पक्की हैं, पर बाकी की सड़के कच्ची हैं। इसलिए कारों के या ट्रकों के आने-जाने के समय पैदल चलनेवालों को धूलि-खान हो जाता है। परन्तु कारों में जाने-आनेवाले अनेक यात्री सुविधा के साथ यात्रा कर सकते हैं। दिल्ली से लेकर काबुल तक खूब अच्छी सड़के हैं। काबुल से तेहरान और टाब्रीज तक की सड़के कच्ची पर मोटर-यातायात के लायक हैं। रूस की सीमा से मास्को तक और मास्को के बाढ़ तो पूरे यूरोप में कोई ठिकत है ही नहीं। अगर कोई चाहे तो भारत से चलकर बस अथवा रेल द्वारा एशिया और यूरोप का भ्रमण आसानी से कर सकता है। इन सड़कों ने देशों की दूरी को निश्चय ही कम कर दिया है। ●



श्रमिकों की प्रगति के देश

सोवियत



संघ में



पहली जनवरी ।

नये वर्ष का नया सवेरा ! एरास नदी के तट पर बसा हुआ जुल्फा नगर ॥ सात महीने में सत्ताईस सौ दस मील की थका देनेवाली पदयात्रा के बावजूद हम एक नयी स्फूर्ति, नयी ताजगी और नया आकर्षण अनुभव कर रहे थे । सोवियत जुल्फा के रेलवे स्टेशन से इजन की तेज आवाज सुनाई दी । मानो सोवियत धरती शान्ति-यात्रियों को आमंत्रण दे रही हो । इस देश के बारे में कभी जब किताबों में पढ़ा करते थे, तब सपना लगता था कि कभी उस देश में जाने का अवसर भी आयेगा । टॉल्स्टॉय द्वारा लिखित 'युद्ध और शान्ति' तथा 'हम करें क्या ?' पुस्तकें पढ़ते समय मन में बड़ी गुदगुदी होती थी कि कभी इस महान् लेखक को पैदा करनेवाली धरती की हम यात्रा कर सकेंगे । गोर्की, चेखव, पुश्किन, दोस्तोव्स्की आदि अनेक लेखकों ने अप्रत्यक्ष रूप से इस भूमि को देखने का हमें निमंत्रण दिया था । मार्क्स, एंगेल्स और लेनिन की कान्तिकारी विचारधारा को क्रियान्वित करनेवाले सोवियत-संघ की सीमा पर अपने आपको पाकर यदि हमारा मन आकर्षण से भर जाय तो इसमें आश्चर्य भी क्या ?

हाथों में दूरबीन और पीठ पर बन्दूक लिये सीमा के पहरेदार सैनिक दोनों ओर बड़ी सजगता से खड़े थे। ईरान की सीमा से सूचना-ध्वज लहराया गया। सूचना-ध्वज देखकर सोवियत सेना के अधिकारी, जहाँ द्वार बन्द था, उस सीमा पर आये। सोवियत सीमा का द्वार खुला और दूसरे ही क्षण हमने अपने आपको एक नये देश में पाया। एक ऐसे देश में, जो दूसरे देशों से सर्वथा भिन्न है। जहाँ की समाज-व्यवस्था, अर्थ-व्यवस्था और राज्य-व्यवस्था अलग तरह की और नयी समाजवादी प्रणाली पर आधारित है। हमें इस भिन्नता का दर्शन जगह-जगह पर हो रहा था। खास तौर से हमारे लिए इस देश में एक विशिष्ट प्रकार की भिन्नता थी। अब तक हमने जिन देशों की यात्रा की, उनके पास आणविक हथियार नहीं थे। वे छोटे और अल्प-विकसित देश युद्ध की तैयारी के विरोध में और आणविक अस्त्रों के खिलाफ हमारे साथ सहमति प्रकट करें, यह स्वाभाविक ही था। सोवियत संघ अणुशक्ति-सम्पन्न बड़ा देश है। इसलिए इस देश में हमारे प्रति जनता का और सरकार का क्या रुख रहता है, यह हमारे लिए विशेष महत्त्व की बात थी।

मैत्री-परिषद् और शान्ति-परिषद् के अनेक कार्यकर्ताओं ने हमारा स्वागत किया। आरमीनियन मैत्री-परिषद् के उपाध्यक्ष श्री मारथीरोग आन्द्रेनिक ने स्वागत-भोज की टेबिल पर हमारी यात्रा और हमारे शान्ति-मिशन का पूरा समर्थन करते हुए कहा : “हमारे लिए यह आश्चर्य और प्रसन्नता की बात है कि लगातार सात महीने पैदल चलकर, गरमी, सर्दी, वर्षा, भूख, जंगल, पहाड़ आदि के साथ संघर्ष करते हुए आप शान्ति के लिए अनुकूल वातावरण तैयार कर रहे हैं और वही मिशन लेकर आप इस देश में आये हैं। सोवियत संघ पिछले महायुद्ध में शामिल था और वह युद्ध के भयंकर परिणामों से अच्छी तरह परिचित है। युद्ध के लिए किये जानेवाले प्रचार के खिलाफ सबसे पहले हमने आवाज उठायी थी और आज हम शान्ति-स्थापना के लिए हर तरह का संघर्ष करने में आपके साथ हैं। जो युद्ध चाहता है, वह या तो मूर्ख है या

पागल है। भारत में गांधी जैसे शान्ति के मसीहा हुए। आप उसी देश से आये हैं। नये वर्ष के इस शुभ अवसर पर हम भारत के दो युवक शान्ति-वादियों का स्वागत करते हैं।”

## सैनिक और शान्ति



इस स्वागत-भोज में सीमा की सुरक्षा के लिए तैनात सेना के कमांडर भी थे। उन्होंने हमारे स्वागत में कहा कि “किसी जमाने में हमारे देश का एक यात्री अफनासी निकितन पैदल भारत गया था। अब भारत के दो यात्री शांति का पैगाम लेकर सोवियत धरती पर आये हैं। मैं एक सैनिक कमांडर होकर भी उनका स्वागत करता हूँ। ऊपर से देखने में किसी शांति-यात्री का स्वागत एक कमांडर करे, यह बड़ी असंगत बात लगती है। क्योंकि ये यात्री बन्दूक के, शस्त्रों के, बमों के और सेना के विरोधी हैं, जब कि मैं इन चीजों को ही सुरक्षा के साधन के रूप में इस्तेमाल करता हूँ। पर मुझे यह कहने में कोई संकोच नहीं है कि ज्यो-ज्यो मानव प्रगति करेगा, त्यो-त्यो शस्त्रों द्वारा अपनी रक्षा करना व्यर्थ तथा पाशविक होता जायगा। देशों की सीमाएँ टूटकर विश्व-एकता की तरफ हम बढ़ेंगे। सेना और बमों की जरूरत कम होती जायगी। उस समय हम भी इस सैनिक वर्दी को छोड़कर शांति की उपासना करेंगे। इसी भावना से मैं इन शांति-यात्रियों का स्वागत करता हूँ।” उस सैनिक कमांडर की बात सुनकर मेरा हृदय गद्-गद् हो गया। मैंने अपने जीवन में पहली बार किसी सैनिक के मुँह से ऐसी बातें सुनी थीं।

हमने सोवियत संघ में पहली जनवरी को प्रवेश तो कर लिया, परन्तु हमारी व्यवस्थित पदयात्रा ५ जनवरी से ही प्रारम्भ हुई। जुल्फा से येरैवान तक वर्जित-सीमा-क्षेत्र होने से १२५ मील हम कार में आये और तीन दिन येरैवान में रहे। येरैवान आरमीनियन रिपब्लिक की राजधानी

है, और बड़ा औद्योगिक नगर है। स्वाभाविक रंग के पत्थरों से बने हुए सुन्दर भवनो का तेजी के साथ निर्माण हो रहा है। प्राचीन आरमीनियन साहित्य की अनेक कलापूर्ण पाण्डुलिपियों को देखने के लिए हम यहाँ की प्रसिद्ध सस्था 'मदिनादारान' में गये। आरमीनियन लिपि के आविष्कारक श्री मेसरोप मास्टोलिय सोलह सौ वर्ष पहले हुए थे। उस समय से लेकर आरमीनियन साहित्य के विकास की पूरी कहानी हमें इस सस्था में समझने को मिली। हमने देखा कि जब आरमीनिया में प्रकाशन की व्यवस्था नहीं थी, तब इस भाषा के साहित्य का प्रकाशन भारत में हुआ करता था। मद्रास में प्रकाशित एक पुस्तक हमने देखी। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि भारत के साथ इस देश का कितना पुराना सम्बन्ध है। कलकत्ता जैसे शहरों में 'आरमीनिया स्ट्रीट' का होना, इस बात का सबूत है। येरेवान की अन्य अनेक संस्थाएँ हमने देखी। यहाँ के साहित्यिकों से, युवकों से तथा मैत्री-परिपद् और शान्ति-परिपद् के सदस्यों से हम मिले।

आरमीनिया की हमारी यात्रा अविस्मरणीय है। आरमीनिया के एक ओर 'अरारोट' पर्वत-शिखर है। यह वही 'अरारोट' है, जिसकी कहानी बाइबिल में हमने पढ़ी थी। दूसरी तरफ काकेशस की ऊँची चोटियाँ हैं। इसके बीच फैला हुआ यह सुन्दर मनोहारी प्रदेश अगूरों, सेवों और अन्य फलों से भरा है। हर किसान के घर में अपने अगूर हैं और अपनी ही मदिरा। दसियों मदिरा-घट, अन्न, मास आदि सामग्रियों का ये किसान इसलिए सग्रह करके रखते हैं, ताकि जाड़ों में जब चारों ओर बर्फ ही बर्फ फैल जाय, कुछ भी उत्पादन न हो, बाहर अधिक आना-जाना भी सम्भव न हो, तब घर में बैठे आराम से कई महीने खा-पी सकें। लकड़ी के बने हुए मकानों के नीचे तहखाने होते हैं और वहीं पर यह सामग्री सुरक्षित रहती है। हम साधारण जन-जीवन से परिचित होने के लिए ऐसे तहखानों में भी गये। हम जिन दिनों आरमीनिया की यात्रा कर रहे थे, वह जनवरी का सर्द महीना था। धरती ने, पेड़ों ने

और मकानों ने सफेद बर्फ से शृंगार कर रखा था। हर घर को बड़ी-बड़ी बुखारियो से गरम करके रखा जाता था।

आरमीनिया और आजरबैजान रिपब्लिक की यात्रा के बाद जोर्जिया रिपब्लिक में हमारी यात्रा चली। जोर्जिया बहुत सुन्दर और सम्पन्न रिपब्लिक है। काकेशस की पर्वत-श्रेणियों तथा काले सागर की उत्ताल लहरों के बीच फैले हुए इस प्रान्त ने ग्यारहवीं सदी में शोता रुस्तावेली जैसे महान् कवि को पैदा किया और अठारहवीं सदी में स्टालिन, चोल्किज आदि अनेक अद्वितीय क्रान्तिकारियों को पैदा किया, जिन्होंने पूँजीवादी समाज-व्यवस्था से जबरदस्त संघर्ष किया और गोपण के आधार पर खड़े महलों की बुनियादें खोखली कर दी। कूरा नदी के तट पर बसी हुई जोर्जिया की राजधानी त्बिलीसी में हम तीन दिन रहे और वहाँ की अनेक सस्थाएँ हमने देखी। शहर के अलावा गाँवों में हमें वास्तविक जीवन के दर्शन करने का अवसर मिलता था। लोगों का रहन-सहन, खान-पान, रीति-रिवाज आदि देखने और समझने का मौका मिलता था। हम इन गाँवों में कभी कलेक्टिव-फार्म के अव्यक्ष के घर ठहरते, कभी कम्युनिस्ट पार्टी के मंत्री के घर ठहरते, कभी किसी शिक्षक या किसान के घर ठहरते और गहराई से उनके जीवन का और उनके विचारों का अध्ययन करते थे।

हमारी पदयात्रा जेट और स्पुतनिक विमानों का निर्माण करनेवाले देश में चलने से मन में कई तरह की बातें उठती थीं। एक ओर गति का धीमापन चरमोत्कर्ष पर तथा दूसरी ओर गति की तीव्रता चरमोत्कर्ष पर। शान्ति का मन्त्र लेकर चलनेवाले हमारे जैसे यात्रियों के लिए धीमी गति ही अधिक लाभप्रद सिद्ध हो रही थी। शान्ति-परिपट् के केन्द्रीय कार्यालय, मास्को से टेलिफोन पर हमें वह सन्देश मिला कि “सोवियत रूस की भयंकर तथा ससार प्रसिद्ध सड़ों में पदयात्रा करना बहुत कष्ट-दायक होगा। आप किसी तरह की चिन्ता न करें। सारा प्रबन्ध और सारा खर्च शान्ति-परिपट् करेगी। आप विमान द्वारा मास्को आ जायें।”



पर यदि हम विमान द्वारा सीधे मास्को पहुँच जाते, तो जिन हजारों लोगो से हम प्रति दिन मिलते थे और उनका शान्ति-सन्देश प्राप्त करते थे, वह कैसे मिलता ? इसलिए हमने यह जानते हुए भी कि रूस की सर्दी बहुत भयकर होती है, पैदल चलने का अपना निश्चय ही दृढ़ रखा। शान्ति-परिषद् हमारी यात्रा का पूरा प्रबन्ध कर रही थी और इस पद-यात्रा द्वारा शान्ति का वातावरण निर्माण करने में अधिक-से-अधिक उपयोग हो, इस ढंग से उसने यात्रा का संयोजन किया था। हर जिले में शान्ति-परिषद् के प्रतिनिधि हैं। वे प्रतिनिधि अपने जिले में हमारे साथ रहते थे और अधिक-से-अधिक जनता हमारे सम्पर्क में आ सके, इसका आयोजन करते थे। आरमीनियन, जॉर्जियन और रशियन अखबारों और रेडियो द्वारा प्रचार हो जाने से आम जनता को हमारी यात्रा के बारे में पूरी जानकारी थी। हम जब अपने पड़ाव पर पहुँचते, तो कभी सैकड़ों और कभी हजारों लोग हमें घेर लेते थे। छोटे गाँवों में तो पूरा-का-पूरा गाँव, विदेशी मेहमानों को देखने और उनका स्वागत करने के लिए उमड़ पड़ता था। सड़क पर जब हम चलते होते, तो कारवाले, ट्रकवाले, बसवाले लोग बीच में रुककर हमें बधाई देते। जब हम किसी स्कूल के पास से गुजरते, तो सारे विद्यार्थी क्षणभर में एकत्र हो जाते और १०-१५ मिनट के लिए हमें रोक लेते। कारखाने के सामने से जब हम गुजरते, तो मजदूर लोग एकत्र होकर हमसे कुछ देर बात-चीत करते। जब हम किसी बड़े गाँव से गुजरते, तो सैकड़ों लोग एकत्र होकर कुछ देर हमारा भाषण सुनते। इस प्रकार गाँव-गाँव में, घर-घर में और सड़कों पर, चौराहों पर हम अपनी बात सुनाते थे और लोग “मिर ! मिर !” यानी ‘शान्ति’, ‘शान्ति’ के नारे लगाते थे। एक पड़ाव से दूसरे पड़ाव तक कई बार कुछ युवक या कुछ युवतियाँ हमारे साथ आती। वे हमें रूसी भाषा सिखाती। रूसी गीत सिखाती और हमसे हिन्दी गीत सुनती थी।

हमने देखा कि मजदूर, पूँजी, भगवान् आदि बन्धनों को तोड़कर सोवियत देश में मानवीय-श्रम की प्रतिष्ठा हुई है और उसके आधार पर

दृष्ट



ITALY, U.S.  
ARMY, T  
of HUMANITY

मानवता की पुनर्  
निर्मात्रीकरण  
नियत प्राण प्रण  
असंत की पुनर्

MOSCOW AND SHINGTON

शांति

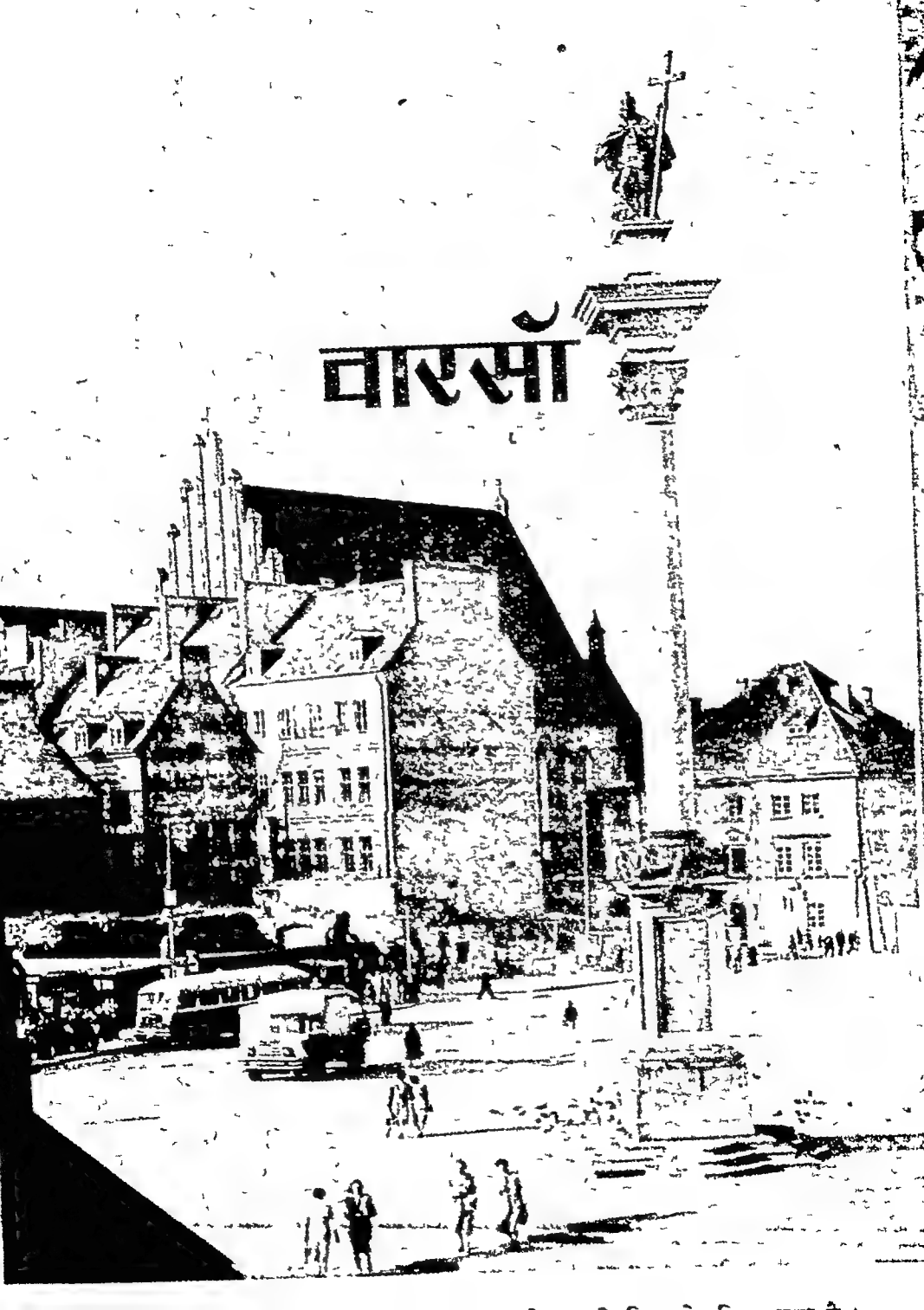
भारत की

शांति

भारत की

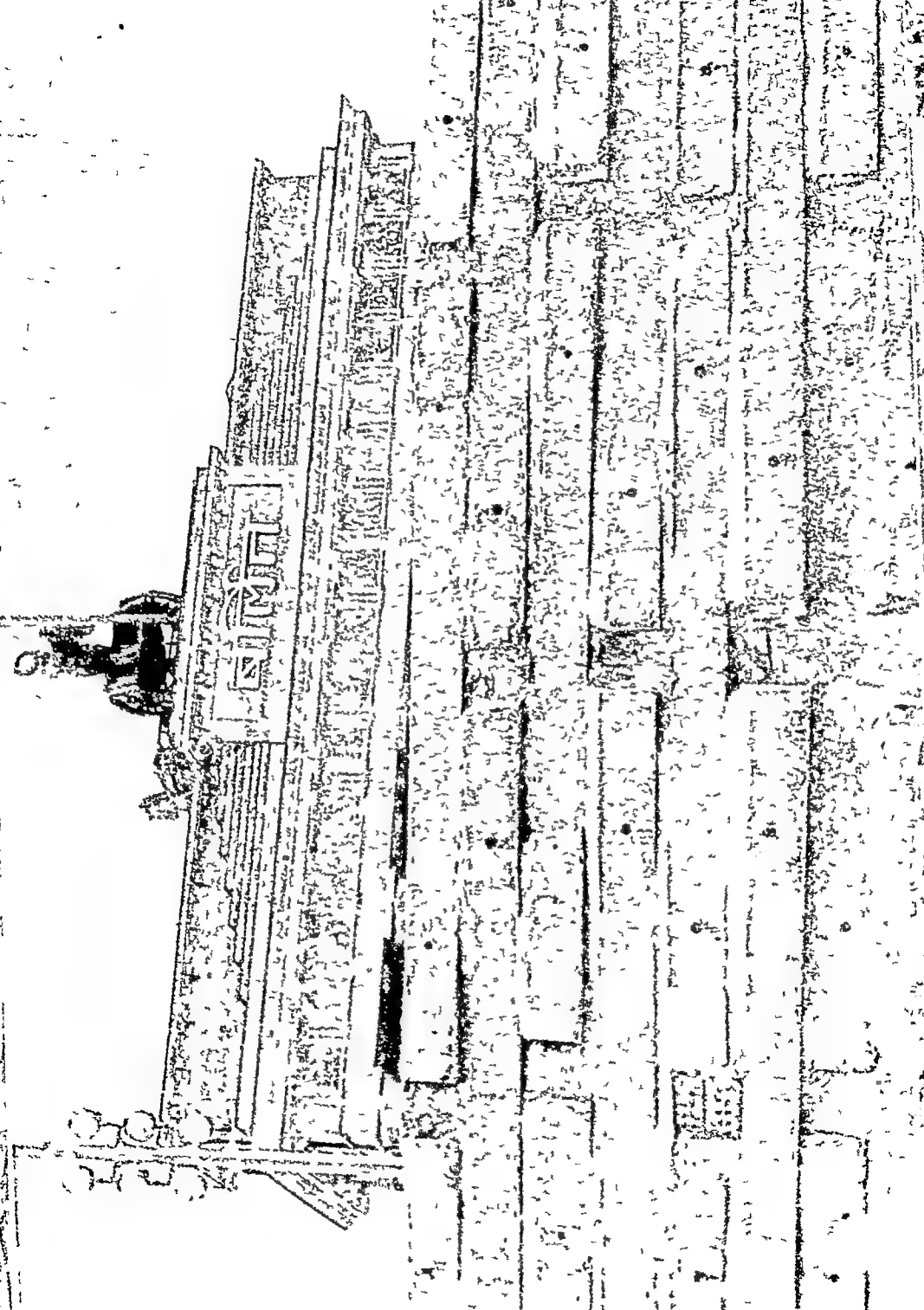


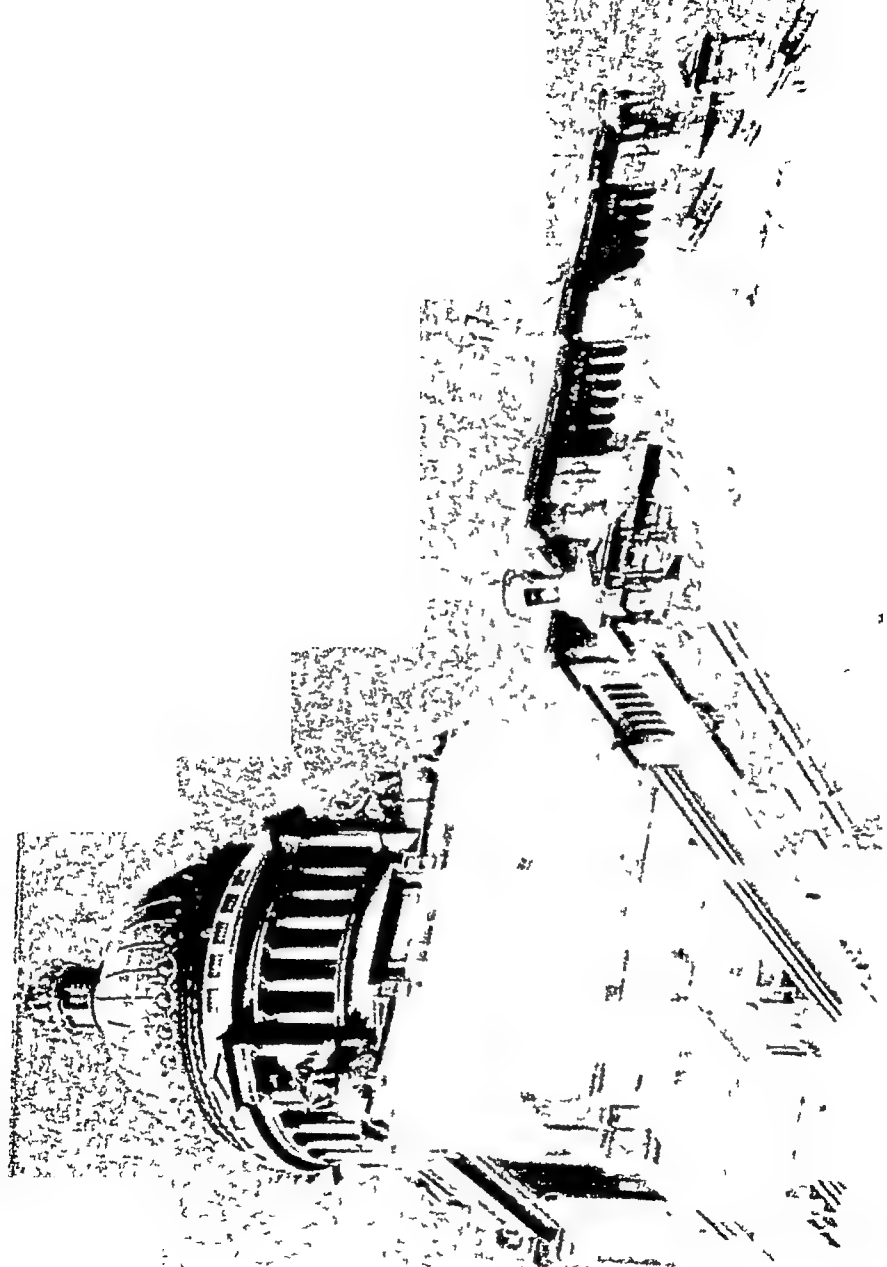
कारण



वर्णिन









VILLIERS PARIS-TOUR EIFFEL

पेरिस के मध्यमे सुन्दर, सुहावनी, सरिता : सेन ।  
किनारे पर विश्व-विश्रुत एव अद्भुत स्थापत्य सम्पन्न कैथिड्रल नोट्रदाम ।





पेरिस मे अणुशस्त्र-विरोधी प्रदर्शन के पूर्व पत्रकार गोष्ठी में ।  
बीचमें हैं : फ्रांस के कर्मठ शांतिवादी, जो पिरौने ।

एक जागृत तथा सुखी समाज का निर्माण हो रहा है। साथ ही युद्ध के खिलाफ यहाँ एक जबर्दस्त हवा है। हर तरफ से शान्ति के समर्थन में दृढ़ आवाज सुनाई पड़ती है। यदि हम किसीके हाथ में बँधी घड़ी पर देखते, तो पाते थे—मिर ! ( शांति ) यदि हम किसी बस या ट्रक पर नजर डालते, तो वहाँ भी पाते थे—मिर ! मिर ! यदि हम किसी गाँव के प्रवेश-द्वार पर लिखी पक्तियाँ पढ़ते, तो वहाँ भी हमें मिर ! मिर ! ही लिखा मिलता था। इस तरह वहाँ के जन-मानस में युद्ध के प्रति घृणा है।

काले सागर के किनारे हम बढ रहे थे। सोवियत-संघ की पूरी धरती पर स्वास्थ्य, सौन्दर्य और बहार के स्थानों में काले सागर का यह कमनीय किनारा अपना विशिष्ट महत्त्व रखता है। जब सोवियत-धरती का कण-कण श्वेत, गीतल बर्फ से ढँक जाता है, पेड़-पौधे शान्त और निर्जीव बनकर वसन्त के आगमन की प्रतीक्षा करते हैं, जन-जीवन का उल्लास, प्रमोद बर्फ के साथ खेलना ही बन जाता है, खेतों-वाड़ी के काम से मुक्त होकर लोग बन्द कमरों में बुखारी के पास दुबके बैठे रहते हैं, तब भी काले सागर के इस तट पर सारा जीवन-क्रम वैसा ही चलता रहता है, मानो इस देश में न कहीं बर्फ है, न कहीं भयंकर सर्दियाँ हैं— बस, सर्वत्र वसन्त ही वसन्त के दर्शन होते हैं। हम धीरे-धीरे इस काले सागर के मनमोहक वातावरण में यात्रा करने लगे।

सुखुमी, गुदाउता, गागरा और सोची जैसे नगर यात्रियों के लिए विशिष्ट आकर्षण के स्थान हैं। ये नगर काले सागर के ऐसे मोड़ पर बसे हैं, मानो इन नगरों के लिए ही समुद्र ने अर्धचन्द्राकार जैसा घुमाव ले लिया हो। एक तरफ काकेशस पर्वत की गगनचुम्बी चोटियाँ और दूसरी तरफ काले सागर की अतल गहराइयाँ। इन दोनों के बीच बसी हुई छोटी-मोटी सुन्दर बस्तियाँ। रात को विजली के चमचमाते हुए आलोक में यह लम्बा प्रदेश और ये नगर किसी सजी हुई रानी से कम प्रतीत नहीं होते। समुद्र के किनारे-किनारे घने वृक्षों की छाया, ठंढे और ठंढे-मेढ़े आरोह-अवरोहों में भरी सड़क और सम्पूर्ण वातावरण

की शान्त छटा ने हमें इतना मोहित किया कि मन में आया कि इस सुन्दर प्रकृति की गोद में क्यों न लम्बे समय तक खेलते रहें !

यह सम्पूर्ण सागर-तट सुन्दर से सुन्दर 'सेनिटोरियमो' से सजा है। आपको जो भी आकर्षक और भव्य भवन दिखाई पड़े, समझ लीजिये कि जरूर वह 'सेनिटोरियम' ही होगा, आपका अनुमान अस्सी प्रतिशत सही होगा। अकेले सोची शहर में एक सौ से अधिक 'सेनिटोरियम' और स्वास्थ्य-सुधार केन्द्र हैं। ऐसे हर 'सेनिटोरियम' में चार सौ से लेकर एक हजार लोगों के ठहरने की व्यवस्था होती है। उनके लिए हर प्रकार की चिकित्सा और व्यायाम, मनोरंजन, खेल, अध्ययन आदि की विशिष्ट सुविधा होती है।

**चाय पीकर अणुवम का बटन दबायें !**



हमें इस क्षेत्र में ऐसे अनेक छोटे गाँव मिले, जहाँ के लोगो ने पहली बार किसी विदेशी को और किसी भारतीय व्यक्ति को देखा था। “विदेश के पर्यटक तो मास्को, त्वीलीसी, लेनिनग्राड, ताशकन्द आदि बड़े शहरों में जाते हैं,” ऐसे उद्गार कई बार कई ग्रामीणों ने हमारे सामने प्रकट किये। चाय के एक कारखाने के मजदूर हमें रास्ते से गुजरते देखकर एकत्र हो गये और हमारा हाथ पकड़कर आग्रहपूर्वक हमें अपने कारखाने में ले गये। “ओह, अखबारों में आपके चित्र देखे, समाचार पढ़े, आप शान्ति के दूत हैं। लीजिये, हमारे कारखाने की चाय के ये चार बण्डल ! खुश्चेव, केनेडी, देगाल और मेकमिलन, इन चारों को एक-एक बण्डल दीजिये और कहिये कि जब आपको अणुवम के उपयोग करने की आज्ञा देने का समय हो, तब कृपया यह ताजा चाय पीजियें। हम श्रमिकों को याद कीजिये। आपको अवश्य सुबुद्धि मिलेगी। और तब आप अणुवम का प्रयोग नहीं करेंगे। हम कारखाने के मजदूर शास्त्रास्त्र-विहीन

युद्ध-विरत विश्व का सपना देख रहे है। हम श्रमिक है। दुनियाभर के श्रमिकों का हित शान्ति और केवल शान्ति मे है।”

स्कूलों के बच्चे और अध्यापक रास्ते पर चलते हुए हमें घेर लेते। अपने स्कूल में ले जाते। हमारी यात्रा की पूरी कहानी सुनते। वे कहते : “हमारा भविष्य तभी सुरक्षित और उज्ज्वल हो सकेगा, जब संसार पर से युद्ध तथा आणविक हथियारों की काली छाया दूर होगी। जनता का शत-प्रतिशत विश्वास शान्ति में है। निहित स्वार्थवाले चन्द लोगों के व्यापार को चलाये रखने के लिए ही आज सामरिक हथियार बनाये जा रहे है। अतः अब वह समय आ गया है जब कि निहित स्वार्थ के विरुद्ध आम जनता की शान्ति-भावना को प्रतिष्ठित किया जाय।”

हमारी सुविधा के लिए सोवियत शान्ति-परिषद् ने प्रारम्भ में हमारे साथ एक दुभाषिया रखा था। इस वजह से हम सोवियत जनता के बीच गहराई से घुल-मिल सके। उनके विचार, रीति-रिवाज, राज्य-व्यवस्था, अर्थ-व्यवस्था, कृषि-उद्योग-व्यवस्था, शिक्षा-व्यवस्था, कानून, पुलिस, धर्म, जाति आदि के सम्बन्ध में हम वारीकी से अध्ययन कर सके। सोवियत संघ के ग्रामीण-जीवन के बारे में गहराई से जानने की उत्सुकता हमारे मन में थी, वह पूरी हुई। जिसके भी घर ठहरते, हम सीधे रसोई में पहुँच जाते थे। माताएँ और घर के बच्चे हमें घेर लेते थे। वे कैसे भोजन पकाते हैं, कैसा जीवन जीते हैं और किस तरह परिवार-व्यवस्था है, यह हम देखते थे। हम जिस किसीके घर में ठहरते, उस दिन के लिए ऐसे घुल-मिल जाते मानो उस परिवार के ही सदस्य हों।  
वर्ष और विमान



शान्ति-परिषद् हमारी यात्रा के बारे में और यात्रा-मार्ग के बारे में बराबर जानकारी लेती रही। हमें कभी-कभी तेज सर्दों का सामना करना पड़ा, पर वह असहनीय नहीं थी। २० दिन की हमारी यात्रा के बाद ४ फरवरी को मास्को ने शान्ति-परिषद् ने अपना एक विशेष

प्रतिनिधि भेजा। ये भाई—श्री एलेक्जेंडर इवानोविच पलादिन—हमारे साथ दो दिन रहे। वे यह जानकारी लेकर आये थे कि सोची के आगे काकेशस पर्वत पर इतनी तेज घनी बर्फ पड़ी है कि रास्ते भी बन्द हो रहे हैं और बर्फ के साथ तूफान भी है। इसलिए आप यहाँ से सीधे मास्को चले, यही सुविधाजनक होगा। “लेकिन सोची तो अभी एक सौ मील दूर है। हम वहाँ तक तो जायेंगे ही।”—हमारा उत्तर था।

ये भाई कहने लगे : “मैं मास्को से विशेष रूप से इसके लिए आया हूँ। आप इस बारे में ज्यादा आग्रह न रखें। अपने देश में हम अतिथियों को बर्फ और तूफान में छोड़कर निश्चित नहीं बैठ सकते।” बहुत बातचीत हुई। हमारा मन किसी भी तरह तैयार नहीं हुआ। आखिर उन्हें कुछ असन्तुष्ट करके भी हमने पदयात्रा जारी रखी। एक सप्ताह के बाद हम सोची पहुँचे। सोची में वे भाई फिर हमसे मिले। हमने स्थानीय लोगों से भी इस सम्बन्ध में विस्तृत जानकारी प्राप्त की। हमें पता चला कि मास्को से करीब चार सौ मील पहले बोरोनेज शहर है। वहाँ तक रास्ता ज्यादा भयंकर है। साइबेरिया की तरफ से बर्फाली आँधी चल रही है। सड़कें भी बन्द हैं। रेलें भी बन्द हैं। चारों ओर की धरती घनी बर्फ से ढँकी हुई है। एक लम्बे विचार-विमर्श के बाद हमने यह सोचा कि शान्ति-परिपद् के लोगों को और सरकार को ज्यादा चिन्ता में डालकर हम इस तरह आगे बढ़ेंगे, तो वह भी ठीक नहीं होगा। इसलिए हमें इतना समझौता कर लेना चाहिए। आखिर हमने सोची से बोरोनेज तक का टिकट लेकर विमान-यात्रा प्रारम्भ की। ज्यों ही विमान बोरोनेज के निकट पहुँचा कि अधिकारियों से सूचना मिली : “अचानक मौसम के ज्यादा खराब हो जाने से बोरोनेज में विमान का उतारना असम्भव हो रहा है, इसलिए बोरोनेज के यात्रियों को भी मास्को ही जाना पड़ेगा।” और इस सूचना के एक घण्टे बाद हम मास्को के हवाई अड्डे पर थे। हम तरह ३४०४ मील की पद-यात्रा के बाद प्रकृति के आगे हमें हार माननी पड़ी और पदयात्रा खण्डित करके हम मास्को पहुँच गये। काश !

काकेशस पर्वत ने हमारा साथ दिया होता ! सन् १९४५ के बाद इस वर्ष सर्वाधिक तेज सर्दी, तूफान और बर्फ ने रूस की भूमि को ग्रस्त किया था और हम भी उसी चपेट में आ गये ।

## मास्को में



१३ फरवरी !

हम मास्को पहुँच गये । सोवियत देश की राजधानी मास्को । ससार के प्रमुख नगरों में से एक मास्को । सुन्दर तथा वैज्ञानिक साधनों से सम्पन्न मास्को । ऊँचे-ऊँचे, आकाशचुम्बी भवनवाला मास्को !

“साठ लाख की आबादी । डेढ़ सौ से अधिक म्यूजियम । तीस थियेटर । सत्तर से अधिक प्रकाशनगृह । हजार से ज्यादा पुस्तकालय । उच्च-शिक्षा के लिए छियासी संस्थान ।” यह है ससार के आधुनिकतम नगरों में से एक मास्को । मास्को में हमारा एक महीना निश्चय ही हमें सदा याद रहेगा । चौड़ी तथा खूबसूरत सड़कों या लम्बे-चौड़े बगीचों या बेहतरीन होटलों आदि के कारण ही नहीं, बल्कि वहाँ के लोगों के स्नेह, आतिथ्य एवं उच्च जीवन के कारण ।

एक दिन हम मास्को का विश्वप्रसिद्ध विश्वविद्यालय देखने के लिए निकले । मास्को में हम जब तक रहे, श्री स्लावा नाम का एक युवक-दुभापिया हमारे साथ था । हम बस-स्टैंड पर पहुँचे । मुझे प्यास लगी । मैंने अपने दुभापिया साथी से पूछा कि वहाँ कहीं पानी है क्या ? वे मुझे एक जगह ले गये । एक छोटी-सी दुकान थी । दुकानदार कोई नहीं । मेरे साथी ने पाँच कोपेक ( रूसी सिक्का ) एक छेद में डाले । फलों के रस से तैयार किये हुए पानी के दो ग्लास भर गये । मैंने मन-ही-मन सोचा, “वहाँ सब कुछ ऑटोमेटिक है ।” दूतने में बस आ गयी । मैं इस बात पर चकित हुआ कि वन-डाइजर एक महिला थी । हम वन में बैठ गये । वन में कोई क्राउडर नहीं था । टिकट

के पैसों के लिए एक छोटी-सी पेटी बस में रखी थी। हमारे साथी ने उस पेटी में पैसे डाले और टिकट फाड़कर खुद ले लिया। “यदि कोई पैसे डाले बिना ही टिकट ले ले तो?”—मेरे मन में ऐसा सवाल उठा। पर मैंने बड़े गौर से देखा, ऐसा किसीने नहीं किया।

“मास्को में कई हजार बसे होंगी। यदि प्रत्येक बस में एक कण्डक्टर हो तो कई हजार कण्डक्टर चाहिए। आखिर किसलिए? इसीलिए न कि हम टिकट के बिना, चोरी से यात्रा न करें। यदि सब लोग यात्रा के नियमों का स्वयं पालन करें, तो इन हजारों व्यक्तियों का ठीक तरह से दूसरे आवश्यक कामों में उपयोग हो सकता है।”—ऐसा श्री स्लावा ने कहा। यही तो यहाँ हो रहा है। केवल बसों में ही नहीं, मास्को नगर की भूगर्भ रेलों में भी हमने कोई कण्डक्टर नहीं देखा। पूरे मास्को नगर के नीचे रेलवे लाइन बिछी है। यह दुनिया की सबसे सुन्दर भूगर्भ-रेलवे मानी जाती है। एक कोने से दूसरे कोने तक कहीं भी जाइये। जाते समय स्टेशन के दरवाजे पर ५ कोपेक का एक सिक्का एक पेटी में डालिये और चले जाइये। इन सब कामों के लिए, टिकट बेचने और जाँचने के लिए एक लम्बे-चौड़े दल की क्या जरूरत?

हम विश्वविद्यालय पहुँचे, लुमुन्वा विश्वविद्यालय। इसे यहाँ के लोग मैत्री-विश्वविद्यालय भी कहते हैं। सप्ताह के ८० दिनों के विद्यार्थी वहाँ पढ़ रहे हैं। विश्व-मैत्री और विश्व-बंधुत्व की बुनियादों को मजबूत बनाने में इस विश्वविद्यालय का अपूर्व स्थान है। विश्व में इस तरह की गायद यह एकमात्र संस्था है, जहाँ अलग-अलग भाषाओं और संस्कृतियों में पढ़े हुए युवक मिलकर रहते हैं और मैत्री के वातावरण में विद्या हासिल करते हैं। हमने अपना पूरा एक दिन इस मैत्री के अद्वितीय मन्दिर में बिताया।

इस भयंकर सर्दी में मास्को के पेड़, पौधे, सड़के और मकानों की छतें सुन्दर सफेद मुहावनी अत्यन्त गीतल वर्ष से ढँकी थीं। सफेदी की

इस चादर में लिपटा हुआ मास्को सचमुच कितना मोहक, कितना लुभावना और कितना आकर्षक था ।

मास्को पहुँचनेवाले प्रत्येक व्यक्ति को पहली आकाक्षा रहती है कि वह लेनिन की समाधि पर जाकर अपनी श्रद्धाजलि अर्पित करे । मानव-समाज के इतिहास में पहली बार समाजवादी समाज की स्थापना करने में लेनिन सफल हुए । उन्होंने न केवल सिद्धान्तों का निर्माण किया, बल्कि उन सिद्धान्तों के आधार पर एक समाज का निर्माण किया । आज सोवियत-देश के लिए सर्वाधिक प्यारा और आदरणीय व्यक्ति लेनिन हैं । हर दफ्तर में लेनिन का मुस्कराता हुआ चित्र हमने देखा । हमने इस देश में अक्सर यह बात सुनी कि जो आदर्श लेनिन ने हमारे सामने रखा है, उसी पर हमें आगे बढ़ना है । सारा देश लेनिन के बताये हुए मार्ग पर दृढ़ता और तेजी के साथ आगे कदम बढ़ा रहा है । इस देश में लेनिन का वही स्थान है, जो भारत में महात्मा गांधी का है ।

उस दिन सबेर हलकी बर्फ पड़ रही थी । मौसम में तेज सर्दियाँ बसी हुई थी । हम अपने निवास-स्थान से चलकर क्रेमलिन के सामने फैले हुए विगाल लाल प्रागण ( रेडस्कायर ) में पहुँचे । क्रेमलिन का अर्थ है : किला । मास्को नदी में झोंकता हुआ, आठ सौ वर्ष पुराना क्रेमलिन, प्राचीन रूसी इतिहास की सबसे बड़ी स्मृति है । सन् १९१८ से इसी क्रेमलिन में सर्वोच्च सोवियत तथा अन्य प्रमुख सरकारी दफ्तर स्थित हैं । क्रेमलिन के ठीक सामने लाल प्रागण में एक लम्बी कतार खड़ी थी । देश-विदेश के हजारों नर-नारी प्रतिदिन इसी भौंति यहाँ लाइन बॉधकर सोवियत-क्रान्ति के पिता की समाधि पर पहुँचते हैं । समाधि-स्थल वैसा ही आडम्बर-हीन और सादा है, जैसे स्वयं लेनिन थे । हम समाधि के अन्दर पहुँचे । रासायनिक तत्वों से सुरक्षित लेनिन का शरीर आज भी आश्चर्य-जनक कान्तिमान् है । चेहरे पर एक गम्भीर मुस्कान बिछी है । वे नयन मूँदकर ऐसे सोये हैं, मानो कुछ थककर विश्राम कर रहे हों और थोड़ी देर बाद उठकर हमारे साथ बातचीत करनेवाले हों ।



हम क्रेमलिन के अन्दर भी गये, जहाँ लेनिन सोवियत-शासन के सत्रधार बनकर रहते थे, जहाँ बैठकर सोवियत-सघ के भविष्य की योजना बनाते थे, जहाँ बैठकर श्रमिकों और किसानों की समस्याएँ सुलझाते थे, जहाँ अपनी पत्नी क्रूसकाया के साथ बैठकर भोजन करते थे, जहाँ बैठते थे, सोते थे उस स्थान को हमने देखा। जो चीज लेनिन के समय जैसी थी, आज भी वह चीज वैसे ही रखी है। कितना सीधा-सादा जीवन ! कितनी थोड़ी-सी साधारण चीजों से वे अपना काम चलाते थे। उनका निवास-स्थान देखकर यह सोचना कठिन होता है कि यह स्थान सोवियत-सघ जैसे विशाल देश के शासक का निवास-स्थान रहा है। एक साधारण मानव का जीवन जीकर भी अपने त्याग और बलिदान की बदौलत लेनिन महामानव बन गये और उन्होंने ससार के इतिहास को एक नया मोड़ दे दिया। सोवियत-सघ का आज जो भी रूप है, उसकी बुनियाद स्वयम् लेनिन ने डाली थी।

हमने लेनिन-संग्रहालय भी देखा। रूस से बाहर, स्विट्जरलैण्ड, जर्मनी इत्यादि देशों में रहकर किस प्रकार उन्होंने क्रान्ति की मशाल जलायी, कैसे इस्का, प्रावदा आदि पत्र निकाले, कैसे जनता को संघर्ष के लिए न केवल जगाया, बल्कि शिक्षित भी किया और किस तरह यातना भोगते हुए सम्पूर्ण देश में उन्होंने विद्रोह की लहर फैला दी, इसकी एक सजीव झोंकी हमने इस संग्रहालय में देखी। श्रमिकों और किसानों की दयनीय अवस्था ने लेनिन के हृदय में एक भयंकर वेदना उत्पन्न कर दी और उन्होंने अपने जीवन का एकमात्र लक्ष्य इन श्रमिकों और किसानों को जीने का समान अधिकार दिलाना ही माना। जब सोवियत-क्रान्ति सफल हुई, तब उन्होंने श्रमिकों और किसानों के लिए जीवन के समस्त साधनों की उपलब्धि का मार्ग ढूँढ़ा। सोवियत-क्रान्ति का पहला परिणाम था : उत्पादन के साधनों पर व्यक्तिगत स्वामित्व की समाप्ति और व्यापार-व्यवसाय के माध्यम में होनेवाले उत्पादक तथा उपभोक्ता के शोषण का अन्त। जो खाता है, उसे अवश्य काम करना चाहिए और जो काम

करता है, उसे पर्याप्त भोजन उपलब्ध होना चाहिए, यह लेनिन का पहला विचार था। संग्रहालय को देखते समय हम यह समझ पाये कि सोवियत-देश को विकास की सबसे ऊपरी मजिल तक पहुँचाने के लिए उनके मस्तिष्क में कैसी योजनाएँ थीं।

लेनिन एक व्यक्ति नहीं, विचार है। उस विचार को अपनाने का परिणाम होगा : शान्ति, श्रम और समानता। उनकी समाधि पर जाकर हम शान्ति, श्रम और समानता का पाठ सीखें, यही उनके प्रति सबसे बड़ी श्रद्धाजलि है।

मास्को नगर हमारी पहली मंजिल थी। दिल्ली से चले—मास्को और वाशिंगटन के लिए। पहली मजिल पर पहुँचने की विशेष प्रसन्नता हमारे हृदय में उभर रही थी। मास्को में हमारे मिशन के अनुसार कार्यक्रम चला। सोवियत-शान्ति-परिपद् के अव्यक्त, मन्त्री और सदस्यों के साथ दो दिन हमारी चर्चाएँ हुईं। हमने अपनी यात्रा की योजना, सस्करण आदि बताया। निःशस्त्रीकरण और आणविक प्रयोगों के बारे में हमारी जो दृष्टि है, वह भी हमने पेश की। “हर हालत में आणविक प्रयोगों पर तुरन्त प्रतिबन्ध लगे, सोवियत सरकार उसके लिए पहल करे और अविलम्ब इस समस्या का कैसे समाधान हो सकता है, इस बारे में विचार हो। हम इस काम के लिए अपनी शक्ति और सामर्थ्य की अन्तिम कसौटी तक पहुँचकर भी शान्ति के लिए किये जानेवाले स्वर्ण में अपना जीवन अर्पित करने को तैयार हैं।”—इस तरह हमने अपना पक्ष रखा।

विश्वविद्यालय के छात्र हो या किसी कारखाने के श्रमिक। गाँवों के किसान हो या शहरों के बुद्धिजीवी। प्रयोगशाला का वैज्ञानिक हो या होटल में खाना परोसनेवाली महिला। यहाँ सबके मन में समान रूप से शान्ति की आकांक्षा है और युद्ध से घृणा है। चार बरों की वस्तीवाटें गाँव से लेकर मास्को जैसे शहर तक सभी जगह वे लोग हमसे बार-बार एक ही सवाल पूछते थे : “किसके लिए पैदल चलते हो?” हमारा उत्तर भी

एक ही होता था : “शान्ति के लिए ।” लोग तुरत कह उठते थे, हम भी “शान्ति के लिए” है । सभी “शान्ति के लिए” है, फिर भी शान्ति नहीं होती । जो “शान्ति के लिए” है वे ही “युद्ध के लिए” तैयारी कर रहे हैं । कोई नहीं जानता कि यह तैयारी क्यों चल रही है ?

मास्को संसार का वह स्थान है, जहाँ युद्ध और शान्ति के प्रश्न पर निरन्तर चर्चा होती रहती है । मास्को विश्व के उन दो नगरों में से एक है, जहाँ से युद्ध और शान्ति के सवाल पैदा होते हैं और जहाँ उन सवालों का समाधान ढूँढा जाता है । जब हम ३२ मजिल के भव्य विश्व-विद्यालय में छात्रों की सभा में युद्ध और शान्ति के प्रश्न पर भाषण देने गये, तो हमें लगा कि वहाँ के कण-कण में युद्ध और शान्ति का प्रश्न समाया हुआ है । २२ हजार छात्रों को ज्ञान-विज्ञान तथा कला की शिक्षा देनेवाला यह स्थान एक विचित्र हलचल से भरा हुआ था । वियतनाम और ईराक जैसे देशों में हुई घटनाओं के चित्रों से सजी हुई दीवारों के पास जोर-जोर से युद्ध और शान्ति के प्रश्न पर बहस हो रही थी । हमने विश्वविद्यालय के युवक विद्यार्थियों के साथ कई घण्टे बिताये और यह पाया कि वे सब केवल एक ही प्रश्न का समाधान ढूँढ रहे हैं । उनका प्रश्न है : “जब सभी शान्ति के उत्सुक हैं, तो युद्ध के लिए क्यों तैयारी चल रही है ?”

मास्को विश्वविद्यालय चेतनशील, प्राणवान् और जागृत विद्यार्थियों की विद्या-भूमि है । वे केवल अपनी पुस्तकों में ही बँधे नहीं रहते । वे संसार की हर समस्या से परिचित हैं और उसका समाधान ढूँढते हैं । उस समाधान के लिए वे हर तरह की कुर्बानी करने को भी तैयार रहते हैं । हमारे साथ चर्चा करने के बाद ऐसे विद्यार्थियों का ताँता लग गया, जो अपनी पढ़ाई छोड़कर, घर-परिवार की चिन्ता छोड़कर हमारे साथ पदयात्रा में आने के लिए भी प्रस्तुत थे । उन्हें खाना नहीं मिलेगा, तो कोई चिन्ता नहीं । उन्हें किसी देश की सरकार जेल में बन्द कर देगी, उसकी भी परवाह नहीं । उन्हें सरकार की नीति के विरोध में बोलना पड़े, तो उसके लिए भी उन्हें कोई हिचक नहीं । उनके मन में एक आग थी, एक माहम था, एक

तडप थी। हम उनकी तीव्रता पर मुग्ध हो गये। ऐसे चार विद्यार्थी, जो हमारे साथ आना चाहते थे, रात-रातभर हमारे साथ बातें करते रहते थे। वे पूरे तौर से हमारे साथ आना चाहते थे, पर सरकारी आज्ञा के अभाव में आ नहीं सके।



मास्को विश्वविद्यालय के छात्रों के बीच हम पहुँचे

मास्को के राजपथ, मास्को के भवन और मास्को के लोग हमारे लिए चिर-परिचित से हो गये। मास्को ने हमें इतना समा लिया कि जब हम उसे 'दास्वीदानिया' (विदा के समय का रूसी नमस्कार) कहने लगे, तो ऐसा आभास हुआ मानो हम यहीं के वाशिदे हैं। मास्कोवासियों की सरल सहज स्वाभाविकता, उनका चरित्र और उनके वर्ताव ने हमारे मन-मस्तिष्क पर ऐसा प्रभाव डाला जो अमिट है। वह पुनः पुनः मास्को जाने के लिए हमें प्रेरित करता है। बिना दुकानदार की दुकान में, या बिना कण्डक्टर की बस में भी साधारण मास्कोवासी नागरिकों को आप उतना ही नैतिक तथा जिम्मेदार पायेंगे, जितने जिम्मेदार वे अपने घर में अपने परिवार के प्रति होते हैं। मास्को अपने आस-पास के उपनगरों को मिलाकर बहुत लम्बा-चौड़ा है। वह निरन्तर बढ़ता जा रहा है। भवन

इतनी शीघ्रता से निर्माण हो रहे हैं कि एक सप्ताह पहले जहाँ कुछ भी नहीं था, वहाँ दूसरे सप्ताह भवनो की कतार देखने को मिलेगी। वनती हुई इमारते और उनके लिए गगनचुम्बी क्रेने ऑखों को बरबस खींच लेती हैं। पिछले दो वर्षों में ६८ लाख वर्गमीटर जमीन में इमारते खड़ी हो चुकी हैं। मास्को के शिल्पियों ने वहाँ के भवनो को एक विशिष्ट शिल्प प्रदान किया है। क्रेमलिन और विदेश मन्त्रालय से लेकर उक्राइन होटल और विश्वविद्यालय के भवन तक एक विशिष्ट कला दृष्टिगोचर होगी। इन भवनो के ऊपरी शिखर पर, जो कि पतले से गगनचुम्बी गुम्बद के रूप में होते हैं, शान्ति और मित्रता का प्रतीक सितारा चमकता रहता है।

मास्को में हमारी मुलाकात सर्वोच्च सोवियत के अध्यक्ष श्री स्पर्ि-दोनोव से हुई और क्रेमलिन में उनके सामने हमने रूस द्वारा एकपक्षीय निःशस्त्रीकरण किये जाने की माँग पेश की। डेढ़ घण्टे की हमारी बातचीत में उन्होंने विस्तार से हमें सोवियत नीति की जानकारी दी।

## टाल्स्टाय के घर पर



यह १९५५ की बात है। मैंने प्रतिदिन तीन-चार घण्टे खेत पर काम करना प्रारम्भ किया था। पुरातन संस्कारों के कारण मन में कभी-कभी सोचता था कि “इस तरह खेती में जो हिंसा होती है, उसमें प्रवृत्त होना क्या मेरे लिए उचित है?” इस अन्तर्द्वन्द्व की चर्चा अपने मित्रों के साथ करता रहता था। एक दिन मेरे आत्मीय मित्र श्री द्वाग्नोजी ने टाल्स्टाय की एक पुस्तक मुझे पढ़ने के लिए दी—“हम करें क्या?” पुस्तक के नाम ने ही मुझ पर जादू कर दिया। समाज के बारे में गहराई से सोचने-वाले हर जवान के दिमाग में यह सवाल चक्कर काटता रहता है। मैंने दिमाग पर भी दुनियाभर की उलझने मवार थी। मैंने एक सप्ताह में

इस पूरी पुस्तक को पढ़ डाला। श्रम-जीवन की ओर आकृष्ट करने के लिए यह पुस्तक मेरे लिए गुरु साबित हुई। मन में आया कि और सब धंधे छोड़कर खेती के काम में ही लगूँ। फिर जो समय बचे, उसमें इस पुस्तक का प्रचार करूँ। मैं मानता हूँ कि यदि हर तरुण इस पुस्तक का अध्ययन कर ले, तो समाज में आर्थिक-क्रान्ति की बुनियाद बहुत मजबूत हो जायगी। जिस दिन से मैंने यह पुस्तक पढ़ी, उसी दिन से मेरे हृदय में एक तूफान उठ खड़ा हुआ। तभी से मैंने अपने दिमाग में एक आन्दोलन और जीवन में एक नयी प्रेरणा का दर्शन किया।

टात्सटाय के जीवन की सर्वश्रेष्ठ उपलब्धि “युद्ध और शान्ति” नाम का उपन्यास जब मैंने पढ़ा, तब से तो दिमाग में एक ऐसी खिड़की खुल गयी कि जिसके अन्दर से छन-छनकर प्रकाश की किरणें भरने लगी। युद्ध के खिलाफ शान्ति-आन्दोलन में अपना जीवन खपाने तक की मेरी जो तैयारी है, उसकी बुनियाद का पत्थर यह महान् उपन्यास ही था। राजघाट पर बापू की समाधि से जब हम पैदल यात्रा पर निकले, तो पल-भर विचार-तरंगों राजघाट से यास्नायापोल्याना तक पहुँच गयी। एक स्थान से अहिंसा और विश्व-शान्ति का सक्रिय आदर्श मिला, दूसरे स्थान से वैचारिक बुनियाद।

१७ फरवरी जीवन का एक अविस्मरणीय दिन बन गया। १२ फरवरी को हमने बापू की याद की और उस याद ने हमें आणविक अस्त्रों के विरुद्ध तीव्र-से-तीव्र संघर्ष करने का बल दिया। ठीक चार दिन बाद बापू के बहुत बड़े वैचारिक साथी श्री टात्सटाय की समाधि पर हम पहुँचे, तो कुछ देर के लिए ऐसा लगा, मानो ये दोनों विभूतियाँ एकाकार होकर ससार को मैत्री और सत्य की प्रेरणा प्रदान कर रही हैं।

५० वर्ष से भी पहले की बात है। एक लम्बी ओर सफेद दाढ़ीवाला विचारक बर्फ से ढँके और ऊँचे-ऊँचे वृक्षों से घिरे एक छोटे-से मकान में कुछ सोच रहा था और कुछ लिख रहा था। दूसरी ओर मिट्टी की एक छोटी-सी झोपड़ी में बूढ़ों तक की लँगोटी पहननेवाला अपने

मस्तिष्क में सामाजिक-क्रान्ति का एक चित्र खींच रहा था। एक का विचार और दूसरे का चित्र। दोनों ने एक दूसरे को कभी देखा नहीं, एक दूसरे से कभी मिले नहीं, परन्तु दोनों ने जीवन के सत्य को पहचाना और दोनों एक ऐसे सिरे पर जाकर मिल गये, जहाँ सचमुच मानव की मंजिल है।

हम जब टाल्स्टाय के घर पहुँचे, तो हमने सबसे पहले वह स्थान देखा, जहाँ पर सन् १८२८ में इस विवेक-पुरुष का जन्म हुआ था। पहले इस स्थान पर एक बड़ा मकान था, पर आज तो एक शिलालेख मात्र है। उसके बाद हम उस ऐतिहासिक वृक्ष की छाया में पहुँचे, जहाँ पर टाल्स्टाय आसपास के दीन-हीन, गरीब किसानों के साथ मिलते थे, उनकी समस्याएँ सुनते थे और उनकी मोंगे पूरी करते थे। टाल्स्टाय के व्यक्तित्व को चित्रित करनेवाला उनका एक वैचारिक नाम रखा जाय, तो उन्हें 'करुणा की विभूति' कहना अधिक उपयुक्त होगा। उस युग में, जब इस देश के ग्रामीण किसान तो उपेक्षित थे ही, पर उनकी सन्तानें तो बहुत ही बुरी हालत में थी, तब टाल्स्टाय ने अपने फार्म का एक मकान उन बच्चों की शिक्षा-दीक्षा के लिए खोल दिया और स्वयं अपना समय उन नन्हें पौधों की देख-भाल में व्यतीत करने लगे। सन् १८२८ से १९१० तक का उनका सम्पूर्ण जीवन एक करुणामय हृदय की मोहक कहानी है।

पत्नी और १३ बच्चों के बृहत् परिवार के साथ टाल्स्टाय जिस कमरों-वाले सुन्दर घर में निवास करते थे, उस घर में जब हमने कदम रखा और एक-एक वस्तु को ध्यानपूर्वक निहारा, तो हमें ऐसा अभास होने लगा, मानो टाल्स्टाय अभी-अभी यहीं थे, कुछ देर पहले कहीं गये होंगे। इस घर की प्रत्येक चीज, प्रत्येक सामान और प्रत्येक सजावट ठीक उसी तरह से अभी भी मुरझित है, जैसी कि टाल्स्टाय के जीवित रहने के समय थी। लकड़ी के ग्रामोद्योगी चम्मचों से लेकर बड़े पियानों तक, बड़ी गान भापा में टाल्स्टाय के जीवन की कहानी कह गये थे। जिन कुर्मियों पर वे

बैठते थे, जिस टेबल पर वे लिखते थे और जिस शैया पर वे सोते थे, वे सब सचमुच हमारे मस्तिष्क में एक ऐसा प्रभाव उत्पन्न कर रहे थे, जिसका शब्दाङ्कन असम्भव प्रतीत होता है। दोनों पियानो मानो बता रहे हैं कि टाल्स्टाय केवल विचारक, लेखक या क्रान्तिकारी ही नहीं थे, बल्कि वे एक महान् सगीत-प्रेमी भी थे। उन्होंने अपने लिखने के कमरे में हेनरी जॉर्ज और चार्ल्स डिकन्स के सुन्दर चित्र टॉग रखे थे। यह इस बात का प्रमाण है कि टाल्स्टाय को ये दोनों विभूतियाँ अत्यन्त प्रिय थीं।

आर्थिक क्रान्ति का जो सूत्र टाल्स्टाय ने व्यक्त किया, उस सूत्र में से सबसे पहला परिणाम निकला : शरीर-श्रम। बिना श्रम किये आदमी को जीने का और खाने का हक नहीं है, इस क्रान्तिकारी विचार ने टाल्स्टाय के अपने जीवन को भी बदल दिया। करीब एक हजार एकड़ ( ३८४ हेक्टर ) का बहुत बड़ा फार्म होते हुए भी उन्होंने जूते सीने का काम शुरू किया। कंधे पर फावड़ा रखकर वे स्वयं अपने फार्म पर निकल पड़े और यही सबसे बड़ी क्रान्ति थी। उन्होंने अपने उपन्यासों में केवल उच्च आदर्शवादी नायक चित्रित करके ही अपने कार्य की समाप्ति नहीं समझी, बल्कि उन आदमियों को अपने जीवन में क्रियात्मक रूप दिया।

अहिंसा और प्राणीमात्र के प्रति प्रेम की भावना ने टाल्स्टाय को शाकाहारी बना दिया। उस युग में रूस जैसे देश में शाकाहार की कल्पना भी विचित्र वस्तु थी, परन्तु टाल्स्टाय की करुणा का स्रोत केवल मनुष्यों तक सीमित न रह सका। उनके सबसे प्रिय मित्र श्री मैकोवीत्स्की उनके ही घर में छह वर्ष रहे। उस अन्तिम रात्रि को जब वे वाल्-वच्चो को घर में सोये छोड़कर अपनी प्यारी पुत्री के साथ महाभिनिष्क्रमण पर निकले, तो डॉ॰ मैकोवीत्स्की उनके सबसे बड़े सहायक थे। उस रात की हृदयद्रावक कहानी सब जानते हैं। वृद्ध टाल्स्टाय के मस्तिष्क में उस रात जो तूफान चल रहे थे, वे स्वयं अपने-आपमें एक बड़े उपन्यास की भूमिका थे, पर वह उपन्यास लिखा नहीं गया।



बाईस हजार पुस्तकों की ज्ञान-विज्ञानमय परिधि के बीच टाल्स्टाय ने अपने विचारों को पकाया । हम यह देखकर सचमुच चकित थे कि १५ भाषाओं के इस पण्डित ने कितनी कुशलता से इन हजारों पुस्तकों का अवगाहन किया । न केवल उन्होंने उसका अवगाहन किया, प्रत्युत उस सारे ज्ञान को अपने मानस में पचाकर उन्होंने विश्व-साहित्य को जो गम्भीर नेतृत्व प्रदान किया, वह शताब्दियों तक ससार को सत्य का मार्ग दिखलाता रहेगा ।

सोवियत-शान्ति-परिपद ने हमारी इस यात्रा का प्रबन्ध किया । उन्होंने हमारे लिए एक विशेष कार मेजी । हम सुबह आठ बजे चले । तीन घण्टे में मास्को से दो सौ किलोमीटर पर टाल्स्टाय की चिरस्मरणीय भूमि पर हम पहुँचे । ५ घण्टे तक घूम-घूमकर हमने इस भूमि की पूरी परिक्रमा की और उसी दिन सायंकाल ७ बजे हम मास्को की विजली से चमचमाती हुई लम्बी-चौड़ी सड़को पर वापस पहुँच गये ।

प्रणाम मेरे टाल्स्टाय !

टाल्स्टाय, ओ टाल्स्टाय !!

तुम्हारा दूसरा नाम है—मानवता

और मेरे लिए तुम्हारे नाम का अर्थ है . सत्य ।

क्योंकि तुमने सत्य की खोज की, सत्य को पाने के लिए लिखा

तथा जिस सत्य को तुमने पाया उसके लिए अपना जीवन

अर्पित कर दिया ।

तुम्हें टाल्स्टाय कहूँ ?

या मानवता का प्रतिविम्ब कहूँ ?

या केवल सत्य कहूँ ?

क्योंकि मेरे लिए तुम एक व्यक्ति नहीं, एक विचार हो ।

## फिर रूसी गाँवों में



मास्को नगर की आकाशचुम्बी अट्टालिकाओं के घेरे से निकलकर जब हम छोटी-छोटी बस्तियों में बसनेवाले ग्रामीण किसानों के बीच पहुँचे, तब हमें एक नयी धरती के दर्शन हुए। यह ऐसी धरती थी, जहाँ अनेक युद्ध खेले गये। यहाँ का हर ग्रामीण जानता था कि युद्ध क्या है? हमारे साथ कोई दुभाषिया या 'गाइड' नहीं रहता था। जहाँ भी हमें जाना हो, जहाँ भी ठहरना हो, जिससे भी हमें मिलना हो, हम पर कोई प्रतिबन्ध नहीं था। हमने एक-एक आदमी से पूरी आजादी के साथ खुलकर बातचीत की। हमने देखा कि युद्ध के प्रति इन ग्रामीण भाइयों के मन में घोर नफरत है। ये किसान और मजदूर उस धरती का निर्माण कर रहे थे, जिस धरती को दूसरे महायुद्ध में हिटलर की सेना ने क्षत-विधत कर दिया था। वहाँ का सब कुछ मिट्टी में मिल गया था। वहाँ नये-नये घर बन रहे थे। गाँव बस रहे थे। बस्तियाँ आबाद हो रही थी। कारखाने खड़े हो रहे थे। सड़के, स्कूल और टावर खाने बन रहे थे। उस धरती का निर्माण करनेवाले किसान और मजदूर हमसे कहते थे : "आप अमेरिका जा रहे हैं। अमेरिकन मित्रों को हमारी तरफ से यह सन्देश दीजिये कि हम यह सब निर्माण-कार्य इसलिए नहीं कर रहे हैं कि कोई अणुबम इन पर गिरे और पलभर में सब कुछ स्वाहा कर दिया जाय। हम अमेरिकनो के साथ शान्ति और मैत्री से रहना चाहते हैं।"

एक दिन हम एक छोटे-से गाँव में ठहरे थे। एक किसान हमारे पास आया। अपनी नीली आँखों से उसने हमें सिर से पैर तक देखा। फिर हमारे कन्वे पर हाथ रखकर बोला : "मैंने सुना है कि आप शान्ति के दूत हैं। भारत से आये हैं। यहाँ से अमेरिका जा रहे हैं। क्या यह सच है?" हमारे 'हाँ' कहने पर वह किसान बोला : "आप अमेरिकन मित्रों को मेरा एक सन्देश दीजिये। उनसे कहिये कि आपके देश में युद्ध नहीं लड़ा गया। आप नहीं जानते कि युद्ध का जहर कितना भयंकर

होता है। उसे हम जानते हैं। हमारे अनुभव से नसीहत लीजिये। युद्ध की कल्पना से भी हमारे रोगटे खड़े हो जाते हैं। इसलिए युद्ध की तैयारियाँ बन्द करने के एकमात्र मार्ग पर हम दोनों देशों के लोगो को कदम मिलाकर बढ़ने का समय आ गया है।” वह किसान बहुत तीव्रता से बोल रहा था। उसने अपनी बात कही और हमें अपनी बाहों में भरकर चूम लिया। इसी तरह के प्रसंग कई बार हमारे सामने आते थे।

“युद्ध मे मेरा भाई मारा गया। मेरा पिता मारा गया। मैं अकेला बच गया हूँ।”—एक कहता था।

“युद्ध मे मेरा पैर ही खतम हो गया। मैं लँगडा हो गया।”—दूसरा कहता था।

“युद्ध मे मेरी आँख गयी। मेरा हाथ गया। मुझे निकम्मा बना दिया युद्ध ने।”—तीसरा कहता था।

और इस तरह के युद्ध-पीड़ित लोगो से प्रतिदिन हमें युद्ध की कहानियाँ सुनने को मिलती थी। एक छोटे-से गाँव मे हम ठहरे थे। जिस घर मे हम थे, उस घर मे केवल दो वृद्धाएँ थी। उनके परिवार के सभी पुरुष युद्ध-कवलित हो गये थे। एक दूसरे गाँव मे वृद्ध पति-पत्नी अपने जवान पुत्रों को युद्ध मे समर्पित करके किसी तरह दुःखी जीवन बिता रहे थे। इन गाँवों मे बसनेवाले लोगो के साथ समय बिताने, बातचीत करने और अनुभव प्राप्त करने से हमें मानव-जीवन के सच्चे दर्शन होते थे। रूसी गाँवों मे बसनेवाले श्रमिकों की एक ही इच्छा है कि किसी भी मूल्य पर फिर से युद्ध की आग न भड़के।

हम किसी भी गाँव मे पहुँचते थे, तो रूसी ग्रामीण हमें चारों ओर से घेर लेते थे। हमारे ठहरने का, खाने का, आराम का और हर प्रकार की सुविधा का प्रबन्ध पलभर मे हो जाता था। हम किसीका भी द्वार खट-खटाते, हमारे लिए वह घर अपना ही बन जाता था। भारत को और भारतवासियों को ये लोग बेहद प्यार करते हैं।

हमने मास्को से अपनी पदयात्रा शून्य से ३० डिग्री नीचे की भयंकर सर्दी में प्रारम्भ की थी। सोवियत शान्ति-परिषद् के मित्र इस सर्दी से बहुत भयभीत थे। इस सर्दी में चल पडने की सलाह देने के लिए वे कतई तैयार नहीं थे। उन्होंने मास्को से वारसा तक हमारे लिए विमान में स्थान सुरक्षित करवाया और विमान के टिकट हमें दिये। हमने वे टिकट अस्वीकार करके अपनी पदयात्रा प्रारम्भ की। हमें विश्वास था कि जिस सर्दी में रूसी लोग पूरा जीवन-क्रम चलाते हैं, सब काम करते हैं, वहाँ हम भी जीवित रह सकते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि साइबेरिया की ओर से आनेवाले तेज बर्फानी तूफान में हमारे हाथ-पैर अकड़ने लगे। मुँह लाल होने लगा। नाक से पानी बहने लगा और वह पानी मूँछ तथा दाढ़ी में ही अटककर बर्फ बनने लगा। यह कष्टदायक जाड़ा हमारे लिए एक नया अनुभव था। जिस सर्दी में हिटलर की सेना को घुटने टेक देने पड़े, उस विश्वप्रसिद्ध रूसी सर्दी का हमने प्रत्यक्ष दर्शन किया। जब मकानों की छते बर्फ से लदी हो, रास्ते बर्फ से भरे हो, पेड़-पौधे बरफ से ढँके हो और सम्पूर्ण पृथ्वी जब बर्फ के परिधान में लिपटी हो, तब प्रकृति के अञ्चल में श्वेत-शीतल मोहकता को निहारते हुए मुक्त-संचार करना कितना मधुर होता है, यह कभी कल्पना भी नहीं कर सकते थे। हमने अपने जीवन में इतनी और ऐसी बर्फ का पहली बार दर्शन किया।

काश ! हम शान्ति-यात्रियों के साथ-साथ कोई चित्रकार भी होता, जो इन सुन्दर गाँवों के चित्र उतार सकता, यद्यपि ये चित्र हमारे मानस-पट पर बखूबी चित्रित हो गये हैं। ये सोवियत गाँव वैसे ही छोटे-छोटे हैं, जैसे भारत के गाँव होते हैं। छोटे-छोटे लकड़ी के घर। मिट्टी, ईंट, पत्थर, चूने के नहीं, बल्कि लकड़ी के घर ही यहाँ के मौसम में अधिक सुविधापूर्ण और अनुकूल रहते हैं। इन घरों में रहनेवाले किसान भी भारतीय किसानों की भाँति सरल स्वभाववाले होते हैं। पर भारत के गाँवों की तरह बेकारी, अग्निधा, बीमारी और गरीबी का साम्राज्य यहाँ नहीं है। आपको बाहर से दीखनेवाला एक साधारण झोपड़ा अन्दर से

बेहतररीन ढंग से सजा हुआ मिलेगा । आराम-देह पलंग और सोफा प्रायः हर घर की सामान्य आवश्यकता है । एक कोने में लेनिन के चित्र के नीचे पुस्तकों से भरी अलमारी, उसके पास में ही आधुनिक क्रोकरी से भरी हुई दूसरी अलमारी तथा सुन्दर फरनीचर सजा होगा । शरीर से बलवान् और स्वभाव से मेहनती सोवियत किसान ससार की राजनैतिक और आर्थिक गतिविधियों से परिचित रहते हैं । हर घर में अखबार, पत्र-पत्रिकाएँ निश्चित रूप से मिलती थीं । 'क्रेमलिन' और 'हाइट हाउस' के दैनन्दिन समाचारों का विवरण सुनने के लिए हर किसान अपने घर में रेडियो रखता है । गाँव-गाँव में टेलीविजन का विस्तार व्यापक रूप से है । सिनेमा भी गाँव-गाँव में देखने को मिलते हैं । इस प्रकार सोवियत गाँवों के लोग आधुनिक और भौतिक जीवन की दिशा में प्रगति कर रहे हैं ।

५० फुट चौड़ी और क्षितिज के अन्त तक दिखती हुई सीधी और लम्बी सड़क को नापते हुए हम बढ़ते चले जा रहे थे । 'चरन् वै मधु-विन्दति ।' का प्रत्यक्ष अनुभव हमें प्रतिदिन हो रहा था । हमारा एक ही प्रेरणा-सूत्र था : 'चरैवेति ! चरैवेति !'

रूस में जब वीसा रद्द हो गया



मास्को में एक दिन पता चला कि हमारे वीसा की अवधि रद्द कर दी गयी है । मगर वीसा रद्द हो जाने के बाद भी हम यात्रा करते रहे । यह थी गैर-कानूनी यात्रा । जी हाँ, सोवियत-संघ में हम ४५ दिन तक गैर-कानूनी यात्रा करते रहे । हमारा पासपोर्ट इस बात का प्रमाण है कि हमें १ जनवरी '६३ से ३० अप्रैल '६३ तक का वीसा तेहरान के सोवियत-दूतावास से प्राप्त हुआ । लेकिन मास्को में हमारे पासपोर्ट पर यह नोट लिखा गया कि हमें १४ मार्च के पहले मास्को हवाई अड्डे से बिदा हो जाना होगा । हमारा पासपोर्ट इस बात की साक्षी देता है कि

१ मई '६३ को हमने पोलैण्ड में प्रवेश किया और उसके पहले हम रूस की धरती पर ही यात्रा करते रहे ।

हमारा 'वीसा' क्यों रद्द किया गया ? यह एक ऐसा प्रश्न है, जिसका स्पष्ट उत्तर स्वयं हमारे पास भी नहीं है । सोवियत-सरकार की तरफ से हमारी यात्रा को पूरा समर्थन मिला । प्रधान मन्त्री ने स्वयं हमें लिखा कि आप जैसे व्यक्तियों की ये शान्ति-यात्राएँ निःशस्त्रीकरण के लिए अनुकूल वातावरण बनाने में असाधारण रूप से सहायक होगी । सर्वोच्च सोवियत के अध्यक्ष के साथ हमने जब बातचीत की, तब वे हृदय से हमारे साथ थे । हमारे विचारों से मतभेद होना अलग बात है, पर हमारी यात्रा के लिए सरकार की पूरी सहानुभूति थी । हम प्रतिदिन सैकड़ों और कभी-कभी हजारों सोवियत-किसानों और श्रमिकों से मिलते थे और उनसे असाधारण स्वागत और आतिथ्य प्राप्त करते थे । कम्युनिस्ट पार्टी के दैनिक पत्र 'प्रावदा' और सरकारी दैनिक 'इजवेस्तिया' से लेकर पचासो छोटे-बड़े अखबारों ने हमारी यात्रा के समर्थन में लेख, कहानियाँ और फोटो प्रकाशित किये थे । इन सबके बावजूद हमारा वीसा क्यों रद्द कर दिया गया ?

हम वहाँ सोवियत शान्ति-परिषद् के अतिथि थे । शान्ति-परिषद् के अध्यक्ष श्री टीखोनोव अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त बुजुर्ग कवि हैं और अद्भुत व्यक्तित्व के धनी हैं । सोवियत शान्ति-परिषद् ने हमारी यात्रा में हर तरह से मदद की । जब हम रूसी भाषा नहीं जानते थे, प्रतिदिन अंग्रेजी पढ़ानेवाले स्कूल मास्टर को हमारे साथ भेजा जाता था । छोटे-छोटे गाँवों में हमारे लिए सभाएँ करना और ठहरने आदि का प्रबन्ध करना सोवियत शान्ति-परिषद् ने किया । जब हम मास्को पहुँचे, तो वहाँ की भयंकर सर्दियों का सामना करने के लिए ओवरकोट और गरम कपड़े भेंट किये । हालाँकि हमसे शान्ति-परिषद् को कोई अपेक्षा नहीं, फिर भी उन्होंने हमारे लिए उत्कृष्ट आतिथ्य उपलब्ध किया । लेकिन शान्ति-परिषद् में कुछ अधिकारी ऐसे भी थे, जो किमी भी तरह पद-यात्रा का

महत्त्व नहीं समझ पा रहे थे। वे बार-बार हमसे कहते कि “आपकी पदयात्रा से क्या शान्ति स्थापित होनेवाली है? फिर, सोवियत सरकार और सोवियत जनता तो गत-प्रतिशत शान्ति के लिए तैयार है। हमें कुछ समझाने की जरूरत नहीं। जर्मनी जाइये, अमेरिका जाइये। वहाँ के युद्ध-पिपासु पूँजीवादियों को समझाइये।” यह बात सिवा इन शान्ति-कार्यकर्ताओं के और किसीसे भी हमने नहीं सुनी। इन महाशयों ने हमसे यह भी कहा कि “आपको हमारे देश में ढाई महीने हो गये हैं। इतना समय काफी है। मास्को से वारसा तक के लिए हम आपकी हवाई यात्रा का प्रयत्न कर रहे हैं। असली मोर्चा तो जर्मनी, फ्रांस, ब्रिटेन और अमेरिका है, जहाँ की सरकारें निःशस्त्रीकरण के लिए हृदय से प्रयत्न नहीं करती। यहाँ पैदल चलकर समय नष्ट करने से क्या लाभ?”

हमने कहा : “हम केवल एक ही शर्त पर अपनी पदयात्रा छोड़कर विमान से जा सकते हैं। अगर आपकी सरकार यह घोषणा करे कि अब आगे से एक भी नया एटम बम नहीं बनाया जायगा। जब तक हमें यह वचन नहीं मिलता, तब तक हम किसी भी सवारी से नहीं जायेंगे।” हमारी इस साफ बात से वे कुछ नाराज हुए। तेहरान में हमें जिस वीसा अधिकारी ने पहली मुस्कान में जीत लिया और उसके बाद हजारों रूसी लोगो ने अपने स्नेह और आतिथ्य से गद्गद कर दिया, उनसे सर्वथा भिन्न ये कार्यकर्ता थे। उन्होंने आखिर अपनी मनमानी की। हमारा पासपोर्ट होटल-मैनेजर के पास था। वहाँ से पासपोर्ट लेकर यह महाशय वीसा-विभाग में गये। हमारे वीसा में रद्दोबदल करके हमें पासपोर्ट दिया गया। साथ ही अगले दिन के विमान के लिए मास्को से वारसा तक के दो टिकट भी दिये गये। हमारे आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा। हमने कहा कि “आप हमारी इजाजत के बिना ऐसा परिवर्तन करें, यह मुनासिब नहीं। हम यह विमान-टिकट स्वीकार नहीं कर सकते। हम पैदल और केवल पैदल ही जायेंगे।” इस पर हमारे सामने वही पुराना तर्क उपस्थित किया गया : “इस समय भयंकर सर्दी है। आप इस सर्दी

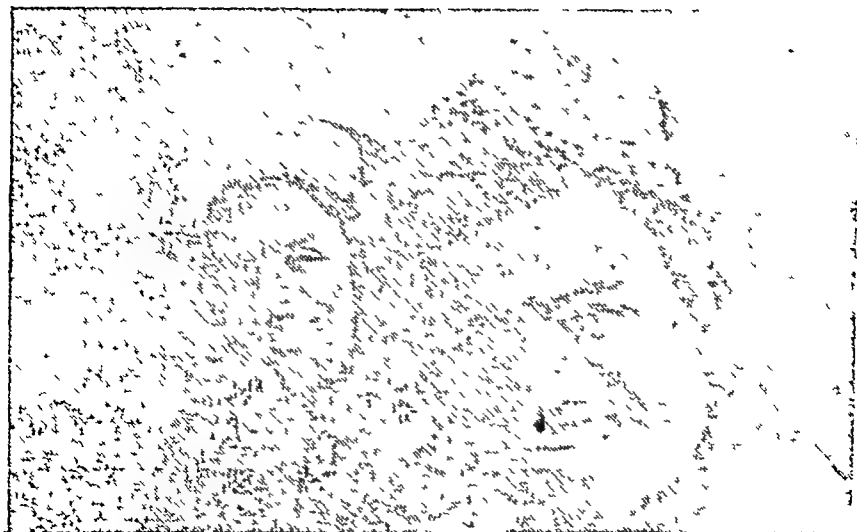
के अभ्यस्त नहीं हैं। तापमान शून्य से भी नीचे है। तीन-चार फुट वर्षा मैदानों में पड़ी है। ऐसे समय आपके स्वास्थ्य को खतरे में डालने की राय हम कभी नहीं दे सकते।” इस उत्तर के बाद हम खुद वीसा-विभाग में गये। वीसा अधिकारी से जब हम मिले, तो उसने कहा कि “हमें तो शान्ति-परिषद् से एक पत्र मिला है कि आप मास्को से विमान द्वारा जा रहे हैं। इसलिए हमने आपके वीसा में परिवर्तन किया। यदि आप फिर से वीसा को यथावत् कराना चाहते हैं, तो शान्ति-परिषद् की माफ़त एक पत्र लिखवाइये। आसानी से पुनः परिवर्तन कर दिया जायगा।” बात तो ठीक थी। लेकिन शान्ति-परिषद् के ये महाशय, जो हमारे वीसा की कार्रवाई कर रहे थे, इस निर्णय पर दृढ़ थे कि मास्को से पदयात्रा पर निकलना व्यर्थ है। आखिर हमने शान्ति-परिषद् को पत्र लिखा: “चूँकि हम सोवियत-संघ में निःशस्त्रीकरण की माँग को लेकर पदयात्रा कर रहे हैं और अभी तक हमारा उद्देश्य सिद्ध नहीं हुआ है, इसलिए हम अपनी पदयात्रा बन्द नहीं कर सकते। हमारे पास तेहरानस्थित सोवियत दूतावास द्वारा दिया हुआ चार माह का अनुमति-पत्र है। बीच में जो नया परिवर्तन अनुमति-पत्र में किया गया है, उसकी पूरी जिम्मेदारी शान्ति-परिषद् की है। हम अपनी यात्रा पर यथावत् निकल रहे हैं।”

१४ फरवरी ६३ की सन्ध्या को हम कभी भूल नहीं सकते। हमारे मस्तिष्क में एक ज्वरदस्त सघर्ष चल रहा था। हमने अपने कपड़ों की गठरी पीठ पर लादी और होटल से चल पड़े अपने लम्बे मार्ग पर। समूचे मास्को नगर में नीचे सफेद वर्षा की चादर बिछी थी। ऊपर काली रात्रि का पर्दा पड़ा था और इस काले-सफेद के बीच चमचमाते हुए बिजली के बल्व हमें रास्ता दिखा रहे थे। बस-स्टेशन पर काम करने-वाली महिला के मटह से हमने पहली रात—यूरोप के सबसे बड़े होटल, ‘होटल उक्राईना’ में मास्को में ही बितायी। छुट्टियों से नीचे तक लटकते हुए मोटे, काले, फरदार ओवरकोट और भारी भरकम टोप पहने हुए तसी सिपाही कहीं-कहीं दिखाई पड़ते। तो हमारे मन में मन्देह होता कि



इनमें से कोई-न-कोई सिपाही हमारा पासपोर्ट देखेगा, वीसा न होने से हम गिरफ्तार किये जायेंगे। पर वे हमें नमस्कार करते, किसी मदद की जरूरत हो तो पूछते, हमें रास्ता बताते, कभी-कभी ठहरने का भी प्रबन्ध करते। हम रूसी भाषा में उनसे बातें करते। एक दिन बीता, एक सप्ताह बीता, एक महीना बीता, हमें कोई परेशानी नहीं हुई। नगर-पालिकाओं के अध्यक्ष, सामूहिक कृषि-फार्मों के संचालक, खानों या कारखानों में काम करनेवाले श्रमिक हमें अपना अतिथि बनाते। शान्ति-परिषद् ने भी समझ लिया कि गांधी के देश के ये लोग ऐसे कानूनों को स्वीकार नहीं करते, जो कानून उनकी आत्मा की आवाज को सुनने में बाधक बनते हो। हमारा सविनय कानून-भंग पूरी तरह सफल रहा।

४५ दिन की यात्रा के बाद जब हम पोलैण्ड की सीमा पर पहुँचे, तो सीमा के रूसी कमाण्डर ने हमारा पासपोर्ट देखकर कहा : “आपका वीसा तो डेढ़ महीने पहले ही समाप्त हो चुका। अब तक कहाँ थे आप? कैसे इतने दिन बिना वीसा के रहे?” हमने संक्षेप में कहानी बतायी। सैनिक कमाण्डर ने कहा : “यह सफाई पर्याप्त नहीं है।” और उसने कही से टेलीफोन पर बात की। फोन पर बात करते ही कमाण्डर ने कहा : “सब कुछ ठीक है। आइये, कुछ नाश्ता करें, चाय पिये। आप अपनी यात्रा की कहानी सुनाइये। यह आपका अन्तिम दिन है हमारे देश में।” और उसके बाद खुद कमाण्डर हमारे साथ सीमा तक आये और ‘अवैधानिक’ यात्रियों को बिठा दिया। डेढ़ महीने की हमारी यह यात्रा हमारे लिए बड़ी फलदायी हुई। हमारे साथ कोई तीसरा आदमी नहीं था। हम अधिक निकटता से रूसी जीवन के अनुभव पा सके। हम नहीं जानते कि रूसी सरकार ने हम ‘अवैधानिक’ यात्रियों को गिरफ्तार क्यों नहीं किया? अथवा हमारे वीसा की अवधि क्यों नहीं बढ़ा दी? यह घटना दिल्ली से वाशिंगटन तक की हमारी यात्रा में अकेली और अद्भुत है। गायद सरकार ने सोचा होगा कि जाति के प्रचारकों को ‘मिशन’ ही सबसे बड़ा वीसा है।



आरमेनिया की टोपी पहनकर हम आरमेनियन बन गये

पति ने मेहमान बनाया, पत्नी ने घर से निकाल दिया



‘क्या सोने की लका में गरीब नहीं बसते ?’ ऐसी कहावत है। इस कहावत का अनुभव हुआ हमें अतिथि-परायण सोवियत संघ के एक छोटे-से गाँव स्लावादा में। यह गाँव मिस्क से १५ मील पूर्व की तरफ सड़क के किनारे पर है। अप्रैल का महीना बड़ा विचित्र होता है रूस में। कमर तोड़ देनेवाला भयानक जाड़ा बिदा लेता है और मुहावनी गरमी का मौसम आता है। रूसी लोग गरमी के मौसम की प्रतीक्षा उसी वेतावी के साथ करते हैं, जिस वेतावी के साथ हम भारतीय, वेचन कर देनेवाली उमसभरी गर्मियों के बाढ़ वर्षा की बहार का इन्तजार करते हैं। रूस में अप्रैल का महीना कीचड़-पानी का महीना होता है। ऐसे अप्रैल महीने में स्लावादा जैसा छोटा-सा देहान हमारे लिए एक संस्मरणीय देहात बन गया।

१४ अप्रैल का दिन रूसी लोगो के लिए प्राचीन परम्परा के अनुसार एक त्यौहार का दिन है। वैसे ही रूसी लोग खाने-पीने में बहुत बड़े-चढ़े होते हैं, फिर त्यौहार के दिन तो कहना ही क्या। प्रसिद्ध रूसी वोदका की वोतले जब खुलनी शुरू होती हैं, तो उनकी गिनती करना मुश्किल हो जाता है। और तो और, स्त्रियाँ भी मदिरा तथा वोदका पीने में पुरुषों का साथ देती हैं। स्लावादा के लोग त्यौहार की रंगरेलियों में व्यस्त थे कि शाम के वक्त दो भारतीय शान्ति-पदयात्री 'मी जा मिर' ( हम शान्ति के लिए ) का ध्वज लिये, पीठ पर बोझ लादे उनके गाँव में पहुँच गये। गाँव में दो नये लोग, वे भी बहुत दूर देश के। हवा के साथ हमारे पहुँचने की सूचना गाँवभर में फैल गयी। देखते-देखते पचासों बालक हमारे साथ हो लिये। अच्छा खासा जुल्स बन गया। हमने नारा लगाया : 'मी जा मिर'। बच्चों के कण्ठ आसमान में गूँज गये। स्त्रियाँ घरों के दरवाजे पर पहुँचकर हमें देखने लगी। सबको आश्चर्य। इस छोटे-से गाँव में पहली बार कोई भारतीय पहुँचा था। हमें सब लोग 'ग्राम क्लब' में ले गये। वहाँ एक हिन्दी फिल्म चल रही थी। कैसे आश्चर्य की बात। मुश्किल से १०० घरों की बस्ती का गाँव, पर वहाँ चल रही थी एक हिन्दी फिल्म। हिन्दी सिनेमा, रूसी अनुवाद के साथ, सोवियत-संघ में बहुत लोकप्रिय है। नरगिस और राजकपूर का नाम गाँव-गाँव में प्रसिद्ध है। हमने अपनी सोवियत-यात्रा के दौरान आठ-दस हिन्दी फिल्म देखे। 'आवारा' तथा 'श्री ४२०' के गीतों के रिकार्ड तो पचासों बार हमें सुनने को मिले। "नरगिस अपने माथे पर बिन्दी क्यों लगाती है?" यह सवाल हमसे सैकड़ों बार पूछा गया। 'आवारा हूँ' गीत का रूसी अनुवाद सुनकर तो हम अचम्भे में पड़ गये। 'ब्राजारा या' यह उसका पहला पद है। वही राग, वही धुन, हिन्दी का ठीक रूसी अनुवाद।

ऐसा कार्यक्रम चला कि रात के नौ बज गये। उसके बाद एक किसान के घर पर हम ठहर गये। किमान की पत्नी घर पर नहीं थी।

किसान ने बड़ी तत्परता के साथ स्वयं हमारे लिए मेज पर भोजन लगाया। पलंग पर विस्तर बिछाया।

“आप पैदल चलकर आये हैं। थके हैं। भोजन कीजिये और विश्राम कीजिये।”—किसान ने कहा। उसका रोम-रोम पुलकित था। इस गाँव में वही इतना भाग्यशाली है कि और किसीके घर में नहीं, बल्कि उसके घर में परदेश के अतिथि आकर ठहरे हैं।

“मेरे घर में २-३ माह का बच्चा है। उसका रोना आपके आराम में बाधक तो नहीं बनेगा?” किसान के मन में हमारे आराम की बड़ी चिन्ता थी।

इतने में किसान-पत्नी भी आ गयी। परिचय हुआ। किसान ने रसोई-घर में जाकर अपनी पत्नी को बताया कि आज रात के लिए ये दो भारतीय यात्री हमारे घर पर मेहमान होंगे। यह बात पत्नी को गवारा नहीं हुई। हम उनकी बातचीत सुन रहे थे।

“जिसे भी चाहो, गली चलते हुए को मेहमान बना लिया करो। यह घर है, सराय नहीं।” उसने इस तरह हमें ठहराने से साफ इनकार कर दिया।

पति ने बहुत प्रेम और नम्रता से सब समझाया कि “घर आये अतिथि को बाहर निकालना अच्छा नहीं।” पर पत्नी कुछ भी मानने और सुनने को तैयार नहीं थी। हमें भी कुछ ताज्जुब हुआ, क्योंकि पूरे सोवियत-संघ में हमें उत्कृष्ट आतिथ्य के दर्शन हुए थे। फिर महिलाएँ तो पुरुषों से अधिक अतिथि-परायण और कोमल-हृदया होती हैं। हमने देखा कि बातचीत अगड़े का रूप ले रही है। समस्या उलझती ही जा रही है।

“मेहमान यहीं रहेंगे।”—पति ने चुनौती दी और वे हमारे पास बैठकर बातचीत करने लगे। इस पर तो पत्नी का क्रोध और भी उमड़ पड़ा।

“आप चिन्ता न करें”—मैंने कहा । “हम किसी दूसरे घर जाकर ठहर जायेंगे ।”

“नहीं ! नहीं !” पति ने हमें वहीं रुकने का आग्रह किया ।

पत्नी को शायद लगा कि यह उसका अपमान है । ‘नारीणा रोदन बलम् !’ भारत की स्त्रियाँ ही नहीं, रूस की गृहिणियाँ भी अपने क्रोध, दुःख और असन्तोष को प्रकट करने के लिए रोने का सहारा लेती हैं । मेरी माताजी कहा करती थी कि रोना तो स्त्री के पल्ले बँधा होता है । मैथिलीशरण गुप्त ने “ऑंचल मे है दूध और ऑखो मे पानी ।” कहकर नारी के साथ ऑख को एक ही धागे में पिरोया है । हमारा मन विचलित हो उठा ।

इतने में किसान-पत्नी ने जोर से रोते हुए कहा : “या तो इस घर में मैं रहूँगी या तुम्हारे मेहमान ।”

पत्नी की चुनौती के सामने पति ने घुटने नहीं टेके : “जाओ, तुम्हें जहाँ भी जाना हो ।” पत्नी ने चुनौती स्वीकार कर ली । हमारे देखते-देखते पत्नी ने छोटे शिशु को अपनी गोद में उठाया और निकल पड़ी घर से बाहर ।

“हम शान्ति की बात करने आये और गृह-कलह पैदा कर दिया ।” मैंने कहा प्रभाकर से ।

प्रभाकर ने किसान को समझाया : “घरवाली को नाराज करके घर में रहने की अपेक्षा यही अच्छा होगा कि हम किसी दूसरे घर में जाकर ठहरे ।”

पर किसान ने कहा : “आप रात को १० बजे कहाँ जायेंगे ? गलियाँ कीचड़ से भरी हैं । अन्धेरी रात है । किसका द्वार जाकर खटखटायेंगे आप ?” फिर थोड़ी देर सोचकर किसान बोला . “अच्छा, मैं अपने पड़ोसी मित्र के घर पृच्छता हूँ ।” और किसान चला गया । आधे घण्टे में किसान ने हमारे ठहरने के लिए अपने मित्र के घर में प्रवन्ध कर दिया । सचमुच उस अन्धेरी रात में हम बड़ी मुश्किल में

गलियों पार कर सके। एक-दूसरे का हाथ पकड़कर अन्धेरे में रास्ता ढूँढा। ऊपर तक जूते और कपड़े कीचड़ से लथपथ हो गये। किसान बार-बार क्षमा माँग रहा था और अपनी पत्नी को कोस रहा था।

हम पहुँचे उसके मित्र के घर पर। पति, पत्नी और दो बच्चे। सब सो चुके थे। चार पलंगों पर चारों सो रहे थे। किसान के मित्र ने अपने दोनों बच्चों को जगाया और उन्हें एक पलंग पर सुला दिया। मैं और प्रभाकर एक पलंग पर सोये। १० मिनट के अन्दर सारी समस्या हल हो गयी। दूसरे दिन सुबह उठे। हमारे इस नये मेजबान के घर दो बड़ियाँ गाये थीं। रूस में इतनी भयंकर सर्दियाँ होती हैं, फिर भी रूसी लोग दूध ठण्डा ही पीते हैं। पर हमारी रुचि पूछकर उन्होंने दूध गर्म किया। रागू (कई तरह की सब्जियों से बना हुआ रूसी व्यञ्जन) पकाकर उन्होंने अपने शाकाहारी अतिथियों को खास रूसी नाश्ता कराया। हमने बेहद प्यार और अपनत्व पाया। गृहिणी बोली “आज तो यही रहिये, इतना लम्बा सफर किया है, एक दिन विश्राम सही।” कितना स्नेह था उसकी वाणी में। पिछली रात के किसान-पत्नी के व्यवहार मात्र से हम रूसी लोगों का आतिथ्य नहीं जाँच सकते। चार महीने का लम्बा समय हमने रूस में बिताया। ऐसी घटना केवल एक ही दिन घटी। वरना, प्रतिदिन उत्कृष्ट आतिथ्य के दर्शन हमें होते थे। एक ही घर में मानव-स्वभाव कितना भिन्न हो सकता है, यह हमें देखने को मिला। साथ ही यह भी हमें मानना चाहिए कि समाज में अच्छाइयाँ ज्यादा हैं, बुराइयाँ कम। चार महीने में, १२० दिन हमें अच्छे-से-अच्छा व्यवहार करनेवाले लोग मिले। केवल एक ही दिन ऐसी छोटी-सी अरुचिकर घटना घटी।

साथी या पिता



हमारे बगल में धीरे से एक जीप आकर रुकी। हम चलते-चलते नक गये। ठण्डी हवा चल रही थी। ऐसी सर्दियों में हमसे मिलने कौन

आया होगा ? फिर, हमारे लिए यह सर्वथा अपरिचित देश । हमारे मन में उत्सुकता थी । इतने में जीप से एक ऊँचे कट का व्यक्ति निकल । लम्बा और काले रंग का ओवरकोट । हाथों में चमड़े के मोजे तथा सिर पर टोप । सारा शरीर कपड़ों से ढँका था । टोप से लेकर जूतों तक पूरा परिधान काले रंग का था । इस परिधान में से बड़ी-बड़ी आँखें, लम्बी नाक, ऊँचा ललाट और गोरा चेहरा आगन्तुक के व्यक्तित्व की झलक दे रहा था । हमारे मन में आगन्तुक के प्रति आकर्षण पैदा हुआ । जीप से उतरते ही आगन्तुक मुस्कुराया ।

“आपकी यात्रा कैसी चल रही है ?” आगन्तुक ने बड़ी आत्मीयता से पूछा ।

“बहुत अच्छी तरह ।”

“थक तो नहीं गये ?”

“बिल्कुल नहीं ।” हमने आगन्तुक को निश्चिन्त किया ।

“भूख लगी है ?”

“नहीं, नहीं ।”

“यह कैसे हो सकता है । आपने सुबह आठ बजे हल्का-सा नाश्ता किया । उसके बाद इतनी दूर चल भी लिये । भूख जरूर लगी होगी ।” कहते हुए उन्होंने ड्राइवर की तरफ कुछ इशारा किया । ड्राइवर ने एक छोटी-सी पेटी बाहर निकाली । पास ही एक पुल पर उसे खोला । पेटी में मदिरा की बोतलें, मास-मछली, दूध, मक्खन, पनीर, रोटी, फल, किसमिस, बादाम, चाकलेट आदि सामान भरा था । यह सामान हमारे दोपहर के भोजन के लिए लाया गया था ।

“आपको कुछ तो खाना ही होगा ।”—आगन्तुक ने कहा ।

“लेकिन हम मछली नहीं खाते, मास नहीं खाते, मदिरा भी नहीं पीते ।”

“ऐसा क्यों ? क्या मास और मछली के बिना भी कोई भोजन हो सकता है ?”

“लेकिन हमने तो आज तक कभी नहीं खाया । हमारा काम अच्छी तरह चलता है ।”

“इतनी लम्बी यात्रा, प्रतिदिन पैदल चलना । भोजन तो पौष्टिक करना ही चाहिए ।”

“लेकिन दूध, अन्न और फलों से हमें पर्याप्त पुष्टता मिल जाती है ।”

“फिर भी क्या कारण है ? मांस क्यों नहीं खाते ?”

“हम अहिंसावादी हैं । अन्य प्राणियों को मारकर खाना हम ठीक नहीं मानते ।”

“ओह, मैं समझ गया । हमारे टालस्टाय ने भी मांसाहार छोड़ दिया था । वे अहिंसावादी बन गये थे । पर मदिरा में तो किसीकी हिंसा नहीं की जाती ?” आगन्तुक का अगला प्रश्न था । “मदिरा एक नशा है । वह शरीर के लिए आवश्यक नहीं । खास तौर से भारत की सामाजिक, प्राकृतिक और आर्थिक व्यवस्था में वह अनावश्यक है ।”

“पर हमारे यहाँ ऐसा आदमी हूँढने से भी शायद ही मिले, जो मदिरा न पीता हो । हम लोग अतिथि के आगमन पर मदिरा पीना और पिलाना अपना आनन्दप्रद कर्तव्य मानते हैं । यह हमारी आतिथ्य-परम्परा है ।” आगन्तुक ने हमसे मदिरा पीने का आग्रह किया ।

“पर हम जानते हैं कि आप लोग अतिथि की भावनाओं का भी आदर करते हैं, और यदि किसी सैद्धांतिक कारण से कुछ बातों में वह आपका साथ न दे, तो आप क्षमा भी कर देते हैं ।”

“सो तो है । हम उदार हैं ।” और आगन्तुक ने हमें क्षमा किया । फिर हमने दूध पिया और आगन्तुक ने भारत-सोवियत के नाम पर, शान्ति के नाम पर और हमारे स्वास्थ्य की कामना करते हुए मदिरा का प्याला खाली कर दिया । सर्दी काफी थी । हमने खड़े-खड़े ही थोड़ा-बहुत खा लिया । आगन्तुक ने वादाम और किसमिस हमारी जेब में भरते हुए कहा : “ये रास्ते के लिए हैं ।” वे फिर आगे बढ़ गये—हमारे पण्डित जी व्यवस्था करने के लिए ।



ये आगन्तुक थे श्री मामीकोनियान गुरग्यान ! शान्ति-परिषद् के एक सदस्य । हमारी पदयात्रा की व्यवस्था के लिए शान्ति-परिषद् ने इन्हे हमारा साथी बनाया था । पहली ही मुलाकात में ये हमारे ऐसे मित्र बन गये कि उन्हें हम कभी नहीं भूल सकेंगे । हमारी यात्रा का उद्देश्य जिन लोगो ने ठीक-ठीक समझ लिया, उनमें से एक थे श्री गुरग्यान । हमारी शान्तियात्रा जन-सपर्क की दृष्टि से बहुत सफल यात्रा रही और इस सफलता का बहुत बड़ा श्रेय श्री गुरग्यान को है । हमारे पड़ाव पर पहुँचने से पहले ही न केवल उस गाँव में, बल्कि आसपास के अनेक गाँवों में हमारे आने की सूचना वे पहुँचा देते थे । हम जब अपने पड़ाव पर पहुँचते, तो सैकड़ों-हजारों लोगो की भीड़ हमें घेर लेती । हम अपनी यात्रा का उद्देश्य समझाते हुए आणविक अस्त्रों के विरुद्ध आवाज उठाने के लिए जनता का आह्वान करते । श्री गुरग्यान लोक-भाषा में हमारी बात का अनुवाद करके हमारा मिशन उन तक पहुँचाते । श्री गुरग्यान कहते कि “आपका पैदल चलने का उद्देश्य है, अधिक-से-अधिक जनता तक शान्ति-सन्देश पहुँचाना । इसलिए हमारा यह कर्तव्य है कि अधिक-से-अधिक लोगो तक हम आपकी यात्रा की सूचना पहुँचाये ।” फिर वे हमें किसी दिन कलेक्टिव फार्म, किसी दिन गोशाला, किसी दिन स्कूल, किसी दिन कारखाना, किसी दिन कोई सार्वजनिक संस्था दिखाने के लिए ले जाते ।

श्री गुरग्यान हमारी यात्रा की सुविधा और हमारे स्वास्थ्य के लिए सदैव चिन्ता करते रहते । पड़ाव की दूरी ज्यादा न हो, पड़ाव पर पहुँचते ही गरम पानी की व्यवस्था हो, हमें आराम के लिए पूरा समय मिले, हमारे लिए आकाशवाणी भोजन की ठीक व्यवस्था हो, इत्यादि बातों की तरफ वे उसी तरह ध्यान रखते, जैसे एक पिता पुत्र के लिए रखता है । उन्होंने कहा भी कि “जब तक मैं आपके साथ हूँ, आप मेरे पुत्र हैं और जो कुछ मैं कहूँ, वह खाना होगा ।” बहुत इनकार करने पर भी वे हमारे लिए दोपहर का भोजन लेकर आते और रास्ते में हमें खाना ही पड़ता । श्री गुरग्यान आरमीनिया रिपब्लिक की यात्रा में हमारे साथ रहे ।

एक दिन श्री गुरुग्यान से बिछुड़ने का समय आया। वह दिन श्री गुरुग्यान के लिए भी और हमारे लिए भी बहुत कठिन था। श्री गुरुग्यान की आँखें गद्गद थीं। उनका मन भरा था। वे बार-बार हमारे सिर चूमते, हमें बाँहों में भरते। वे हमसे किसी तरह अलग नहीं हो पा रहे थे। सड़क पर बीसों लोग खड़े होकर हमारी जुदाई का दृश्य देखने लगे। थोड़ी दूर जाते और फिर हमसे विदा माँगने चले आते। बगल में नदी बह रही थी। ऊपर सूरज चमक रहा था। श्री गुरुग्यान नदी के पुल पर ही खड़े रहे और हम पीछे मुड़-मुड़कर अपना हाथ हिलाते हुए उनसे विदाई माँगते हुए आगे बढ़ गये। सचमुच श्री मामीकोनियान गुरुग्यान हमारे साथी भी थे और पिता भी।

एक साहसी युवती।



ऊँची-नीची पहाड़ियों के आरोह-अवरोहों पर बसा हुआ नगर दिलीजान। युवकों की एक बड़ी सभा में हमने कहा : “अब तक युवक-शक्ति के बल पर युद्ध खेले गये। पर अब युवक-शक्ति शान्ति-स्थापना और युद्ध-निवारण में लगनी चाहिए। हम दो युवक भारत से निकल पड़े हैं—युद्ध के विरोध में। सोवियत-संघ से भी एक युवक-प्रतिनिधि हमारे साथ अमेरिका तक चले, ऐसा हम चाहते हैं। क्या कोई हमारी युद्ध-विरोधी पदयात्रा में आने के लिए तैयार है?” सारी सभा में चुप्पी! ऐसे अचानक प्रश्न की अपेक्षा किसीने नहीं की थी। इतने में सभा की चुप्पी भंग करते हुए एक युवती ने खड़े होकर कहा : “मैं तैयार हूँ।” उपस्थित युवकों की आँखें इस साहसी युवती की ओर घूम गयीं। कटे हुए घुँघराटे वाला, काले रंग के स्कर्ट और जाकेट से झॉकता हुआ छरहरा बदन, काली-काली नुकीली आँखोंवाला मुस्कराता हुआ चेहरा। कौन है यह? पर वह अटल खड़ी थी—अपना हाथ ऊँचा किये। वह न तो झिझक रही थी और न परेशान हो रही थी। उसका नाम था—

आइरापेत्यान जारजेता । अपनी वृद्ध माँ के लिए २० वर्ष की इकलौती पुत्री ।

सभा के बाद जारजेता दो-तीन घण्टे हमारे साथ रही । दृढतापूर्वक उसने साथ चलने का आग्रह किया । दूसरे दिन सबेरे तैयार होकर वह हमारे पास पहुँच गयी । हम आश्चर्य कर रहे थे उसके आत्म-बल पर ।

“अमेरिका तक पैदल चलोगी ? इतना पैदल चल सकोगी ?”

“क्यों नहीं ? अवश्य चल सकूँगी ।”—जारजेता ने निर्भीक उत्तर दिया ।

“कभी-कभी २०-२५ मील तक कोई गाँव नहीं आयेगा ।” हमने डराया ।

“तो क्या हुआ ? जितना आप चल सकते हैं, उतना मैं भी चल सकती हूँ ।”

“हम साथ में पैसा नहीं रखते । कभी एक-दो दिन खाना नहीं मिला तो ? भूखी रह लोगी ?”

“यदि चलने से, भूख से और परेशानियों से ही डर होता, तो मैं अभी आपके पास आती क्यों ?”

“हमें कभी कोई सरकार जेल में भी बन्द कर सकती है ।”

“कोई भी सरकार शान्तिवादियों के साथ ऐसा व्यवहार क्यों करेगी ?” जारजेता ने पूछा ।

“क्योंकि हम सरकार की युद्ध-नीति के खिलाफ आन्दोलन और प्रदर्शन करते हैं ।”

“कोई बात नहीं । यदि अच्छा काम करते हुए भी सरकार हमें जेल में बन्द करती है तो उसके लिए भी तैयार हूँ । दुनिया में चलनेवाले शान्ति-आन्दोलन में अपना छोटा-सा हिस्सा देने के लिए मैं आपके साथ आना चाहती हूँ । आपके साथ गाँव-गाँव में पैदल यात्रा करूँगी

और लोगो को युद्ध के विरोध में आन्दोलन करने के लिए प्रेरित करूँगी ।” इस तरह जारजेता ने बहुत कुछ कहा ।

“लेकिन आपकी माँ वृद्ध है । उनको सँभालनेवाला दूसरा कोई नहीं । क्या उनकी आज्ञा है ?”

“जारजेता की माँ की आज्ञा तो नहीं है ।” जारजेता को चुप देख-कर उसके एक मित्र ने बताया ।

“ऐसी दशा में आपकी माँ क्या सोचेगी और पीछे उनकी क्या दशा होगी ?”—हमने कहा । इस पर जारजेता चुप रही । सचमुच उसके उत्साह के सामने यह बहुत बड़ी कठिनाई थी । वह एक औषधालय में काम करती है, कमाती है और माँ की पूरी जिम्मेदारी उसी पर है । लेकिन उसकी आत्म-प्रेरणा हमारे साथ चलने के लिए खींच रही थी । प्रेरणा और जिम्मेदारी के बीच संघर्ष था । बहुत सोचने के बाद हमें यह लगा कि जारजेता का हमारे साथ न चलना ही ज्यादा उपयुक्त होगा । हमने कहा : “केवल पदयात्रा में शामिल होना ही शान्ति-आन्दोलन नहीं है । आप और भी अनेक तरह से इसमें मदद कर सकती हैं । आप पहले यहीं पर कुछ शान्तिवादियों का सगठन तैयार कीजिये । अपने आसपास के क्षेत्र में कुछ काम कीजिये ।” इस तरह हमने उसे बहुत-कुछ समझाया, पर इससे उसे सन्तोष नहीं हुआ । वह बहुत निराश हो गयी ।

उस दिन वह हमारे साथ अगले पड़ाव तक पैदल आयी । आज दुनियाभर में जो शान्ति-आन्दोलन चल रहे हैं, उसके बारे में जानकारी लेती रही ।

भारत छोड़ने के बाद आइरापेत्यान जारजेता पहली युवती थी, जिसने इतनी तीव्रता से हमारे साथ चलने की उत्कण्ठा व्यक्त की और जिसे शान्ति-आन्दोलन में इतनी अभिरुचि थी । आठ मील की उसकी पदयात्रा के बाद हमें यह विश्वास हो गया कि वह हमारे साथ आगे भी चल सकेगी । काश, उसके घर की परिस्थितियों ने माथ दिया होता !

## एक रूसी गाँव में



मार्च महीने की एक संध्या ! साइबेरिया की ओर से आनेवाली तेज हवा के साथ बर्फ के कण हमारे चेहरे शीतल कर रहे थे । आकाश से बर्फ की वर्षा हो रही थी । हमारी टोपी पर बर्फ की तहे जम गयी थी । पीठ पर का थैला बर्फ से सफेद हो रहा था । नीले ओवरकोट पर सफेद बर्फ की धारियाँ बहुत सुन्दर दीख रही थी । हाथों को बर्फ से बचाने के लिए हमने 'फर'वाले चमड़े के मोजे पहन रखे थे । सर्दियों से बचाने के लिए हमने सारे शरीर पर मोटे और गरम कपड़े लाद रखे थे । परन्तु होठ, गाल और नाक ? इन्हें कैसे बचाये ? पर हम चलते जा रहे थे । हम ऐसे यात्री थे, जिन्हें यह मालूम नहीं कि आज पडाव कहाँ होगा ? कितनी दूर चलना होगा ? एक अनिश्चित लक्ष्य की ओर हम बढ़ते जा रहे थे ।

'पश्चिमी रूस का एक गाँव ! हम इस गाँव के पास पहुँचे । १३ मील इस भयानक सर्दियों में लगातार चलने के बाद हम कितने थक गये थे, यह बताना व्यर्थ है । पर सारा गाँव सफेद बर्फ में लिपटकर सोया था । बर्फ से ढँकी हुई झोपड़ियाँ चुपचाप खड़ी थी । ३०-३५ घरो का यह गाँव ऐसा लगता था, मानो यहाँ कोई नहीं बसता । कुछ पूछताछ करनी चाहिए । पर किससे पूछे ? बिना किसीसे पूछे कैसे किसीके घर पर पहुँच जायें । आज की रात ठहरना इसी गाँव में है । आगे कितनी दूरी पर कोई गाँव है, पता नहीं । इस तरह सोचते हुए हम सड़क पर खड़े थे कि बहुत दूर से एक काली छायाकृति आती हुई दिखाई दी । हमें कुछ दाढ़स वैधा । छायाकृति हमारी ही तरफ बढ़ रही थी । वह एक स्त्री थी । उसे बर्फ पर तेज हवा में चलते हुए कठिनाई हो रही है और उसके पैर कभी-कभी बर्फ में धँस जाते हैं, ऐसा हमें स्पष्ट आभास हो रहा था ।

“यह कौन-सा गाँव है ?” स्त्री के निकट आने पर हमने पूछा ।

“आरत्योमकी । आपको क्या चाहिए ?” स्त्री ने सिर से पैर तक हमे गौर से निहारते हुए पूछा ।

“हम यात्री है और आज की रात यहाँ ठहरना चाहते है ।” हमने बिना किसी भूमिका के सीधे कहा ।

“अच्छा, मेरे साथ चलिये ।” स्त्री जिस रास्ते आयी थी, उसी रास्ते लौट पड़ी । उसने हमे अपने पीछे-पीछे आने के लिए इशारा किया । हम चकित हुए इस स्त्री पर । इस भयकर सर्दों मे वह घर से बाहर कहीं जा रही थी, तो अवश्य ही किसी जरूरी काम से जा रही होगी । पर अपने काम को छोडकर वह तुरन्त हमारी मार्गदर्शिका बन गयी । हम कौन है, कहाँ से आये है, क्यों यहाँ ठहरना चाहते है इत्यादि कुछ भी उसने नहीं पूछा । वह हमे अपने भाई के घर ले गयी । भाई उस समय घर पर नहीं था । उसने अपनी भाभी को धीरे से कुछ कहा और घर के अन्दर हमे ठहरा दिया ।

“आप विदेशी है ? रूसी भाषा जानते है ?” हमे सोफे पर बैठने को कहते हुए स्त्री ने पूछा ।

“थोडी-थोडी जानते है ।”

“यह अच्छा है । किस देश से आये है आप ?”

“भारत से ।”

“ओह ! बहुत दूर से आये है । कितने दिन में यहाँ पहुँचे ?”

“दस महीने मे ।” हमने बताया ।

“ओय . ओय . ओय . दस महीने ।”

“कितने किलोमीटर पैदल चले ?” स्त्री की भाभी ने पूछा ।

“लगभग छह हजार किलोमीटर ।”

“लेकिन पैदल क्यों चलते है ?” स्त्री ने पूछा ।

“हमारी यात्रा युद्ध के विरोध की प्रतीक है । हम गाँव-गाँव में अणु-अस्त्रों के खिलाफ प्रचार करते है । मान लीजिये, यदि हम विमान में आते. तो क्या आज इस गाँव में पहुँचते ? गाँव-गाँव तक पहुँचने के लिए

पदयात्रा ही ठीक है।” इस प्रकार हमारी बातचीत चलती रही। इसी बीच स्त्री के भाई भी आ गये। वे बड़े प्रसन्न हुए अपने घर में विदेशी मेहमानों को पाकर।

“पहले यह बताइये कि आप खायेगे क्या” स्त्री के भाई फीमोनोव वसीलोव ने पूछा।

“धन्यवाद ! आप जो भी खिलायेगे, हम खायेगे। सिवा मास के।”

“क्यों ? मास क्यों नहीं ? आप देख रहे हैं कि हमारे यहाँ की धरती बर्फ से ढँकी है। यहाँ न फल है, न सब्जी है और न तरकारियाँ हैं। हम मास न खाये तो काम ही न चले।” वसीली ने कहा।

“हम शाकाहारी हैं।” यह समझाने पर उन्होंने कहा : “आल् उबले हुए तैयार हैं। गाय हमारे घर पर है। इसलिए दूध, मक्खन पर्याप्त है।” और उन्होंने ऊँचे कानों का एक बड़ा-सा मिट्टी का बर्तन कच्चे दूध से भरकर हमारे सामने रख दिया। रोटी पर मक्खन लगाकर आल् और दूध के साथ हमने तृप्त होकर भोजन किया। इसी बीच श्री वसीली की बहन ने हमारे आने की खबर गाँवभर में फैला दी। गाँवभर के स्त्री-पुरुष और बच्चे जमा होने लगे। यह पहला ही अवसर था कि आरत्योमकी गाँव में कोई विदेशी आकर ठहरा था। “भारत में क्या-क्या पैदा होता है ? भारत के सभी बच्चे स्कूल जाते हैं क्या ? स्कूल में फीस लगती है क्या ? चिकित्सा मुफ्त होती है या नहीं ? बूढ़ों को पेनशन मिलती है क्या ?” इत्यादि तरह-तरह के सवाल रात के ११ बजे तक पूछे जाते रहे। लाल और सफेद रंग के रूसी लोगो को हमारा अपेक्षाकृत काला रंग बहुत पसन्द आ रहा था। सब लोग हमारी खूब-सूरती की तारीफ कर रहे थे। कितनी ही तरुण लड़कियाँ हमारे सौन्दर्य को निहारने के लिए ही आयी थीं। बाहर कितनी भी सर्द हो, कमरे के अन्दर ३-४ फुट चौड़ी और ६-७ फुट ऊँची बुखारी जल रही थी, इसलिए कमरा पर्याप्त गरम था। श्री वसीली एक साधारण किसान हैं, पर उनके घर में ३-४ दैनिक, मासिक पत्र-पत्रिकाएँ आती हैं। एक कोने

में रेडियो है। टेलीविजन है। दूसरे कोने में दो पलंग बिछे हैं। तीसरी तरफ सोफा रखा है और कमरे के बीच में गोल टेबल के चारों तरफ कुर्सियाँ पड़ी हैं। एक बड़ा-सा यह हॉल ही पूरा घर है। घर के प्रवेश-द्वार पर ही छोटा-सा रसोई-घर है। पत्नी है, जो स्कूल में अध्यापिका है। दो बच्चे हैं, जो स्कूल में पढ़ते हैं।

रात को जब सभा विसर्जित हुई, तो श्री वसीली ने कहा : “युद्ध के समय मैं एक सैनिक था। मेरा एक पाँव युद्ध में खतम हो गया। आप अपने मिशन में सफल हो। दुनिया से फौज और हथियारों का नामो-निशान मिट जाय।”

श्री वसीली का पूरा परिवार और पूरा आरत्योमकी गाँव, हमारे मन में सदा सदा के लिए बस गया।

जब पैर धुले



सोवियत देश में अतिथि के साथ होनेवाले व्यवहार ने हमें कभी-कभी चकित भी कर दिया। हम एक छोटे-से गाँव में श्री सेमोनियान के घर ठहरे थे। रात को सोने के पहले जब हम कपड़े उतारने लगे, तो श्री सेमोनियान ने अपनी बेटी ल्योपा को आवाज दी : “क्यों बेटी, गरम पानी तैयार है क्या ?” तत्क्षण एक उत्सुक आँखोवाली तरुणी ने हाथ में गरम पानी और तौलिया लेकर मुस्कुराते हुए कमरे में कदम रखा। “यह मेरी बेटी ल्योपा है।”—श्री सेमोनियान ने परिचय कराया। मैं उचक-कर खड़ा हो गया और मिलने की प्रसन्नता व्यक्त की। ल्योपा ने अभिवादन-स्वरूप अपना हाथ मिलाने के लिए मेरी तरफ बढ़ाया। स्त्रियों ने हाथ मिलाकर अभिवादन करने की मुझे आदत नहीं थी। मैंने दोनों हाथ जोड़कर अभिवादन किया, पर ल्योपा का बढ़ा हुआ हाथ ग्रहण नहीं गया और मुझे सकोचसहित ही सही, पर हाथ मिलाने ही पड़े।



“बैठे अतिथि, बहुत थके हो न, गरम पानी तुम्हारी थकान को दूर करेगा।” श्री सेमोनियान ने कहा और ल्योपा को इशारा किया कि वह हमारे पैर धो दे। मैंने अपने जूते खोलकर पानी के जग की तरफ हाथ बढ़ाया कि ल्योपा ने अपने छोटे भाई वखतागी को पानी का जग पकड़ाते हुए कहा : “तुम धीरे-धीरे पानी डालो, मैं पैर धोऊँगी।” ज्यों ही मैंने यह सुना, मेरा मुँह सकोच और आश्चर्य से लाल हो गया।

अपने पैर कुर्सी के नीचे की तरफ सिकोड़ते हुए मैंने कहा : “नहीं, नहीं। मैं स्वयं अपने हाथ से ही अपने पैर धोऊँगा।” पर वह बात स्वीकार नहीं की गयी।

“आप हमारे अतिथि जो है। हमारे यहाँ आतिथ्य की यही रीति है। यदि आप हमारा आतिथ्य स्वीकार नहीं करेंगे, तो इस घर में कोई सोयेगा भी नहीं।” लेकिन मुझे संकोच होता है। मैं अपने घर पर अपनी माँ, बहन या पत्नी से भी पैर नहीं धुलवाता।” मुझे आश्चर्य हो रहा था, इस परम्परा पर। भारत में ऐसा माना जाता रहा है कि भगवान्, माता-पिता, गुरु और अतिथि का चरणामृत पीना चाहिए और उनके पैर धोने चाहिए। परन्तु सोवियत देश में इस परम्परा के जीवत दर्शन होंगे, ऐसी कल्पना मुझे नहीं थी। ल्योपा बोली : “यह सकोच फिर क्या बला है? क्या आप भारत से उसे गठरी में बाँधकर लाये हैं। मैंने सुना था कि भारत की लड़कियाँ बड़ी शर्मीली होती हैं, पर देख रही हूँ कि भारत के युवक भी शरमाते हैं।” मैंने ऐसे प्रहारात्मक उत्तर की अपेक्षा नहीं की थी। आखिर हमें झुकना पड़ा और ल्योपा के कोमल हाथों से हमारे पैर धुले। “आपने मेरा आग्रह स्वीकार किया, मुझे अतिथि-सेवा का अवसर दिया, उसके लिए मैं आपकी कृतज्ञ हूँ।”—यह कहते हुए ल्योपा ने तौलिये से हमारे पैर पोछे।

यह खाना ! यह पीना !!

सोवियत लोग खाने-पीने में बहुत तगडे होते हैं। उनका खाना शाम को छह बजे शुरू होगा, तो रात के बारह-एक बजे तक चलता रहेगा। खाने की टेबुल पर सभाएँ होगी, भाषण होंगे, नाचना-गाना चलेगा। हमारे स्वागत में उत्सव जैसा ही आयोजित होता था। भोजन की मेज पर १५-२० प्रमुख व्यक्ति आमन्त्रित किये जाते थे। पुलाव, हाचापूरी, रागू आदि का भोजन बनता। भोजन की मेज पर कहाँ कौन बैठेगा, इसका निर्णय होता। कहीं सभी महिलाएँ एक तरफ और पुरुष एक तरफ बैठे, ऐसा न हो जाय। एक महिला और एक पुरुष इस तरह से मेज पर सबके बैठने के बाद भोजन-समारोह के लिए अध्यक्ष का चुनाव होता। ये अध्यक्ष महोदय मदिरा का प्याला हाथ में लेकर 'तोस्त' की घोषणा करते हुए टेबुल के अन्य सदस्यों के साथ एक-दूसरे के स्वास्थ्य की कामना करते। ५-६ घण्टे के अन्दर ये लोग मदिरा की ३०-३५ प्यालियाँ पी जाते। हमें आश्चर्य होता था वह सब देखकर। हमारे लिए यह सब नया था। हम अगर पीने के लिए पानी माँगते, तो लोग कहते : "पानी ? क्या पानी भी कोई पीने की चीज है ? हम पानी नहीं, अगूरों की मदिरा पीते हैं। पानी तो धोने-धाने के लिए है।"

हम मदिरा पीने के आदी नहीं थे। चाय-काफी से काम चलाने। परन्तु एक दिन तो हम भी बच नहीं पाये। घटना यो घटी कि हमारे मेजवान ने कहा : "जरा घर के पीछे चलेगें ?" हम उनके साथ गये। मेजवान ने हमारे हाथ में कुदाली पकटायी और कहा : "जग यहाँ में थोड़ा खोदिये।" हमने वैसा ही किया—थोड़ा खोदने पर एक बहुत बड़ा घड़ा जमीन में से निकला। उसका मुँह ढँका था। हमारे हाथ में मुँह खुलवाया गया। हमें बड़ी तेज गन्ध आयी, पर हमारे पान गन्ध

लोग कह रहे थे कि “बड़ी अच्छी खुशबू आ रही है।” हमारे मेजवान ने घड़े में से दो प्यालियाँ भरी और हमारे हाथ में पकड़ाते हुए कहा : “आज मदिरा के मौसम की शुरुआत होती है। हम किसी विनिष्ट व्यक्ति द्वारा इसका उद्घाटन करवाते हैं। हमारे परम सौभाग्य से आज आप हमारे घर पर हैं। अतः आपको ही हमने उद्घाटन के लिए बुलाया है। यह पहली प्याली आपको ही पीनी पड़ेगी।”

“लेकिन हमने तो कभी अपने जीवन में मदिरा को छुआ भी नहीं। हमें मदिरा पीने की आदत नहीं।” हमने यह तर्क दिया। इससे हमारे सभी मेजवान और अन्य साथी एकदम निराश हो गये। उनके लिए तो यह बड़ा अपशकुन और अपमान का प्रसङ्ग था। हमें लगा कि हम उनके मन को बहुत चोट पहुँचा रहे हैं।

“ऐसा नहीं हो सकता।” पास ही खड़े सामूहिक कृषि फार्म, कोल-खोज के अध्यक्ष ने कहा : “आज तो आपको पीना ही पड़ेगा। भारत और रूस की मित्रता के नाम पर पीना होगा।” हम उन्हें कैसे समझाते ?

“हम आपकी परम्परा को तोड़ना नहीं चाहते। पर हमें मदिरा की गन्ध से ही सिर-दर्द हो रहा है, पीना कैसे सम्भव हो पायेगा ?”—हमने ऐसा तर्क किया।

हमारे मेजवान इस पर बोले : “यह अगूर की मदिरा आपके स्वास्थ्य को नुकसान नहीं पहुँचायेगी। यदि आपको पीने की आदत नहीं, तो आज एक घूँट ही लीजिये। यदि आप नहीं पीयेगे तो यह सारा उद्घाटन-समारोह ही विगड जायगा।” हम बड़े धर्मसकट की स्थिति में पड़ गये। चारों तरफ से हम ऐसे घिर गये कि कोई रास्ता ही नहीं दीख रहा था। “या तो आपको पीना होगा, अन्यथा हमसे कोई नहीं पीयेगा।” मेजवान की सबसे बड़ी पुत्री माशा ने कहा। और स्वयं माशा भी मदिरा की प्याली हाथ में लेकर आ गयी। सब लोगों ने अपने हाथों में प्यालियाँ लेकर हाथ ऊपर उठाये। हमारे सामने कोई

चारा नहीं था । आखिर उनके साथ सहसा हमारे हाथ भी ऊपर उठ गये । हम कुछ भी सोचने और निर्णय करने की स्थिति में नहीं थे । सबने करतल-ध्वनि की । एक जबर्दस्त कहकहे के बीच हमारे अधरो तक मदिरा की प्याली पहुँची । दो घूट गले से नीचे उतर गये ! “आपके जीवन का यह भी एक नया अनुभव है ।”—माशा ने हँसते हुए मेरे कान के पास अपना मुखड़ा सटाते हुए कहा । माशा और मदिरा !

## वह टैक्सी ड्राइवर

स्तालिन की जन्मभूमि गोरी नाम के नगर में हम ठहरे थे । रात के बारह बज गये । मैं पलंग पर सो गया था और प्रभाकर कुछ चिट्ठियाँ लिख रहे थे कि किसीने दरवाजा खटखटाया । “रात को १२ बजे कौन द्वार खटखटा रहा है ?” सहज जिज्ञासा हुई । बाहर घनी रात्रि ने धरती पर काली चादर बिछा रखी थी । वर्षाली हवा के झोके के कारण हमारे कमरे की खिड़की कभी-कभी खट-खट करने लगती थी । इतने में दुबारा दरवाजे पर दस्तक हुई । जरूर कोई बाहर खड़ा है, यह सोचकर प्रभाकर ने द्वार खोला । एक अधेड़ उम्र का हड्डा-कड्डा व्यक्ति बाहर खड़ा था ।

“क्या चाहिए आपको ? क्या हम आपकी कोई मदद कर सकते हैं ?” प्रभाकर ने पूछा ।

आगन्तुक ने कहा : “क्या आप ही हैं भारत से आये हुए शान्ति-यात्री ?” और फिर उसने बताया कि अखबारों से तथा मास्को रेडियो से वह हमारे बारे में जानता था । “आज मैंने आपको रास्ते चलते देखा । बर्फ पड़ रही थी, पर आप दोनों चल रहे थे । आपसे मिलने की इच्छा हुई । मैं एक टैक्सी ड्राइवर हूँ । आपकी शान्ति-यात्रा के लिए कुछ मदद करना चाहता हूँ । आज टैक्सी चलाकर ३० रूबल ( १०० रुपये से अधिक ) मैंने कमाये हैं । इसमें से २० रूबल मैं इस शान्ति-यात्रा

के लिए देना चाहता हूँ।” नोट आगे करते हुए वह टैक्सी ड्राइवर बोला : “इसे आप स्वीकार करें।” जब उसे समझाया गया कि हम पैसा साथ नहीं रखते और न किसीके देने पर स्वीकार ही करते हैं, तो वह बेचारा थोड़ा निराश हुआ। बोला : “बिना पैसे के इतनी लम्बी यात्रा कैसे सम्भव है ? कभी वक्त-बे-वक्त ये पैसे काम देंगे।” हमारे सर्वथा इनकार करने पर वह बोला : “अच्छा, आप पैसा नहीं लेते, तो मेरा दूसरा निवेदन स्वीकार कीजिये। पैदल तो आप प्रतिदिन ही चलते हैं। कल मेरी ही टैक्सी में आइये। मैं आपको अगले पड़ाव तक पहुँचा दूँगा।”

हमने समझाया कि “टैक्सी में जाना भी हमारी यात्रा के क्रम को भग करना होगा। अतः आप हमें क्षमा करें।” इस पर तो वह बहुत ही परेशान हुआ। रात को १२ बजे जो व्यक्ति ढूँढ़ते-ढूँढ़ते किसी तरह हम तक पहुँचा और उसकी तमन्ना पूरी न हो सकी, इससे उसका परेशान होना सम्भव ही था। पर जाते-जाते टैक्सी ड्राइवर कहता गया कि “कोई बात नहीं। भले ही इस रूप में मैं आपकी मदद नहीं कर सका। लेकिन मैं भी अणु-अणु के और युद्ध के खिलाफ हूँ। मैं अपने देश की सरकार से और जनता से कहूँगा कि वे आपकी नीति को स्वीकार कर लें।” कैसा शान्तिवादी था वह टैक्सी ड्राइवर !

स्मोलेंस्क में !



नीपर नदी की तेज धारा में झोंकती हुई इस प्राचीन स्मोलेंस्क नगरी का रूप फिर से नया होकर निखरने जा रहा था। जिस नीपर सरिता की धारा ने नेपोलियन की सेना को भी उदरसात् कर दिया था, वह भी आखिरकार इस नगरी को दूसरे महायुद्ध द्वारा कवलित होने में बचा नहीं सकी। श्रीमती स्कोलकोवा वहन ने स्मोलेंस्क की परिक्रमा करते हुए बताया कि “इतिहास में इस नगर का युद्ध के माथ चोली-दामन

का-सा सम्बन्ध रहा है। यह शहर बीसो बार युद्ध के कारण आक्रांत हुआ और पिछले महायुद्ध में तो ९३ प्रतिशत हिस्सा धराशायी होकर मिट्टी में मिल गया था। पर हमने अपने श्रम से उसे फिर से सजाया-सँवारा है। हम श्रमिक हैं और श्रमिक कभी भी श्रम से हारता नहीं। हम अब फिर से किसी युद्ध की कल्पना भी नहीं करना चाहते। हम मिट-मिटकर भी जिन्दा हुए, क्योंकि हम एक सुखद और शान्तिमय मानव-जीवन की बुनियाद को दृढ़ करना चाहते हैं।” हम जब नगर-दर्शन के लिए घूम रहे थे, तो हलकी-हलकी बर्फ पड़ रही थी। साधारणतः मार्च महीने के तीसरे सप्ताह के बाद बर्फ वन्द हो जाया करती है, लेकिन इस वर्ष की सर्दी ने अपना भयंकर रूप दिखाया। अप्रैल प्रारम्भ हो गया, फिर भी तापमान शून्य से नीचे था। स्कूलकोवा बहन से मैंने पूछा : “हम आप कुछ सोवियत-नारी के बारे में भी बताइये।”

“स्त्रियों के स्वावलम्बन तथा पुरुषों के साथ कदम-से-कदम मिलाकर चलने की उनकी शक्ति का समुचित उपयोग करने के प्रयत्न में सोवियत-संघ दुनिया के सभी देशों से आगे है। अध्यापिका और परिचारिका से आगे बढ़कर औद्योगिक सस्थानों, कृषि-फार्मों और मशीन-निर्माण तक के कामों में हमारे यहाँ ३० से ४० प्रतिशत तक स्त्रियाँ हैं। हमारे देश की १६ वर्ष से लेकर ५४ वर्ष तक की आयुवाली ८० प्रतिशत स्त्रियाँ कल-कारखानों और स्कूलों, अस्पतालों में काम करती हैं।” श्रीमती स्कूलकोवा बहन ने जब यह बताया तो मुझे आश्चर्य हुआ।

मैंने पूछा : “फिर घर-परिवार की व्यवस्था कैसे चलती है?”

“यही तो हमारी विशेषता है। हम सोवियत-स्त्रियाँ चाँके-चूहे से लेकर घर-परिवार और दापत्य तक की सभी जिम्मेदारियों सँभालती हैं। वे शक, हमारे पति भी घर के काम में हमारी मदद करते हैं। यदि पत्नी खाना बनाती है, तो पति घर की सफाई कर लेता है, प्लेटें धो लेता है, कपड़े धो लेता है। पर इन कामों के लिए कोई नौकर रखने का तो प्रश्न ही पैदा नहीं होता। हमारे यहाँ स्त्री का अपना एक स्वतन्त्र

अस्तित्व है। स्वतन्त्र व्यक्तित्व है। बच्चे पैदा करनेवाली मशीन या पति-सेवा करनेवाली दासी मात्र बनकर हमारे देश में खी रहती थी। पर अब वह बीते युग की कथा बन गयी है।”

## वसीली के घर



एक दिन हम एक वृद्ध किसान का आग्रह स्वीकार करके सड़क से दो मील दूर जाकर उसके घर पर ठहरे। उस दिन हम २१ मील चल चुके थे। फिर सड़क से दो मील गाँव में जाने का उत्साह नहीं हो रहा था। पर उस वृद्ध ग्रामीण श्री आब्रामोविच वसीली ने कहा : “आज मेरे अतिथि बनकर मुझे उपकृत कीजिये। थक गये हैं तो थोड़ी देर यहीं पर आराम कर लीजिये। आपका सामान मैं उठा लूँगा।” उसके स्नेह-सिंचित हृदय से निकले हुए निवेदन पर हम इनकार नहीं कर सके।

हम चल पड़े श्री वसीली के पीछे-पीछे। उनके पैरों में एक नया जोश आ गया था। “हमारे गाँव में आप सबसे पहले विदेशी हैं।” श्री वसीली ने कहा। भारत हमारा मित्र देश है। “हम भारत से बहुत प्यार करते हैं।” वसीली भारत के बारे में बहुत कुछ पूछने लगे। इतने में किसीको पुकारते हुए वसीली ने कहा : “ओ इवान, देखो हमारे घर आज भारत के दो अतिथि हैं। रात को आना हमारे घर।” थोड़ी देर बाद किसी और को भी इसी तरह उसने सूचना दी। हमारा सामान उठाकर हमारे आगे-आगे श्री वसीली चलते जा रहे थे और गाँवभर को सूचना देते जा रहे थे। “यही है मेरा गाँव पेटकोविची। और यह है मेरी कुटिया।” श्री वसीली ने अपनी पुत्री और पत्नी से मिलाते हुए हमें कहा : “यह है मेरा छोटा-सा परिवार।” गाँव के स्कूल में एक बड़ी सभा हुई। रात को हमने देखा कि श्री वसीली ने अपने लिए, पत्नी और पुत्री के लिए जमीन पर ही बिस्तर लगाया है। दोनों पलंगों पर हमारे लिए सोने का प्रवन्ध किया है। “आप वृद्ध

है। आपको पलंग पर सोना चाहिए, हम नीचे सो जायेंगे।” ऐसा हमने आग्रह किया, पर वसीली यह मानने को तैयार नहीं थे कि उनके अतिथि नीचे सोये।

इसी तरह लगभग हर गाँव की कहानी है। प्रत्येक पड़ाव हमारे लिए एक नया अनुभव, एक मीठा संस्मरण और एक स्फूर्तिमान् प्रेरणा था।

मिंस्क में

श्वेत रूस की राजधानी मिंस्क में भी हमने दो दिन बिताये। आठ किलोमीटर लम्बे, मिंस्क नगर के सर्वप्रमुख राजपथ, लेनिन-मार्ग की शोभा सचमुच चित्त को आकर्षित करनेवाली थी। मिंस्क पहुँचते-पहुँचते मौसम भी काफी बदल गया था। वर्षा पिघलकर पानी बन रहा था। नदियों से कल-कल स्वर सुनाई पड़ने लगा था। जाड़े की खुमारी उतर चुकी थी। इसलिए मिंस्क शहर को देखने का पूरा आनन्द हम उठा सके। याका-कुपाला जैसे महान् विचारको और साहित्यकारों को पैदा करनेवाली श्वेत रूस की धरती को जब हमने प्रणाम किया, तो आकाश से धुंधले बादल फट चुके थे और सूरज अपनी सुनहरी किरणों से धरती का आलिंगन कर रहा था। पेड़-पौधों पर नन्ही-नन्हीं कोपले फूटने लगी थीं और जमीन में से पीले तथा आसमानी रंग के सुन्दर पुष्प अंगड़ाइयाँ भर-भरकर उगने लगे थे।

“मिंस्क शहर भी स्मोलेस्क की तरह ही रण-क्षेत्र रहा है और आज जो कुछ देख रहे हैं, वह सब युद्ध के बाद का निर्माण है। युद्ध-कवलित मिंस्क सन् १९४४ में एक खण्डहर जैसा प्रतीत होता था।” वहन लुद्मीला ने हमें मिंस्क शहर की परिक्रमा करते समय बताया। हमने विज्ञान-अकादमी, मिंस्क विश्व-विद्यालय, संस्कृति भवन आदि के अलावा युद्ध-कालीन घटनाओं, चित्रों, वस्तुओं आदि का संग्रहालय विशेष दिलचस्पी से देखा। बड़ी-बड़ी चिमनियों से उठनेवाले धुँएँ को देखकर वह स्पष्ट



अनुमान होता है कि यह एक औद्योगिक नगर है। यहाँ मिले और कारखानों का एक जाल-सा बिछा है।

“हमारे देश के सभी स्त्री-पुरुषों के लिए ७ घण्टे काम करना अनिवार्य है। दूकान, मकान या कारखाना हर चीज पर समाज का स्वामित्व है। टैक्सी हो या हजामत बनाने की दूकान, सब कुछ समाज का है। इस समाजवादी व्यवस्था में व्यक्ति समाज का पोषक है। हर चीज का मूल्य निर्धारित है। कभी किसी चीज के लिए विवाद की गुंजाइश नहीं, क्योंकि हर व्यक्ति समाज के एक निश्चित क्रम के अनुसार अपना कर्तव्य पूरा करने के लिए काम कर रहा है, किसीका शोषण करना या पैसा बनाना उसका उद्देश्य नहीं। इसलिए छोटे-मोटे विवाद उठते ही नहीं। रुपया-पैसा तो केवल विनिमय का साधन मात्र है। वह कोई सग्रह की चीज नहीं।” हमारी बातचीत के दौरान में लुद्मीला बहन यह सब बता रही थी। हम स्विस्लोच नदी के किनारे स्थित विजय प्रागण में भी गये। बगल की ओर झँकते ही दीखता है एक गोल भवन। यह है मिस्क का सुप्रसिद्ध आपेरा थियेटर। भारत के राष्ट्रीय नृत्य—मणिपुरी, कथकली या भरतनाट्यम् देखने के बाद इस देश की राष्ट्रीय नृत्य-शैली बैले देखने की उत्सुकता स्वाभाविक थी। इसीलिए हमारे कार्यक्रम में बैले भी शामिल किया गया।

सोवियत देश में सिनेमा से भी अधिक नाट्य थियेटर है। नाट्यमंच कलासम्पन्न है। हमने यरेवान, त्विलीसी, कुतार्सी, मास्को जैसे शहरों के आपेरा थियेटर देखे, वहाँ के नाचघर देखे और हम वहाँ के कुछ कलाकारों से भी मिले। विश्व-प्रसिद्ध वाल्गोय थियेटर, मास्को के कलाकार माया प्लसेत्स्काया द्वारा प्रस्तुत बैले देखकर तो कोई भी मंत्र-मुग्ध हुए बिना नहीं रह सकता। हमारे लिए वह सच्चा एक अविस्मरणीय सन्धा है। कुतार्सी के नाट्यमंच-निर्देशक ने हमें बताया कि वे निकट भविष्य में ‘अभिज्ञान शाकुन्तलम्’ का अभिनय मंच पर प्रस्तुत करनेवाले हैं। कुतार्सी में हमने जो नाटक देखा, वह बहुत आकर्षक और कला की

दृष्टि से उच्चकोटि का था। बड़े शहरों में ही नहीं, छोटे-छोटे नगरों में भी ऐसे सुन्दर थियेटर हैं, जैसे शायद हमारे यहाँ जयपुर, लखनऊ, बनारस जैसे शहरों में भी नहीं होंगे। इससे यहाँ की नाट्यकला की प्रगति का सहज अनुमान किया जा सकता है। सिनेमा की कला में विज्ञान के कारण मनुष्य की स्वाभाविक कला उतनी निखर नहीं पाती। उसमें कैमरे का चमत्कार अधिक होता है। परन्तु नाट्यकला में मनुष्य अपने भावों को अभिव्यक्त करने की कला में अत्यधिक प्रवीणता प्राप्त कर सकता है।

सोवियत संघ में धार्मिक सम्प्रदायों, मजहबों और चर्चों की क्या स्थिति है, इसका भी मैंने गहराई से अध्ययन करने की कोशिश की। यद्यपि कम्युनिस्ट पार्टी धर्म-विरोधी है और धर्म के खिलाफ प्रचार भी करती है, पर सरकार की ओर से धर्म-प्रेमियों को हतोत्साह नहीं किया जाता। वे खुले तौर पर धार्मिक प्रचार नहीं कर सकते, लेकिन व्यक्तिगत तौर पर धर्माचरण कर सकते हैं। लेकिन जैसे गड्ढे में एकत्र पानी सुखा दिया जाय, तो मेढक बिना मारे ही मर जायेंगे, वैसे ही विज्ञान और भौतिकवाद पर आवृत्त शिक्षा के कारण पन्थवाद और धर्मान्धता अपने-आप मूर्छित होती जा रही हैं। उसके लिए किसी विशेष प्रयत्न की आवश्यकता नहीं। हम जब देहाती घरों में ठहरते थे, तो देखते थे कि गाँवों के किसान अपने-अपने घर में ईसामसीह के चित्र टँगकर रखते हैं और सुबह-शाम उसके सामने कन्दील भी जलाते हैं। हाँ, शहरों में तथा पढ़े-लिखे युवकों में धर्म के प्रति कोई रुचि दिखाई नहीं पड़ी। चर्च और पादरी आय तथा प्रतिष्ठा के अभाव में सहज कम होते जा रहे हैं। यदि कहीं पर नजदीक-नजदीक कई चर्च होते हैं तो उनमें से एक चर्च प्रार्थना करनेवालों के लिए छोड़ दिया जाता है। बाकी चर्चों का उपयोग क्लब, सिनेमाहाल, संग्रहालय, विद्यालय आदि के रूप में किया जा रहा है। वाईस करोड़ की आबादीवाले इस देश में कम्युनिस्ट पार्टी के सदस्य केवल एक करोड़ हैं। पार्टी का सदस्य बही बन सकता

है, जो सचमुच उसके योग्य हो। इसलिए जनता के विकसित बौद्धिक स्तर तथा शिक्षण में विज्ञान और भौतिकवाद के बाहुल्य के कारण धर्म-सम्प्रदाय प्रभावहीन हो गये हैं।



वह १ जनवरी १९६३ का अरुणोदय था, जब हमने सोवियत-संघ में प्रवेश किया। नव-वर्ष के उत्सव में सम्पूर्ण सोवियत-भूमि निमग्न थी। पहली मई को जब हम विदा हुए, उस समय मजदूर-दिवस का त्यौहार मनाने में सारा देश जुटा था। इन दो बड़े पर्वों के बीच चार महीने बीत गये। सोवियत-देश के पॉंच गणतन्त्रों में हम रहे। हजारों लोगों से मिले। हमारे मित्रों की सूची में रुस के सैकड़ों नाम जुड़ गये। ऐसा लगता था, मानो हम बहुत लम्बे असें से इसी देश में थे। इस देश से विदा होते समय उन सैकड़ों मित्रों के चेहरे एक-एक करके याद आते थे, जिन्होंने रास्ते में साथ चलते समय, घर में भोजन करते समय, सगाओं में भाषण करते समय अपना पता लिखकर दिया, हमारे कुरते पर मित्रता का 'वैज' लगाया, हमारे गले में दोस्ती की टाई बॉन्नी, हमें फिर में आने का निमंत्रण दिया, कभी-कभी पत्र लिखते रहने का आग्रह किया, मुद

नीचे सोकर हमे पलंग पर सुलाया, हमारे पिता बनकर खाने-पीने और सोने की चिन्ता की, शान्ति के सिपाही बनकर हमारे साथ ही चल पड़ने की तैयारी दिखायी; चाकलेट, सूखे मेवे और फलों से हमारी जेबे भरकर हमे अपने घर से बिदा किया, अपने स्नेह और प्यार से हमे लाद दिया, हमारे आगमन पर नाना प्रकार से उत्सव मनाये, स्वागत-भोज आयोजित किये और न जाने क्या-क्या किया ! एक-एक दिन हमारे लिए एक अविस्मरणीय घटना है। हमने १२० दिनों की इस सुखद यात्रा में अनुभवों का, संस्मरणों का, मित्रों का और लोगों के प्यार का अनुपम खजाना पाया।

दो करोड़ बीस लाख वर्ग किलोमीटर में फैले हुए इस विशाल देश के २२ करोड़ लोगों तक हमारी शान्ति-यात्रा की बात पहुँचाने के लिए, अखबार, रेडियो, टेलीविजन आदि साधनों ने हर जगह हमारा साथ दिया। इस देश के विभिन्न गाँवों और शहरों की पैदल यात्रा के बाद ऐसा प्रभाव हमारे मन पर पड़ा कि सम्पूर्ण भूखण्ड के छोटे हिस्से में बसे हुए इस सोवियत-देश की जनता युद्ध के खिलाफ है और वह हर कीमत पर शान्ति चाहती है। पूर्व से पश्चिम तक १० हजार किलोमीटर तथा उत्तर से दक्षिण तक ५ हजार किलोमीटर में विस्तृत इस देश को हम जब एक किनारे पर खड़े होकर देख रहे हैं, तब इस देश की वह सर्वप्रिय कविता कानों में गूँज उठती है :

“स्पासीत्य वी उचिश्ने !

खात्यात् ली रूसकीये वाइने ?”

यह कविता हर स्त्री और पुरुष के मुँह हमें सुनने को मिली : ‘क्या रूसी जनता युद्ध चाहती है ?’ नार्वे, फिनलैंड, पोलैंड, चेकोस्लावाकिया, हंगरी, रूमानिया, तुर्की, ईरान, अफगानिस्तान, मंगोलिया, चीन और कोरिया—इन बारह देशों की सीमाओं को छूता हुआ १५ सोवियत गणतन्त्रोंवाला यह महादेश क्या युद्ध चाहता है ? जिस देश में युद्ध का समर्थन कानूनन अपराध घोषित किया गया है, वह देश क्या युद्ध

चाहता है ? जिस देश में विज्ञान और टेक्नालॉजी ने चरम सीमा तक प्रगति की है और जहाँ कोयला, लोहा, लकड़ी आदि प्राकृतिक साधन भरपूर हैं, उस देश को क्या युद्ध की आवश्यकता है ? जिस देश को युद्ध के अनेक आघातों ने आतंकित किया और जहाँ एक भी परिवार ऐसा मुश्किल से मिलेगा, जिसका कोई-न-कोई सदस्य युद्ध-पीड़ित न हुआ हो, उस देश को क्या फिर से युद्ध देखने की आकांक्षा हो सकती है ? जिस देश के दो करोड़ मानव दूसरे महायुद्ध के शिकार होकर मौत के घाट उतर चुके हों, वहाँ क्या फिर से युद्ध की हवस हो सकती है ? इन प्रश्नों का केवल एक ही उत्तर हमें मिला : “नहीं, और कभी नहीं।” फिर भी क्यों नहीं यह देश निःशस्त्रीकरण की दिशा में आगे कदम बढ़ाता ?

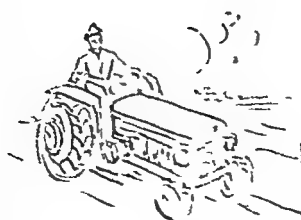
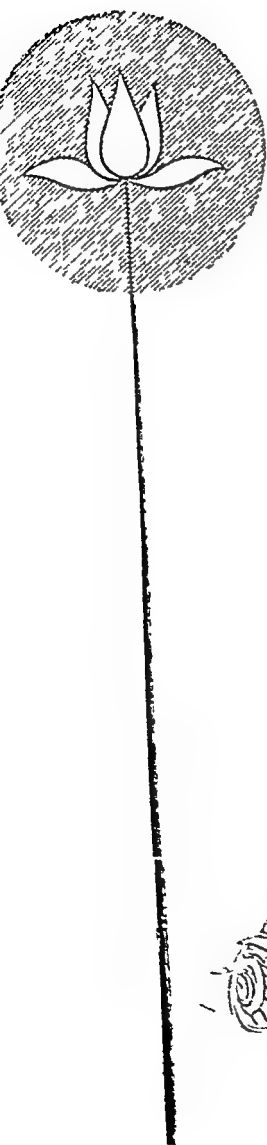
यह प्रश्न हमने जनता के सामने भी रखा और सरकार के सामने भी। हमें इस प्रश्न का जो उत्तर मिला, उसका सार यही था कि अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में उच्चतम स्तर पर वैज्ञानिक और भौतिक संघर्ष में अपने बड़े प्रतिद्वन्द्वी से जूझनेवाला यह देश निःशस्त्रीकरण के मार्ग पर अकेले आगे बढ़ने का कदम उठायेगा, तो वह सम्पूर्ण देश के लिए एक बड़ा खतरा होगा। पर साथ ही शान्ति और अहिंसा के क्षेत्र में गम्भीरता से सोचने-समझनेवाले लोगो ने हमसे कहा कि भारत जैसा अहिंसावादी और अपेक्षाकृत अल्प साधनोवाला देश, जिसे कभी किसी महायुद्ध का भी सामना नहीं करना पड़ा, और जहाँ बुद्ध तथा गांधी की मजबूत विचार-परम्परा भी रही है, जब एकपक्षीय निःशस्त्रीकरण का सहस्र नहीं कर सकता, तो सोवियत-संघ के लिए ऐसा खतरा उठाना तो नितान्त कठिन है।

तर्क से तो ऊपर की बात भले कुछ जर्चे, पर निःशस्त्रीकरण की तरफ पहल न कर सकने का सबसे बड़ा कारण है अविश्वास और भय। हमने यह अविश्वास और भय हर जगह पाया। रूसी जर्मनो से डरते हैं और जर्मन कम्युनिस्टो से डरते हैं। जो डर भारत और पाकिस्तान में है, वही डर रूस और अमेरिका में भी है। जहाँ भय है, अविश्वास है, वहाँ निःशस्त्रीकरण कैसे सम्भव हो सकता है ? सब जानते हैं कि इस अणु-

युग में चाहे जैसा शक्तिशाली देश भी युद्ध में विजय नहीं पा सकता । यदि युद्ध होगा तो दोनों पक्ष मारे जायेंगे, सारी मानव-जाति मारी जायगी । फिर भी डर के कारण निःशस्त्रीकरण करने का साहस किसीको नहीं हो रहा है ।

इसके बावजूद सोवियत सरकार और जनता के शान्तिवादी प्रयत्नों ने हमारे मन पर एक जबरदस्त प्रभाव डाला । हम अपनी इस सोवियत-  
 —त्रा को कभी भूल नहीं सकते ।





पाँड की  
प्राणवान जनता के बीच



पोलैण्ड शान्ति-परिषद् के मन्त्री श्री तादेउस स्त्रालकोव्स्की ने हमारा स्वागत करते हुए कहा : “युद्ध के आघात ने हमारा अग-अग शत-विक्षत कर दिया है, हमारा रोम-रोम जला डाला है। हमारी जीवन-व्यवस्था कुचल डाली है। तीन करोड़ की आबादीवाले छोटे-से देश को ६० लाख लोगो की मृत्यु का दुःख झेलना पड़ा। किसी तरह उस आघात से सँभलकर अब हम उठ रहे हैं और अपनी समाज-व्यवस्था को ठीक रास्ते पर ला रहे हैं। पर आज जिस शीत-युद्ध के अन्धेरे में हम खोये हुए हैं, उस अन्धेरे को मिटाना बहुत जरूरी है। इसलिए आपकी इस शान्ति-यात्रा का हम हृदय से स्वागत करते हैं।” श्री स्त्रालकोव्स्की पोलैण्ड की पार्लियामेण्ट के सदस्य हैं और इस देश में शान्ति-आन्दोलन के प्रमुख संगठन-कर्ता हैं। वारसा में हम शान्ति-परिषद् के अतिथि थे, इसलिए श्री स्त्रालकोव्स्की से हमारा निकट परिचय हुआ। वे कहने लगे : “हमारे देश में एक कहावत है : ‘घर में अतिथि आया, मानो भगवान् आया।’ फिर आप लोग तो केवल अतिथि नहीं, बल्कि हमारी भावना को, हमारी आकांक्षा को और हमारे आन्दोलन को गाँव-गाँव और देश-देश में पहुँचानेवाले सदेशवाहक हैं। आप हमारी ओर से सबको यह सदेश दीजिये कि पोलैण्डवासी अगर किसी चीज से जवर्दस्त नफरत करते हैं, तो वह युद्ध है। अगर किसी चीज से अत्यन्त प्यार करते हैं, तो वह शान्ति है।” श्री स्त्रालकोव्स्की उमंगों से भरे हुए युवक हैं। उन्होंने दो बार भारत की यात्रा की है। भारत क्या है, इसे उन्होंने वारीकी से देखा-समझा है। उन्होंने अपनी यात्रा के दौरान में भारत के विभिन्न स्थलों के १२ सौ फोटो उतारे हैं और भारत की विभिन्न सांस्कृतिक परम्पराओं का परिचय देनेवाला एक चलचित्र भी बनाया है।

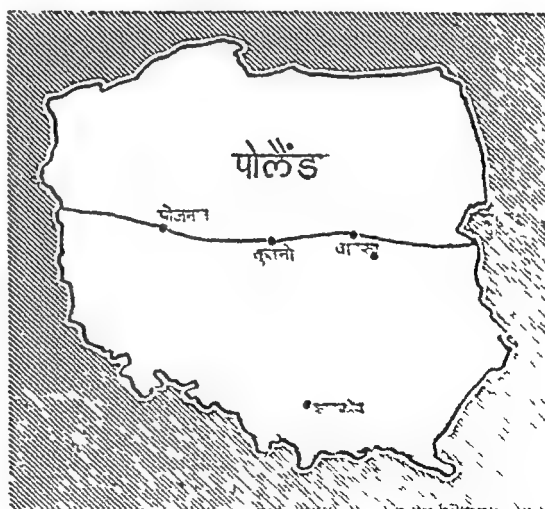
### मित्रता का पुल



भारत-पोलैण्ड मित्रता सत्र में वितायी हुई ९ मई की सन्ध्या हमारे वारसा-प्रवाम की एक संस्मरणीय मन्ध्या है। दोनों देशों की मित्रता की

मजबूत आधार प्रदान करने के लिए इस संस्था का उल्लेखनीय महत्त्व है। ९ मई को विश्व-कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर के जन्म-दिवस पर अनेक भारतीय और पोलिश विद्वान् उपस्थित थे। इस सभ के उपाध्यक्ष श्री स्तानीस्वाव याव्वोन्स्की ने कहा : “स्थायी शान्ति के लिए और युद्ध की सम्भावनाओं को जड़मूल से समाप्त करने के लिए विभिन्न देशों के बीच एक पुल होना चाहिए। वह पुल ‘मित्रता’ का पुल है। यह संस्था दो देशों की ‘मित्रता’ का घर है और इस घर में से संसारभर के देशों के लिए ‘मित्रता’ का प्रवाह निकलेगा, ऐसी हमारी कोशिश है। हम केवल एक ही लक्ष्य के उपासक हैं—मित्रता। और मित्रता का लक्ष्य सिद्ध होते ही दूसरे सभी लक्ष्य सहज सिद्ध हो जायेंगे। श्री याव्वोन्स्की पिछले २० वर्षों से शाकाहारी हैं। क्योंकि वे अहिंसा की दिशा में बढ़ने के लिए शाकाहारी होना पहला कदम मानते हैं। बापू की आत्मकथा ने

उनके विचारों को अहिंसा के बहुत निकट ला दिया है और अब वे बहुत सूक्ष्मता से अहिंसा के विचारों का अध्ययन करते हैं। बातचीत के दौरान में उन्होंने कहा : “मैं ६५ वर्ष का बूढ़ा हूँ, पर मासाहार करने-वाले मेरी उम्र के दूसरे साथियों से मेरा स्वास्थ्य कहीं बेहतर है। शाका-



हार केवल अहिंसा और सात्त्विक चिन्तन के लिए ही महायज्ञ नहीं, बल्कि स्वास्थ्य के लिए भी अनुकूल है।” श्री याव्वोन्स्की के हृदय में बापू के प्रति जो अगाध श्रद्धा है, उसका कारण बताते हुए उन्होंने

कहा : “गांधी ने अहिंसा को व्यावहारिक रूप दिया। यह गांधी की अहिंसा का ही परिणाम है कि आज दुनिया आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक क्रान्ति का एक नया मार्ग पहचानती है। उन्होंने क्रान्ति को मित्रता और शान्ति के साथ जोड़ दिया।” श्री याव्वोत्स्की ने बापू की आत्मा को और उनके विचारों को ठीक-ठीक पहचाना है। पोलैण्ड में ‘बापू की आत्मकथा’ अत्यन्त लोकप्रिय पुस्तक है। वारसा में ‘महात्मा गांधी रोड’ के नाम से एक प्रमुख सड़क भी है।

## समाज-व्यवस्था



तीन करोड़ आवादीवाले पोलैण्ड में सामाजिक और राजनैतिक व्यवस्था का नया प्रयोग चल रहा है। क्रिश्चियन कैथोलिक सभ के अध्यक्ष और पार्लमेण्ट के सदस्य श्री जान फ्राकोव्स्की ने चर्चा के दौरान में कहा : “हमारी पार्लमेण्ट में तीन राजनैतिक पार्टियाँ हैं, कुछ कैथोलिक सदस्य हैं और कुछ स्वतन्त्र सदस्य हैं। सबसे बड़ी पार्टी मार्क्सवादी पार्टी है। ग्रेप लोग मार्क्सवादी नहीं हैं। सबसे बड़ी पार्टी शासन नहीं करती, बल्कि सभी दलों की मिली-जुली सरकार शासन चलाती है। पार्लमेण्ट में केवल वही बिल स्वीकृत होता है, जिस पर पार्लमेण्ट के सदस्यों की सर्वसम्मति हो। पार्लमेण्ट में आने से पहले कोई भी बिल सदस्यों के विभिन्न वर्गों में बहस के लिए उपस्थित किया जाता है। उस समय एक-एक शब्द पर बारीकी से जमकर बहस होती है। इन वर्गों की बहस के बाद उस बिल का स्वरूप ऐसा हो जाता है, जो सभी सदस्यों को मान्य हो। यो हमारे यहाँ बहुमत का नहीं, सर्वसम्मति का शासन है। विभिन्न दलों के बीच अनेक मतभेद होते हुए भी हमने देश के पुनर्निर्माण और विकास का एक सर्वसम्मत कार्यक्रम बनाया है और उसी पर हम चल रहे हैं। विभिन्न विरोधी दलों की शक्ति “एक दूसरे दल की निन्दा में और मत्ता छीनने के प्रयत्नों में नष्ट करने के बजाय, सभी मिलकर एक सर्व-

सम्मत कार्यक्रम बनाये और समाज के सभी वर्गों और विचारों का प्रतिनिधित्व शासन में हो, यह हमारी पद्धति है।”—हमें श्री फ्रान्कोव्स्की के इस विवरण में बहुत दिलचस्पी हुई। यह सर्वसम्मत राष्ट्रीय कार्यक्रम तथा सर्वदलीय शासन की पद्धति है। श्री फ्रान्कोव्स्की ने बताया कि उनके क्षेत्र में एक लाख मतदाता हैं। ५ सीटों के लिए ७ उम्मीदवार खड़े हैं। जिन लोगों को ५० प्रतिशत से अधिक वोट मिलते हैं, वे विजयी होते हैं। यदि किसीको ५० प्रतिशत वोट नहीं मिलेगा, तो वहाँ फिर से नया प्रतिनिधि खड़ा किया जायगा और नये सिरे से चुनाव होगा।

वारसा-प्रवास के एक सप्ताह में वहन रोजमर्रा प्रतिदिन हमारे साथ थी। उन्होंने वारसा के प्रमुख और दिलचस्प स्थान हमें दिखाये। वे हमें पोलैण्ड के महान् संगीताचार्य श्री शापेन के जन्म-स्थान पर भी ले गयी। पोलैण्ड की आर्थिक व्यवस्था का परिचय देते हुए उन्होंने हमें बताया कि “उनका देश समाजवादी देश है। कम्युनिज्म उनका आदर्श है। उन्होंने कहा कि उस दिशा में समाज का परिवर्तन करने के लिए हमने पूरी तरह से जनतन्त्रात्मक मार्ग अपनाया है। हमारे यहाँ किसी तरह की रक्त-क्रान्ति नहीं हुई। जमीन पर यहाँ व्यक्तिगत खेती होती है। सामूहिक खेती के विचार को जनता ने स्वीकार नहीं किया है। एक आठमी अधिक-से-अधिक ५० हेक्टर भूमि रख सकता है। पर साधारणतः लोगों के पास १५ से ३० हेक्टर के बीच जमीन है। दूकानें, मकान और कारखाने भी व्यक्तिगत हो सकते हैं। व्यक्तिगत कारखानों में ५० व्यक्तियों से अधिक कामगार नहीं रखे जा सकते, ताकि व्यक्तिगत उद्योग शोषण का अथवा प्रचुर अर्थ-संग्रह का साधन न बन जाय। यदि ५० व्यक्तियों से अधिक कामगार किसी दूकान, होटल, कारखाना या कम्पनी में हैं, तो उसे सहयोगी समिति के अन्तर्गत लाना होगा, अथवा उसे सरकार स्वयं चलायेगी। हमारे यहाँ काफी बड़े-बड़े सहयोगी संस्थान हैं। उनमें सरकार का किसी भी तरह से सीधा हस्तक्षेप नहीं है। व्यक्ति को विवेन्द्रित रूप से और स्वतन्त्रतापूर्वक काम करने का अवसर है वस्तुतः कि वह

समाज पर हावी होने का, स्वार्थ साधने का या शोषण करने का प्रयत्न न करे।”

बहन रोजमरी की चित्रकार सहेली सोसान्ना के घर पर बिताये हुए चार घण्टे हमारे मन पर एक मधुर स्मृति अंकित कर गये। वहन सोसान्ना ने हमें स्वादिष्ट शाकाहारी भोजन ही नहीं कराया, उसी समय हमारा एक बड़ा-सा ‘पोट्रेंट’ बनाकर हमें सदा के लिए अङ्कित कर लिया। उसने कहा : “आप आये और चले जायेंगे, पर आप लोगो का यह ‘पोट्रेंट’ मुझसे शान्ति-यात्रा की कहानी कहता रहेगा। मैं कला की उपासिका हूँ। आप जानते हैं कि कलाकार करुणा और कोमलता की भावनाओं में पलता है। वह सृष्टि का और सुन्दरता का पुजारी होता है। युद्ध तो करुणा और कोमलता को मारकर ही पनपता है। सृष्टि को और सुन्दरता को भस्म करनेवाला है—युद्ध। इसलिए एक कलाकार के नाते मैं आपकी यात्रा के लिए आशीष देती हूँ।” कैसा हृदयस्पर्शी आशीर्वाद हमें सोसान्ना वहन से मिला।

हिरोशिमा ( जापान ) में अणुबम के नीचे लाखों व्यक्तियों का महार हुआ। आस्वीच ( पोलैण्ड ) में हिटलर के आदेश पर लाखों मनुष्य भून डाले गये। युद्ध की वर्बरता के धरती पर ये दो बड़े धाव हैं। जापान के चार शान्तिवादी हिरोशिमा से आस्वीच की यात्रा पर निकले। ये चारो शान्ति के तीर्थयात्री बन गये। अपनी यात्रा पूरी करने के बाद वे वापस जापान लौट रहे थे। रास्ते में रेल बदलने के लिए वे बारसा स्टेशन पर आधे घण्टे के लिए रुके थे। हम दो शान्ति-पदयात्री और ये चार शान्ति-तीर्थयात्री। कितना आनन्द और प्रेरणा देनेवाला हमारा मिलन था। भदन्त सातो और उनके साथियों ने हमें वॉहो में भर लिया और अपने आशीर्वाद से हमें उपकृत किया।

बारसा से वोविच, कुतनो, कोवो, कोनिन आदि नगरों से होते हुए ३०० किलोमीटर चलकर हम पोजनान पहुँचे। यह नगर पोलैण्ड के प्रमुख नगरों में से है। करीब पाँच लाख की जन आवादी है। दृग्ग

महायुद्ध में इस नगर को भी अन्य युद्धग्रस्त नगरों की भाँति पर्याप्त क्षति उठानी पड़ी थी। अब वापस सँभल चुका है। रास्ते में हमने नाजी सेना के मनुष्य-संहार शिविर भी देखे, जहाँ नाजी सेना ने यहूदियों का और पोल, चेक आदि जाति के लोगों का बड़े पैमाने पर संहार किया था। हमने जो शिविर देखा था, वहाँ पाँच लाख मनुष्यों का संहार किया गया था।

वह चुम्बन !

पोजनान में हम तीन दिन रहे। भारत-पोलैण्ड मित्रता-संघ के अध्यक्ष ने एक परिवार के साथ ठहरने का हमारा प्रबन्ध किया था। माता, पिता और २१ वर्षीय पुत्री। इतना ही बड़ा था यह परिवार। परिवार की यह इकलौती बेटी कुमारी रेनाता अत्यन्त शान्त, सुशील और गम्भीर स्वभाववाली लड़की थी। उसने हमारे साथ घूम-घूमकर हमें पोजनान दिखाया। पोजनान में एक बड़ा-सा सुन्दर सरोवर है। हम लोगों को रेनाता इस सरोवर पर नहाने लिवा गयी। यूरोप में गरमी के दिनों में सरोवर या समुद्र के तट पर नहाने का दृश्य अत्यन्त दिलचस्प होता है। भारत के रंग-ढंग में पला हुआ व्यक्ति तो इस दृश्य को देखकर बड़ा अश्लील, निर्लज्जतापूर्ण और दूषित चरित्र का परिचायक मानेगा। देशों की सीमाओं के पार चरित्र और नैतिकता के मूल्यों में कितना अन्तर पड़ जाता है। एक छोटा-सा जॉधिया और चोली पहनकर रेनाता बिना किसी सकोच के पानी में हमारे साथ खेल रही थी, किलकारियाँ मारकर हँस रही थी और भाग-दौड़ रही थी। रेनाता अकेली तो नहीं थी। हजारों युवतियाँ इसी तरह अधनंगी होकर अपने पति या 'बॉय फ्रेंड' या सहोदरियों के साथ घूम रही थी।

तीन दिनों के परदेसी मेहमानों को कुमारी रेनाता और उनकी माँ ने खूब खिलाया-पिलाया और आतिथ्य किया। रेनाता हमारे साथ खूब

प्रभाकर ने सहमति जाहिर की। मैदान में बच्चे खेल रहे थे। हम अन्दर पहुँचे, तो देखा कि एक कक्षा में दो-तीन अध्यापिकाएँ बैठी बातचीत कर रही हैं। हम उन्हींके पास पहुँच गये। ये अध्यापिकाएँ रूसी भाषा समझ सकती थीं। इसलिए हमने रूसी भाषा में बातचीत शुरू की। ये अध्यापिकाएँ अपने स्वभाव और व्यवहार से पोलैण्डवासी जनता का सही प्रतिनिधित्व करती थीं। अत्यन्त मधुर, मिलनसार, सरल, उत्सुक और सहानुभूतिशील। देखते-देखते पचासो प्रश्न पूछ डाले उन्होंने। मैंने अपनी पीठ से भारी थैला उतारकर टेबुल पर रख दिया। प्रभाकर ने अपना थैला अभी पीठ से उतारा नहीं था। हम खड़े-खड़े बातें कर रहे थे। दोपहर के भोजन की छुट्टी का यह समय था।

इतने में विद्यालय के प्रधान अध्यापक महोदय पहुँचे। पता नहीं उनका 'मूड' क्यों खराब था। साधारणतः पोलिश लोगों का जैसा व्यवहार हमें मिलता है, उससे बिल्कुल उल्टा व्यवहार उन्होंने किया। ठिगने और मोटे शरीरवाले इन महोदय ने पोलिश भाषा में गुस्से के साथ कुछ कहा। मैं समझा कि गायद वे हमें अपने कमरे में चलकर बैठने का निमन्त्रण दे रहे होंगे, पर प्रभाकर ने कहा : “वे हमें स्कूल से बाहर चले जाने के लिए कह रहे हैं।” मैं इस पर आश्चर्य कर रहा था। एक स्कूल का प्रधान अध्यापक भारत जैसे दूर देश से आये हुए शान्ति-यात्रियों को यो बाहर निकलने के लिए क्यों कहेगा ? “तुम अपना थैला उठाओ न।”—प्रभाकर ने मुझे फिर समझाया। “तुम ठीक से समझें हो न ?” मैंने प्रभाकर से तर्क किया। इतने में स्वयं प्रधानाध्यापकजीने तर्जनी से बाहर का रास्ता बताते हुए अपना आदेश फिर से दोहराया। पोलिश भाषा और रूसी भाषा में बहुत ज्यादा फर्क नहीं है। हिन्दी और गुजराती की तरह बहुत-से शब्द एक-से ही हैं। इस बार मैं भी स्पष्ट रूप से उनका आशय समझ गया। हम स्कूल से बाहर आ गये।

हमारे मन में कुछ पछतावा हो रहा था। क्या हमने कोई गलती की ? गायद विद्यालय में प्रवेश करते ही हमें प्रधानाध्यापक से पृथ्ना

चाहिए था। खैर, अब क्या हो ? हम विद्यालय के बाहर एक पेड़ के नीचे अखबार बिछाकर बैठ गये। अध्यापिकाएँ और विद्यार्थीगण बहुत ही गर्मिन्दा हो रहे थे। प्रधानाध्यापक जब वापस अपने कमरे में चले गये, तब एक अध्यापिका आयी और कहने लगी : “मुझे बहुत दुःख है कि आपके साथ हमारे विद्यालय में ऐसा व्यवहार हुआ। खासतौर से शान्ति का प्रचार करनेवाले विदेशी अतिथियों के साथ ऐसी घटना का होना अत्यन्त अपमानजनक है। आशा है, आप हमारी मजबूरी समझेंगे और क्षमा करेंगे।” मैंने कहा : “हमें किसी बात का दुःख नहीं है। आप कोई चिन्ता न करें।” यह वृत्तान्त कई छात्रों ने देखा-सुना। पाँचवी कक्षा के एक विद्यार्थी से यह देखा नहीं गया। गले में किताबों का झोला, हाथ में फाउण्टेनपेन और दवात, काले हाफ पैण्ट पर सफेद कमीज और गले में लाल टाई बाँधे हुए यह बालक धीरे से स्कूल से बाहर निकला और बोला “क्या आप लोग मेरे घर चलेगें ?” बड़ा भोला-सा प्रश्न था। उसने बड़े साहस और आत्म-विश्वास के साथ यह सवाल पृच्छा था।

“कहाँ है तुम्हारा घर ?”—मैंने पूछा।

“यहाँ से आधा मील पूर्व दिशा में।”—बालक ने कहा।

“पर हम तो पूर्व से आ रहे हैं और पश्चिम की तरफ जा रहे हैं।”—प्रभाकर ने कहा।

“आप तो देश-दुनिया की पदयात्रा करते हैं, एक मील का चक्कर ही सही।” बालक ने यो गम्भीर होकर उत्तर दिया, मानो वह २२ वर्ष का छोटा बालक नहीं, पूरी उम्र का जवान हो।

“पर मित्र, तुम कौन हो ? क्यों हमें अपने घर ले जाना चाहते हो ?”—मैंने पूछा।

“मैं कौन हूँ, यह आप कैसे समझेंगे ?” बालक हमारी बुद्धि पर और हमारे तर्कों पर विजय पाता जा रहा था। “पर आपको मैं अपना अतिथि बनाना चाहता हूँ। मेरी माँ आपको अपने घर पाकर बहुत खुश होगी। आप वहाँ विश्राम करें। कुछ नाश्ता करें। मुझे बहुत दुःख है कि



मेरे विद्यालय में आपके साथ ऐसा व्यवहार हुआ।” बालक रूसी भाषा में अपनी बातें समझा रहा था। उसने पिछले वर्ष से रूसी भाषा प्रारम्भ की थी। हमने तो इसी वर्ष रूसी भाषा सीखी थी। बालक की मीठी बातें मन में चुभती जा रही थीं।

“अच्छा, चलो सतीश, इसके घर चलेगें।”—प्रभाकर ने कहा। हम चल पड़े। बालक ने अपने घर की कहानी बतायी। भाई, बहन, पिता, माँ सबके बारे में जानकारी दी। फिर वह हमारी यात्रा के बारे में पूछने लगा। “भारत के बच्चे कैसे हैं?” “स्कूल कैसे हैं?” “क्या आपने ताजमहल देखा है?” जब मैंने कहा कि “मैं ताजमहल कई बार देखा चुका हूँ” तो बालक बोला : “मैं ताजमहल देखने के लिए भारत आना चाहता हूँ। आप मुझे अपना पता दीजिये। आपको सूचित करूँगा।” बातों ही बातों में हम उसके घर पहुँच गये। “माँ ! माँ !” वह चिल्ला उठा : “देखो, मेरे साथ कौन आये है?” वह भागकर माँ के गले लिपट गया। “अतिथि ! बहुत दूर देश के अतिथि ! इनके ही देश में है ताजमहल ! जल्दी से चाय तैयार करो। नाश्ता बनाओ।” हम मन्त्र-मुग्ध होकर बालक को देख रहे थे। माँ बहुत खुश हुई। बालक ने हमारा पैर पीठ पर से उतारने में हमारी मदद की।

“हमारे स्कूल में आपके साथ जो गुस्ताखी हुई, क्या आप उसे माफ करोगे?”—बालक ने मेज पर चाय की ग्लास रखते हुए पूछा। मैं तो इस चतुर बालक के कौशल पर और उसके निश्चल प्यार पर निश्चय होता जा रहा था। माफ करने की बात ही क्या है? मैं समझ नहीं पा रहा था ये दो छोर ! एक छोर पर स्कूल का प्रधानाध्यापक और दूसरे छोर पर यह निश्चल बालक ! इतने में बालक के चाचा दैनिक अखबार हाथ में लिये पहुँच गये। ज्योंही वे कमरे में पहुँचे, उन्होंने हमें देखते ही कहा : “पोजनान एक्स्प्रेस के प्रथम पृष्ठ पर आपका चित्र है। आप ही हैं न वे लोग, जो भारत से पैदल शान्ति-यात्रा पर निकले हुए हैं।” आ

उन्होंने अखबार दिखाया । फिर क्या कहना ! बालक उछल पड़ा अपने चाचा के कन्धो पर । फिर वह कहने लगा अपने स्कूल की कहानी ।

हम १०-१५ मिनट के लिए आये थे, २-३ घण्टे लग गये । चाय हुई, नाश्ता हुआ, भोजन हुआ, बहुत बातचीत हुई । बालक हमें छोड़ना ही चाहता था । हमारा भी जी नहीं चाहता था कि हम बालक, उसकी माँ और उसके चाचा के प्रेमपूर्ण आतिथ्य को छोड़कर जायें । सबकी इच्छा थी कि रात को उनके घर ठहरे । पर हमारा आगे जाने का कार्यक्रम निश्चित था । किसी तरह सबसे धमा मॉगकर हम विदा हुए, र हृदय से उस बालक की याद भुला पाना मेरे लिए असम्भव है !

## संस्कृति

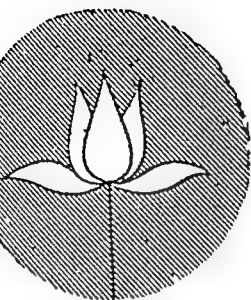
युद्ध और नात्सी-चंगुल ने पोलिश संस्कृति को पूर्णतया अवरुद्ध कर रखा था । जर्मनी के कब्जे में पड़ने से पोलैण्ड की संस्कृति को जो बातक बका लगा, वैसा और किसी देश में नहीं हुआ । लड़ाई के पाँच वर्षों में पोलैण्ड में न तो एक पुस्तक का प्रकाशन हो सका, न एक फिल्म बन सकी, न कोई नाटक खेला गया और न कोई कला-प्रदर्शनी हुई । युद्ध के कारण संस्कृति के क्षेत्र में इतना विनाश, इतनी क्षति और कर्ही ख़ाने को न मिली । अनुमान किया जाता है कि कुल सम्पत्ति का १३ प्रतिशत विनष्ट कर दिया गया था । हजारों सृजनशील लेखकों, कलाकारों और वैज्ञानिकों से हाथ धो देना पड़ा—भौतिक क्षति इतनी हुई कि संस्कृति का लगभग सम्पूर्ण तकनीकी आधार ही नष्ट हो गया ! प्रकाशन और मुद्रण, नाटक और सिनेमाघर, अमूल्य पुस्तकों का संग्रह और ग्रहालय—सभी नष्ट कर दिये गये ।

युद्ध के खात्मे के बाद हर क्षेत्र में शून्य से प्रारम्भ करना पड़ा । राजादी के पहले कुछ साल लोगो ने अपने सांस्कृतिक आधार को फिर से खड़ा करने में लगाया और फिर इसे योग्य बनाने का प्रयत्न शुरू

हुआ कि वह समाजवादी देश की नयी आवश्यकताओं और लक्ष्यों को पूरा कर सके। युद्ध के बाद कला और साहित्य की देखरेख सरकार ने अपने हाथ में ले ली, जिससे एक फल तो यह हुआ कि कला और साहित्य को व्यावसायिक स्तर पर गिरने से बचाया जा सके। रंगमंच के विकास के लिए, विदेशी मुद्रा से फिल्में खरीदने के लिए, जन-संस्कृति के तकनीकी आधार के विकास के लिए और गैर-पेशेवर कलाकारों को आगे बढ़ाने के लिए सरकार ने २० करोड़ का प्रतिवर्ष अनुदान देना शुरू किया। इसके अलावा अनेक टंग के आदर्श स्कूल खोले गये। इन स्कूलों ने पोलैण्ड में संस्कृति को जनप्रिय बनाने में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। इस प्रकार आज फिर से पोलैण्ड साहित्य-संस्कृति के क्षेत्र में घड़िल्ले में प्रगति कर रहा है।

हमने 'नेशा-ओदर' की सीमा तक, जहाँ से जर्मनी की सीमा प्रारम्भ हुई, पोलैण्ड की उदीयमान संस्कृति के दर्शन किये। गाँव-गाँव में पद-यात्रा द्वारा पहुँचकर वहाँ के लोगो के साथ रहना, खाना, पीना, गाना, नाचना और इस तरह उनको निफट से समझना, यही हमारा क्रम था।





विमानित  
जमनी में



## पूर्वी जर्मनी में



हमने ४ जून को पोलैण्ड से पूर्वी जर्मनी में प्रवेश किया और २१ जून तक हम इस देश में रहे। इन १८ दिनों में हमें सर्वत्र जनता का प्यार, स्वागत और आतिथ्य मिला। १८३ मील की हमारी यह यात्रा बहुत व्यवस्थित और सुसंयोजित ढंग से चली। पूर्वी जर्मनी की सर्वाधिक प्रसिद्ध संस्था 'नेशनल फ्रण्ट' ने हमारी यात्रा को सफल बनाने में हर तरह से मदद की। इस संस्था में सभी राजनैतिक पार्टियों के लोग शामिल हैं। इस संस्था का विस्तार गाँव-गाँव में है। प्रतिदिन मायकाल को हमारे पड़ाव पर सभाएँ होती थीं और इन सभाओं में गाँव या नगर के चुने हुए लोग भाग लेते थे। हम उन्हें अपनी शान्ति-यात्रा के अनुभव सुनाते थे और साथ ही शान्ति-आन्दोलन के काम का विस्तार से परिचय देते थे।

पूर्वी जर्मनी समाजवाद तथा कम्युनिज्म की तरफ बढ़ता हुआ देश है। विभाजित जर्मनी की समस्या के कारण वह शीत-युद्ध और तनाव का केन्द्र बना हुआ है। फिर भी हमने पाया कि यहाँ के लोगो के मन में युद्ध के प्रति तीव्र घृणा है। लोग हिटलरवादी फासिज्म से नफरत करते हैं। शान्ति की हार्दिक आकांक्षा लोगो में जाग्रत हुई है। शान्ति-परिपद् यहाँ अच्छी सगठित शक्ति है और शान्ति-आन्दोलन बहुत व्यापक रूप से सर्वत्र फैल रहा है। हम जब भी किसी गाँव या नगर में पहुँचते थे, वच्चे, विद्यार्थी, युवक और सभी प्रकार के स्त्री-पुरुष हमें घेर लेते थे, हमारा स्वागत करते थे और कहते थे : “आप शान्ति के दूत बनकर पश्चिम में जाइये। विशेष रूप से पश्चिमी जर्मनी के लोगो को तथा वहाँ की सरकार को हमारा यह सन्देश दीजिये कि हम हर हालत में शान्ति चाहते हैं। हम अपनी सारी समस्याएँ शान्तिपूर्वक हल कर सकते हैं। जब तक जर्मन-भूमि से सोवियत, ब्रिटिश, फ्रेंच और अमेरिकन सेनाएँ नहीं हटेंगी, तब तक जर्मनी का एकीकरण संभव नहीं होगा। इसलिए सेनावाद से दूर हटकर हमें अपनी समस्याएँ सुलझानी हैं।”

१ जनवरी १९६३ से २१ जून '६३ तक कोई छह महीने हम साम्यवादी क्षेत्र (रूस, पोलैण्ड और पूर्वी जर्मनी) में रहे। विश्व के शान्ति-आन्दोलन में साम्यवादियों का बहुत बड़ा असर और हाथ है। पर साम्यवादी लोग एकपक्षीय निःशस्त्रीकरण (यूनिटेटरल डिसार्मामेंट) की बात में विश्वास नहीं रखते। हमने एकपक्षीय निःशस्त्रीकरण पर भी बल दिया। साम्यवादी देशों में भी हमें अपनी बात का पूरी स्वतन्त्रता के साथ प्रचार करने का अवसर मिला। साथ ही जनता और सरकार, दोनों की तरफ से हमारा स्वागत हुआ।

मध्य यूरोप में यूरोप में बसा हुआ जर्मनी देश केवल अपनी वैज्ञानिक तथा औद्योगिक विशेषताओं के कारण ही प्रसिद्ध नहीं है, बल्कि कविता, गानित्य और विचार के क्षेत्र में भी इस देश का ऊँचा स्थान है।

## मार्क्स की भूमि

साम्यवाद के जनक और १८वीं सदी के उत्तम विचारक मार्क्स ने जर्मनी में ही जन्म लिया था। ससार में पहली बार मार्क्स ने यह घोषणा की : “गरीबी पाप है। गरीबी अमीरो द्वारा बनायी गयी नकली समस्या है। गरीबी को समाप्त करने के लिए संघर्ष करना और गरीब नाम के वर्ग को मिटा देने की लड़ाई लड़ना, गरीबों का अधिकार है।” इस घोषणा ने सारे ससार में हलचल पैदा कर दी।

मार्क्स ने ५ मई १८१८ को एक यहूदी वकील-परिवार में जन्म लिया। बाद में उनके पिता ने क्रिश्चियन धर्म स्वीकार कर लिया था। मार्क्स की शिक्षा-दीक्षा पहले बोन तथा फिर बर्लिन विश्वविद्यालय में हुई। उनके क्रान्तिकारी विचारों और कार्यक्रमों को तत्कालीन सरकार सहन नहीं कर सकी, इसलिए उन्हें ‘देश निकाला’ दे दिया गया। आखिर १८४९ में वे लन्दन जाकर बस गये। वहाँ उन्होंने अपनी जीवन-साधना के निचोड़ के रूप में ‘कैपिटल’ (‘पूँजी’) पुस्तक लिखी। इस विश्व-प्रसिद्ध पुस्तक का ससार की सभी प्रमुख भाषाओं में अनुवाद हुआ है। सन् १८८३ में लन्दन में उनकी मृत्यु हुई।

## गेटे की भूमि

महाकवि गेटे की जन्मभूमि भी तो जर्मनी ही है। गेटे का व्यक्तित्व अलग ही ढंग का था। मार्क्स क्रान्ति के तरीके का निर्माण करनेवाले थे, गेटे ये कला के उपासक। उनकी कल्पनाशक्ति, उनके हृदय की कोमलता और उनकी भावुक अनुभूतियों ने उन्हें साहित्य-संसार में अमर कर दिया। वे चित्रकार थे, राजनीतिज्ञ थे, वैज्ञानिक थे, पर सबसे ज्यादा वे कवि थे। २८ अगस्त १७४९ में फ्रांकफर्ट में एक वकील



जो आज सोवियत-संघ और पोलैण्ड के अन्तर्गत है। अभी साम्यवादी जर्मनी और फेडरल जर्मनी का प्रश्न ही मुख्य है, क्योंकि इन दोनों हिस्सों की जनता जर्मनी का एकीकरण चाहती है। सेना, हथियारबन्द युद्ध और हिटलरवाद ने जर्मनी को चार टुकड़ों में बाँट दिया, फिर भी अभी तक जर्मनी के नेताओं का विश्वास सेनावाद तथा हथियारवाद पर बैठा ही है। जर्मनी के शासक अभी भी अपने देश को शस्त्र-सन्नद्ध करते जा रहे हैं। पूर्वी जर्मनी के शासक कहते हैं कि अगर हम सैनिक तैयारी न रखें, पूँजीवादियों की फासिस्ट सेना किसी भी क्षण हमारी साम्यवादी समाज-व्यवस्था को छिन्न-विच्छिन्न कर देगी। इसी तरह पश्चिमी जर्मनी के शासकों को यह चिन्ता है कि यदि वे विदेशी सेनाओं को जर्मनी से बाहर कर देंगे या नाटो की सैनिक-सन्धि से अलग हो जायेंगे, तो रूस की सेनाएँ उनके स्वातन्त्र्य को समाप्त करके उन पर शासन करने लगेंगी। इस तरह एक-दूसरे के प्रति भयङ्कर भय और अविश्वास की स्थिति व्याप्त है।

यह कहना ठीक नहीं कि पूर्वी जर्मनी में केवल साम्यवादी पार्टी का शासन है। यहाँ की लोकसभा में पाँच पार्टियाँ हैं और पाँचों पार्टियाँ 'बहुदलीय शासन' के सिद्धान्त के आधार पर राज्य चलाती हैं। इन पाँचों पार्टियों में सबसे बड़ी पार्टी समाजवादी एकता पार्टी है, जो सन् १९४६ में साम्यवादी पार्टी और समाजवादी जनतन्त्र पार्टी को मिलाकर स्थापित की गयी थी। इसके अलावा किसान पार्टी, क्रिश्चियन पार्टी आदि चार अन्य पार्टियाँ भी हैं, जो अपने-अपने वर्गों के हित संरक्षण करती हैं। जिन-जिन प्रश्नों पर ये पाँचों पार्टियाँ एकमत होती हैं और जिन कार्यक्रमों को सर्वसम्मति में स्वीकार किया जाता है, उतने ही कार्यक्रम अमल में आते हैं। समाजवादी एकता पार्टी को हम साम्यवादी पार्टी कह सकते हैं। यह पार्टी व्यक्तिगत उद्योग, चर्च आदि में कोई विश्वास नहीं करती, पर अन्य पार्टियों के सहमत न होने तक व्यक्तिगत उद्योग, चर्च आदि के लिए भी यहाँ ध्यान है। इसी प्रकार शिक्षण की सम्पूर्ण व्यवस्था का निर्णय भी यह बहुदलीय सरकार ही करती है।

## साम्यवादी शिक्षण

हमने जितने विद्यालय देखे, उनमें शिक्षण के साथ उद्योग का विशिष्ट स्थान हमने पाया। श्रम ही जीवन का सच्चा मूल्य है और बिना श्रम किये, समाज पर भार बनकर बिताया जानेवाला जीवन सामाजिक अपराध है, इस प्रकार की भावना का विकास बचपन से ही होने लगता है। इसीलिए केवल किताबों का बोझ दिमाग पर लादते रहने की शिक्षण-विधि का उन्मूलन करके प्रत्येक विद्यालय में उद्योगशाला, प्रयोगशाला और कर्म के माध्यम से शिक्षण को विशेष महत्व दिया जाता है। उत्पादन का ढग, मशीनों का संचालन, विज्ञान का उद्योगों के साथ सम्बन्ध आदि प्रक्रियाओं का शिक्षण प्रत्येक विद्यालय का आवश्यक अंग है। हमने अनेक विद्यालयों में देखा कि किस तरह पॉचवी-सातवी कक्षा के विद्यार्थी भी छोटी-छोटी मशीनों का संचालन बड़ी चतुरता के साथ करते थे। सातवी कक्षा से बारहवी कक्षा तक के विद्यार्थी सप्ताह में एक-दो दिन, विद्यालय में जाकर पढ़ने के बजाय, किसी कारखाने में या खेत पर जाकर व्यावहारिक और सक्रिय शिक्षण प्राप्त करते हैं। विद्यार्थी लोग इस दृष्टि से भी विचार करते हैं कि आगे चलकर उन्हें किस प्रकार के व्यवसाय में जाना है। वे अपनी रुचि के अनुसार यदि किसी काम का चुनाव करते हैं, तो उन्हें उसी काम का विशेष प्रशिक्षण दिया जाता है। उद्योग-सम्पन्न पूर्वी जर्मनी में ६८ प्रतिशत लोग उद्योग, व्यापार और यातायात के काम में लगे हैं और केवल १८ प्रतिशत कृषि और वन-विभाग में लगे हैं।

## सहयोगी-कृषि

भूमि पर से वैयक्तिक कृषि समाप्त करके सम्पूर्ण देश की ग्रेती को 'सहयोगी-कृषि' का रूप दे दिया गया है। सहयोगी-कृषि का यह प्रयोग

लगभग सभी विद्यार्थी वाल-संगठन ( पायोनियर ) या युवक-संगठन के सदस्य होते हैं। ये संगठन विविध खेल-कूदों और प्रतियोगिताओं आदि का आयोजन करते हैं। उच्च शिक्षण प्राप्त करनेवालों के लिए न केवल शिक्षण ही मुफ्त है, बल्कि ९० प्रतिशत छात्रों को छात्रवृत्ति मिलती है। माता-पिता बच्चे के समुचित शिक्षण के लिए पूरी तरह निश्चित रहते हैं। १८ साल से कम उम्र का बच्चा किसी भी घरेलू या सार्वजनिक, खेती या कारखाने के काम में वेतन देकर मजदूर या नौकर नहीं रखा जा सकता। नाबालिग बच्चे को काम पर लगाना कानूनन जुर्म है। बालक का एक ही काम है—अपने शरीर और मस्तिष्क का समुचित विकास करना। बाल-विकास का यह प्रबन्ध कितना संगठित, संयोजित, व्यवस्थित और वैज्ञानिक है। जन्म से ही बच्चे की ओर पूरा-पूरा ध्यान दिया जा सके, इसलिए पहले बच्चे के जन्म पर राज्य की ओर से माता को ५०० जर्मन मार्क मिलते हैं और पाँचवें बच्चे तक यह रकम बढ़ते-बढ़ते १००० जर्मन मार्क तक पहुँच जाती है। प्रायः हर छोटे-छोटे गाँव में किडरगार्टन स्कूलों की व्यवस्था है, जहाँ बच्चों के खाने, सोने, खेलने आदि का समुचित प्रबन्ध रहता है। हमने अनेक किडरगार्टन स्कूल देखे। वहाँ के बच्चों में पहुँचकर चित्त प्रसन्नता से खिल उठता था।

राजनीतिक परिस्थिति की विचित्रता ने पूर्वी जर्मनी में अजीब परिस्थिति पैदा कर दी है। पश्चिमी जर्मनी की ओर से पूर्वी जर्मनी के बारे में भयंकर प्रचार चलता है। वह एकदम सही तो नहीं है, पर उम्र में कुछ-न-कुछ सत्याग अवश्य है। अनेक परिवारों के कुटुम्बी पश्चिमी जर्मनी में हैं, पर अपने परिवारवालों से अलग हो गये हैं। उनमें यह भावना तीव्रता से व्याप्त हो रही है कि हम जहाँ चाहें वहाँ जाने के लिए स्वतन्त्र नहीं हैं। पूर्वी जर्मनी में शिक्षण की और चिकित्सा की अच्छी सुविधाएँ हैं। कारखाने के श्रमिकों की हालत भी सन्तोषजनक रूप से अच्छी है। पर वहाँ के लोग कहते हैं कि यह ठीक है कि हम एक साम्यवादी आदर्श की ओर बढ़ रहे हैं, हमारे समाज की प्रगति एक मित्रान्त और विचार

के आधार पर हो रही है, किन्तु उसका परिणाम यह तो न हो कि हम जहाँ जाना चाहे वहाँ न जा सकें, अपने कुटुम्बियों से न मिल सकें और अपनी वैचारिक भूख को तृप्त न कर सकें। पूर्वी जर्मनी की शासन-व्यवस्था में सामूहिक नेतृत्व का सिद्धान्त स्वीकार किया गया है। पूरे देश का एक राष्ट्रपति होने के बजाय २४ सदस्यों की एक सर्वोच्च राष्ट्रीय परिषद् का निर्माण किया गया है और समस्त सर्वोच्च वैधानिक अधिकार इस परिषद् के हाथ में हैं। परन्तु इस परिषद् के अध्यक्ष वाल्टर उलब्रिस्ट का जबर्दस्त व्यक्तित्व पूरे शासन पर छाया हुआ है और उनकी ताकतवर आवाज के सामने और किसीकी नहीं चलती। उनका शासन चलाने का ढंग बहुत सख्त माना जाता है और इसीलिए पूर्वी जर्मनी के कुछ लोगो से हमने सुना कि उनकी “अनावश्यक सख्ती के नीचे लोग घुटन महसूस कर रहे हैं। यदि यह अनावश्यक सख्ती न बरती जाय, तब भी साम्यवाद की प्रगति में कोई बाधा नहीं आयेगी।”

पूर्वी जर्मनी की लोकसभा के ४६६ सदस्य हैं। इनमें से किसीके लिए भी राजनीति पेशा नहीं है। वे कहीं न कहीं के स्थायी कार्यकर्ता हैं और लोकसभा के कार्य-काल तक के लिए वे छुट्टी लेते हैं। उन्हें अपने मतदाताओं के सामने निजी काम का पूरा लेखा-जोखा देना पड़ता है और भविष्य के कार्यक्रम की रूपरेखा देनी पड़ती है। प्रतिदिन कुछ घण्टे उन्हें सार्वजनिक सलाह-मशविरा के लिए खर्च करने पड़ते हैं। अपनी जिम्मेदारी के प्रति न्याय न करने से मतदाता उन्हें लोकसभा की सदस्यता से खारिज करके दूसरा सदस्य चुन सकते हैं। पूर्वी जर्मनी की जनता के साथ हमारा जितना सम्पर्क आया, उसमें हमें यह अनुभव हुआ कि लोगो में सामाजिक उत्तरदायित्व और जिम्मेदारी की भावना का आश्चर्यजनक विकास हो रहा है। हम किसी विद्यालय में जाते थे या कारखाने में, गाँव में जाते थे या शहर में, हमें यही महसूस होता था कि लोगो में एक विशिष्ट सैद्धांतिकता तथा आदर्शवादिता का विकास हो रहा है। वैज्ञानिक शिक्षण का समाज पर यह अनिवार्य प्रभाव पड़

रहा है। न्यायाधीशों के चुनाव की परम्परा का इस दृष्टि से और भी अधिक महत्व है। सन् १९५९ तक न्याय-मंत्रालय की ओर से न्यायाधीशों की विमुक्ति की जाती थी। पर उसके बाद सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश का चुनाव लोकसभा करती है और बाकी देगभर में न्यायाधीशों का त्रिवर्षीय चुनाव होता है।

इस सबके बावजूद विभाजित जर्मनी और विभाजित बर्लिन का खतरा तो सिर पर लटक ही रहा है। चार बड़ी शक्तियाँ जर्मनी के दोनों हिस्सों पर छापी हुई हैं। पश्चिमी जर्मनी के एक गान्ति-कार्यकर्ता ने हमसे कहा : “हमारा देश विज्ञान, तकनीक और उद्योग में ससार में उल्लेखनीय स्थान रखता है, फिर भी हम अपना आत्मविश्वास खो चुके हैं। युद्ध से हमारा जो नुकसान हुआ, वह तो हमने बराबर कर लिया, पर युद्ध की हार के बाद हमने जो आत्मविश्वास खोया, वह फिर नहीं ला सके। हमें यह भरोसा नहीं रहा कि हम अपनी रक्षा स्वयं कर सकेंगे। यही कारण है कि हम अपनी धरती पर विदेशी सेनाओं को और विदेशी टैंकों को सहन कर रहे हैं।” जर्मनी दो हिस्सों में तो बँटा है ही, इसके अलावा दोनों हिस्सों में अलग-अलग ढंग की समाज-व्यवस्था और शासन-पद्धति भी चल रही है। इसलिए जर्मनी के ऐक्य के लिए दोनों हिस्सों के राजनेताओं को आपस के व्यवहार में निन्दा, आक्षेप और कुप्रचार के स्थान पर मधुर व्यवहार तथा सही समझ को अपनाना होगा। जब तक दोनों ओर के राजनेता निकट नहीं आयेंगे और बातचीत के लिए तैयार नहीं होंगे, तब तक सारी दुनिया के चाहने के बावजूद एकता की कोई सम्भावना नहीं। मेनाचाट आर युटोन्माट पर भरोसा करके जर्मन लोगों ने ही जर्मनी के टुकड़े होने की बुनियाद रखी। अब जर्मन जनता ही मेनाचाट के स्थान पर विश्वास, प्रेम और आपसी मोहार्द पर भरोसा करके जर्मन एकता की बुनियाद रखेगी। जर्मन जनता के बिना और दूसरा क्या है, जो जर्मन-संघ बन सके ? जर्मनी का कोई एक हिस्सा दूसरे हिस्से का गिनाई नहीं करेगा। जर्मन का कोई एक हिस्सा दूसरे हिस्से का गिनाई नहीं करेगा।

करने के लिए या अपनी समाज-पद्धति दूसरे पर लादने के लिए सैनिक प्रयत्न करेगा, तो उसका परिणाम होगा तीसरा अणु-युद्ध और सारे संसार की भस्माहुति ! ऐसे भयंकर विन्दु पर जर्मनी आज खड़ा है। जर्मन धरती ने दो महायुद्ध झेले हैं। उनकी पुनरावृत्ति को रोकने का एक ही मार्ग है : निःशस्त्रीकरण। दोनों जर्मनी यदि चाहे तो नाटो और वारसा सैनिक संगठनों से अलग होकर, मध्य यूरोप को अणु-अस्त्र-मुक्त क्षेत्र बनाकर और चार बड़ों की सेनाओं से जर्मन धरती को खाली करवाकर तीसरे महायुद्ध की सम्भावनाओं को अपनी भूमि से हटा सकती है। एक-दूसरे पर दोषारोपण करते हुए अपने को निर्दोष मान लेने का सहज मानवीय स्वभाव है। पूर्वी जर्मनी की दृष्टि से पश्चिमी जर्मनी दोषी है और पश्चिमी जर्मनी की दृष्टि में पूर्वी जर्मनी। इस तरह समस्या का कभी अन्त नहीं हो सकता और ऐसी हालत में जर्मनी का एकीकरण भी असंभव ही है।

पूर्वी जर्मनी में उद्योग, कृषि आदि सभी व्यवस्था समाजवादी प्रणाली पर आधारित है। शिक्षण का आधार भी समाजवाद ही है। शिक्षण का मुख्य उद्देश्य यह है कि बालक को ऐसा शिक्षण मिले, ताकि वह व्यक्ति-वादी या पूँजीवादी न बनकर समाजवादी दृष्टि सीखे। शिक्षण में विज्ञान का आधार प्रमुख है। पूर्वी जर्मनी में हमने शिशु-शाला में लेकर उच्च विद्यालयों तक का अवलोकन किया। जब कभी भी रास्ते में चलते समय हमें कोई विद्यालय मिलता, हम उसमें अवश्य पहुँचते। विद्यालयों में अक्सर हमारी सभाएँ होती। अध्यापकों के साथ चर्चा भी होती। हमने सोवियत संघ, पोलैण्ड और पूर्वी जर्मनी, इन तीन साम्यवादी देशों की यात्रा में पाया कि इन देशों में बालक के समुचित विकास और वैज्ञानिक शिक्षण की ओर समाज विशेष रूप से ध्यान देता है। बालक समाज की ओर राष्ट्र की अमूल्य सम्पत्ति बनकर यहाँ रहता है और उसी स्तर पर बालक की सार-संभाल भी होती है। उसके प्रारम्भिक शिक्षण में स्कूल विद्यालय तक के शिक्षण की अनिवार्य और सुष्ठु व्यवस्था करना राज्य का उत्तरदायित्व है।

## बर्लिन और ब्रेख्ट



स्प्रै नदी और विभिन्न जलाशयों से घिरा हुआ बर्लिन, मध्य यूरोप का सबसे बड़ा और सुन्दरतम नगर है। वाग-वगीचों और हरे-भरे पेड़ों से सजी हुई यह भूतपूर्व जर्मन-राजधानी व्यापार, उद्योग, विज्ञान और शिक्षा का प्रसिद्ध केन्द्र रही है। यहाँ पर ब्रेख्ट का स्मरण हो आना स्वाभाविक ही है। “इंग्लैंड, फ्रांस, डेन्मार्क, रूस, स्वीडन, फिनलैंड” १९३३ से ’४१ तक ब्रेख्ट नात्सी जर्मनी से निष्कासित होकर इन देशों में रहते-घूमते रहे, लिखते रहे और अपने ढंग से फासिस्ट शक्तियों और प्रवृत्तियों के खिलाफ लड़ते रहे। उनके सबसे महत्वपूर्ण नाटक ‘मदर करेज एंड हर चिल्ड्रेन’ में मदर करेज भी अपनी ठेला-गाड़ी में एक दूकान सजाकर युद्ध-स्थलों पर सेनाओं के साथ घूमती है, युद्ध की विभीषिकाओं को देखती-भोगती है और अपने दोनों लड़कों और लड़की कात्रिन को खो देती है। वह भी सेनाओं के साथ कई देशों में जाती है, और क्रूर दुनिया का अपनी समस्त शक्ति से प्रतिरोध करना चाहती है।

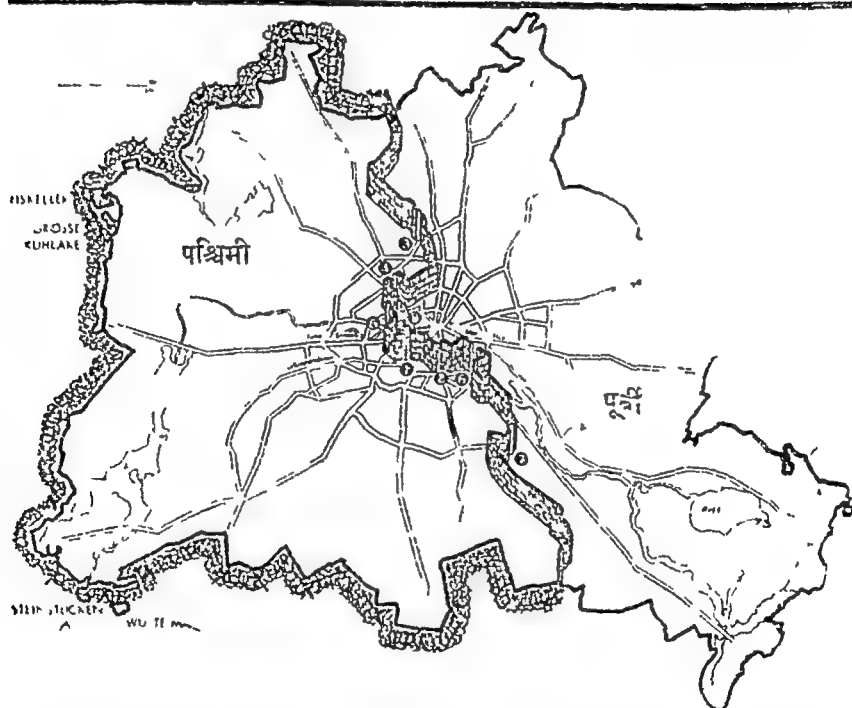
पश्चिम के आधुनिक रंगमंच में ब्रेख्ट का नाम और काम दोनों अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं—उन्होंने एक नये प्रकार के रंगमंच के लिए नाटक तो लिखे ही, नये प्रकार के रंगमंच को भी रूप देने का प्रयत्न किया। सन् १९४८ में पूर्वी जर्मनी सरकार की सहायता से ‘बर्लिनर ऑसॉल्ल’ की स्थापना करके उन्होंने नाटकों के प्रदर्शन में क्रान्तिकारी परिवर्तन किये। इस काम में उनकी पत्नी, अभिनेत्री हेलेन वाइगेल ने उनकी बड़ी मदद की। और सन् ५६ में ब्रेख्ट की मृत्यु के पश्चात् उन्होंने ‘बर्लिनर ऑसॉल्ल’ के माध्यम से ब्रेख्ट के नाटकों के महत्वपूर्ण प्रदर्शन जारी रखे हैं। कहते हैं कि ‘मदर करेज’ की भूमिका में जितना अच्छा अभिनय हेलेन वाइगेल ने किया है, अभी तक उतना अच्छा अभिनय कोई दूसरा नहीं कर सका है। अभिनय ही नहीं, ‘बर्लिनर ऑसॉल्ल’ ने प्रदर्शन के और भी ज़ामाने स्थापित किये हैं, उनका जोड़ मिलना मुश्किल है।”

हिटलर के सेनावाद की सम्पूर्ण कथा इस नगरी की धरती पर लिखी हुई है और आज यह मनोहारी नगरी दो टुकड़ों में बँटकर सहमी हुई-सी खड़ी है। अमेरिकी, सोवियत, फ्रांसीसी और ब्रिटिश सेना के जत्थे-चारों ओर चक्कर लगाते हुए दीख पड़ते हैं। हथियारों और अन्य सामरिक साधनों से भरे हुए टैंक तने हुए खड़े हैं। हिटलर के सेनावाद और युद्ध-प्रेम ने बर्लिन के शान्ति-प्रेमी साधारण नागरिकों के सिर पर यह एक ऐसा बोझ लाद दिया है, जो उतारे नहीं उतरता। यहाँ की सारी समस्या के मूल में है—हिटलर का सेनावाद। उस सेनावाद ने लाखों निरीह मनुष्यों का सहार किया, जर्मनी के टुकड़े किये, बर्लिन को चार हिस्सों में बाँटा और बर्लिन के पश्चिमी हिस्से को दीवार और कॉटो से घेरने की परिस्थिति पैदा की। आज ४० लाख बर्लिनवासी इन अभिशापों को भुगतने के लिए मजबूर हैं। पूर्वी बर्लिन का कोई भी व्यक्ति पश्चिमी बर्लिन में नहीं जा सकता और पश्चिमी बर्लिनवाला पूर्वी बर्लिन नहीं आ सकता। किसीका भाई, किसीकी बहन, किसीका पिता यदि दूसरे हिस्से में रह गया है, तो वह नजदीक होकर भी परदेशी है। युद्ध, सेना और हथियारपरस्ती के प्रत्यक्ष परिणामों के दर्शन हमने बर्लिन में किये।

इतना सब होने पर भी क्या बर्लिन के नेताओं का और शासकों का विश्वास युद्ध, सेना तथा हथियारों पर से उठ गया है? जिस सेनावाद के भयङ्कर पापों का परिणाम वे खुद देख चुके हैं, उस सेनावाद से विरत होने के लिए क्या अब भी वे तैयार हैं? “आज पूर्वी जर्मनी अलग है, पश्चिमी जर्मनी अलग है, बर्लिन अलग है। इन सबके एकीकरण में सबसे बड़ी बाधा क्या है? सेनावाद पर विश्वास और आपसी फूट, ये दो ऐसी बड़ी बाधाएँ हैं, जिनके कारण समस्या की गॉठ दिन-दिन कसती ही जा रही है। सम्पूर्ण बर्लिन राजनीतिक होड़ के दौंच पर चढ़ा हुआ है। बर्लिन के राजनीतिज्ञ चार बड़ी शक्तियों के हाथ के गिल्ले बने हुए हैं।”



७ जून को जब हम बर्लिन पहुँचनेवाले थे, उसी दिन सबेरे कॉलेज के एक विद्यार्थी ने बर्लिन-समस्या की पृष्ठभूमि हमें समझायी। यह विद्यार्थी कोई ७-८ मील हमारे साथ पैदल चला और उसने बर्लिन के विभाजन के कारणों का सूक्ष्म विवेचन किया। पूर्वी बर्लिन की सीमा पर जब हम लोग पहुँचे, तो सोवियत-सैनिकों और पूर्वी बर्लिन के सैनिकों ने हमारा स्वागत किया। हमने उनसे कहा : “आप लोग हमारा स्वागत



कर रहे हैं, पर हम तो सेना और हथियारों के विरोधी हैं। हमारी यात्रा में आपको दिलचस्पी क्यों है ?” सैनिकों ने बड़ा दिलचस्प उत्तर दिया : “हमें इन हथियारों से कोई प्यार नहीं। हम भी समस्याओं का शान्तिपूर्ण हल चाहते हैं। आप लोग आगे पश्चिमी बर्लिन और पश्चिमी जर्मनी जा रहे हैं। वहाँ के सेनापरस्त शासकों को समझाइये। यदि वे मान जायें

तो इन हथियारों को फेंककर हम भी आपके साथी बन सकेंगे। हम सैनिक तो हैं, पर आक्रमण के लिए नहीं, केवल सुरक्षा के लिए।” आज जिस संसार में पचपन हजार करोड़ रुपया सेना और हथियारों पर बहाया जा रहा है, उस संसार में थोड़े-से शान्तिवादियों की आवाज नकारखाने में तूती की आवाज ही साबित हो रही है। परन्तु यदि सैनिकों का मन बदल जाय और वे एक दिन हथियार फेंकने की बात सोचने लगे, तो यह मानना चाहिए कि युद्धपरस्ती के दिन बिटा हो रहे हैं।

बर्लिन नगरी आज विभाजित होकर शीत-युद्ध का केन्द्र बनी हुई है। श्री अडनावर के कथनानुसार “सवाल पूर्वी और पश्चिमी जर्मनी के एकीकरण का नहीं है, बल्कि पूर्वी जर्मनी को आजादी दिलाने का है।” पश्चिमी जर्मनी के सुरक्षा मन्त्री श्री जोसेफ स्ट्राउस्स तो स्पष्ट कहते हैं : “पूर्वी और मध्य यूरोप के सभी देशों की आजादी के लिए हम प्रयत्न कर रहे हैं।” पश्चिमी जर्मनी के नेतागण साम्यवाद को हराने के लिए बर्लिन को सबसे महत्वपूर्ण मोर्चा मानते हैं। समस्या की गहरी बुनियाद यही है। अन्ततोगत्वा बर्लिन और जर्मनी के विभाजित होने की समस्या नहीं, बल्कि समस्या है दो विचारों के इस संघर्ष की। विचारों के इस संघर्ष में आम जनता का कितना हाथ है, यह कहना कठिन है। आम जनता बर्लिन और जर्मनी का एकीकरण चाहती है, इसमें कोई सन्देह नहीं। पूर्वी जर्मनी के कई जिम्मेदार लोगों ने हमसे कहा कि “भले ही हमारे हिस्से में समाजवाद चलता रहे और पश्चिमी हिस्से में पूँजीवाद चलता रहे, परन्तु केन्द्रीय शासन एक हो। फेडरेशन एक बने, ऐसी हमारी चाह है।” पर आम जनता राजनैतिक प्रश्नों के समाधान में नेताओं पर ही निर्भर हो जाती है और उन नेताओं ने आज जर्मनी के एकीकरण को असाध्य बना दिया है। पश्चिमी बर्लिन के आर्थिक अनुसन्धान विद्यापीठ के डॉ॰ आर्नडट ने कहा कि “बहुत-से लोगों में इस प्रकार के रुख ने घर कर लिया है कि ‘देखो और इन्तजार करो’। इन लोगों की मनःस्थिति बहुत डोवाडोल है।”

“विचारो का सघर्ष समस्या का आधार हो और उसके आधार पर वैचारिक विश्लेषण चले, यह बात तो समझ में आ सकती है, पर क्या विचारों की विजय के लिए सैनिक तैयारियों की जरूरत है ? किसानों और श्रमिकों के कंधों पर अरबों-खरबों रुपये का बोझ डालकर क्या विचारों की हार-जीत के लिए ब्रह्माने की जरूरत है ?” ये प्रश्न हमने पूर्वी जर्मनी के विदेश मंत्री डॉ० लोथर वोल्स के सामने रखे। डॉ० वोल्स ने कहा : “हमने पूर्वी जर्मनी की सीमा से हिटलरशाही को जड़मूल से समाप्त कर दिया है। फासिस्ट कमाण्डरों का भी उन्मूलन कर दिया है। हम किसी भी मामले को सुलझाने के लिए किसी भी तरह की हिंसा का प्रयोग नहीं करना चाहते। समाजवाद की विजय के लिए कभी भी युद्ध और सेना की आवश्यकता हम नहीं मानते। पर आज हमारे सामने मजबूरी की एक विचित्र स्थिति है। हमने पश्चिमी जर्मनी की सरकार के सामने अनेक प्रस्ताव रखे हैं। हमने यह भी कहा है कि हम वारसा-सन्धि से अलग हो जाते हैं, आप भी ‘नाटो’ से अलग हो जायें। पर हमारे प्रस्तावों का कोई उत्तर नहीं। ऐसी स्थिति में हम क्या कर सकते हैं ?”

डॉ० वोल्स ने अपनी सप्तसूत्रीय शान्ति-योजना के बारे में बताते हुए कहा कि इस योजना में किसी भी परिस्थिति में हिंसा का सहारा न लेना, समस्त सैनिक सधियों से जर्मनी को मुक्त करना, युद्ध-प्रचार पर पाबन्दी लगाना, पिछले महायुद्ध के सचालकों को शासन और सार्वजनिक क्षेत्र से हटाना आदि बातें भी शामिल हैं। विभाजित जर्मनी और बर्लिन की समस्या के समाधान के लिए सत्याग्रह और अहिंसात्मक सघर्ष का रास्ता कैसे और कहाँ तक अपनाया जा सकता है, इस पर भी हमने डॉ० वोल्स से चर्चा की।

पश्चिमी बर्लिन में हम किसी भी उत्तरदायी अधिकारी से मिलने में असमर्थ रहे। नगर के मेयर श्री विलीब्रॉट अमेरिका गये हुए थे। अन्य अधिकारी वहीं थे। हम एक द्वार से दूसरे द्वार पर भटकते फिरे। हमने

पूरे तीन दिन इसी तरह भटकने में और प्रतीक्षा करने में बिता दिये। कुछ साधारण नागरिकों से हमारी बातचीत हुई।

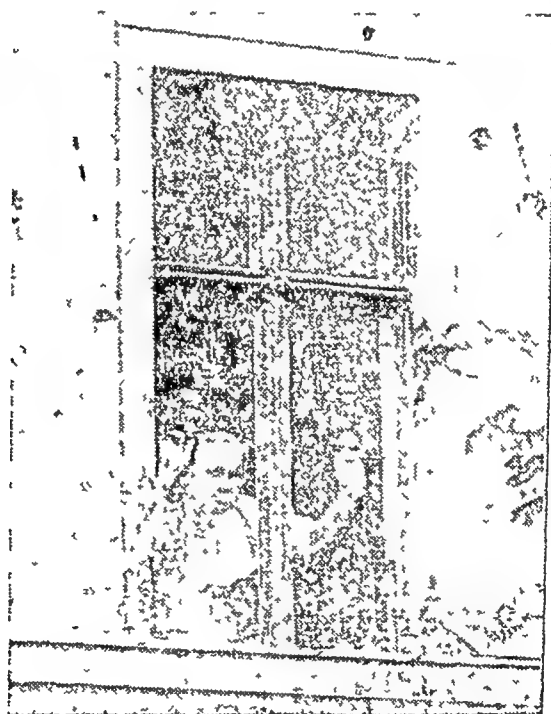
पूर्वी बर्लिन और पश्चिमी बर्लिन में एक प्रत्यक्ष अन्तर तुरन्त दृष्टि-गोचर होता है। पश्चिमी बर्लिन की दूकानों में दुनियाभर का सामान उपलब्ध है। सामान बहुत सस्ता भी है। पश्चिमी बर्लिन के लोगों के लिए विशेष 'कमी' और सरकारी अनुदान के साथ विविध आकर्षक सामग्री सुलभ है। धुआँधार विज्ञापन की चमक में किसी भी यात्री की आँखें चौंधिया जाना मुश्किल नहीं। पर जो आदमी यह जानता है कि यह सारी बिजली की चमक-दमक और विज्ञापनवाजी किसके आधार पर खड़ी है और इसका असली मूल्य चुकानेवाला श्रमिक और किसान किस दशा में है, वह इस चकाचौंध के चक्कर में नहीं आयेगा। कारों और मोटरों की दौड़ यहाँ काफी तेज है, पर हम जिस भोजनालय में खाना खा रहे थे, वहाँ कुछ पेशेवर मिखारी भी दीख पड़े। एक पूँजीवादी समाज-रचना का यह दोषपूर्ण दुष्चक्र है। एक ओर अत्यन्त भव्य विलासिता और दूसरी ओर फटेहाल मनुष्यों की दुर्दशा !

## दीवार

पश्चिमी बर्लिन के लोग 'दीवार' से बहुत नाराज हैं। यह वह दीवार है, जिसने पूरे पश्चिमी बर्लिन को अच्छी तरह से जकड़ लिया है। "पश्चिमी बर्लिन को मोर्चा बनाकर वहाँ से मनचाही प्रवृत्तियाँ न चलायी जा सकें", इसके लिए पूर्वी जर्मनी की सरकार ने इस 'दीवार' के रूप में कसकर पाबन्दी लगा दी है। पश्चिमी बर्लिन में हमने एक जर्मन परिवार में अतिथि बनकर तीन दिन बिताये। वास्तव में पूर्वी बर्लिन या पश्चिमी बर्लिन के साधारण नागरिकों के स्वभाव में कोई अन्तर नहीं। इस परिवार में हमें वही प्यार, अपनत्व और सौहार्द मिला, जो हमें दूसरी जगहों पर भी मिलता रहा है। साधारण नागरिक जानते हैं कि इस समस्या के

समाधान के लिए बड़ी उदारता, विश्वास, गम्भीरता और सचाई की आवश्यकता है। एक-दूसरे पर कीचड़ उछालते रहने से, छीटाकशी करते रहने से, एक-दूसरे को भड़कानेवाली बातें करते रहने से जर्मनी का एकीकरण कभी भी सम्भव नहीं।

पूर्वी बर्लिन में शान्ति-परिषद् के नेताओं और कार्यकर्ताओं के साथ हमारी विस्तृत चर्चा हुई। आणविक युद्ध के खतरे से संसार को बचाने के



पश्चिमी बर्लिन आने के लिए उत्सुक, पर मजबूर !

लिए जर्मनी के साथ शान्ति-संधि का सम्पन्न होना बहुत आवश्यक है और उसके लिए दोनों जर्मनी की सरकारों को आपस में सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध कायम करके अनुकूल परिस्थिति पैदा करनी चाहिए, ऐसी बात बार-बार महसूस की जा रही थी। शान्ति-परिषद् के मित्रों ने कहा कि

दोनो जर्मन सरकारों को चाहिए कि अपनी सेनाओं को अधिकाधिक शस्त्र-सम्पन्न करने की दिशा में वे न बढ़ें और उन्हें आणविक शस्त्रास्त्रों से सजित न करें। उन्होंने यह भी माँग की कि इसके साथ ही मध्य यूरोप में आणविक शस्त्रास्त्रों को वर्जित किया जाय और उसे 'अणुमुक्त क्षेत्र' घोषित किया जाय। उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि ऐसा न करने पर हथियारों की होड़ कहीं समाप्त नहीं होगी।

युद्ध समाप्त हुए १६ वर्ष बीत गये, पर अभी भी युद्ध के पापों का भोग पूरा नहीं हुआ। सात करोड़ जर्मन जनता पर अभी भी असुरक्षा का कृत्रिम भूत सवार है। ससारभर के लोग 'जर्मन-समस्या' तथा 'वर्लिन-समस्या' की गम्भीरता को भलीभाँति अनुभव करते हैं। "जर्मनी आज भी क्यों विभक्त है?" "वर्लिन का एक हिस्सा आज भी कौंटों से क्यों घिरा हुआ है?" "आज भी चारों तरफ़ टेक क्यों गड़गड़ाते रहते हैं?" इन प्रश्नों का ठीक-ठीक उत्तर लोगों के पास नहीं है।

सन् १९४५ में विजयी शक्तियों ने पूरे देश को चार विभागों में विभाजित किया। सन् १९४९ तक वैसा ही चलता रहा। बीच-बीच में इन चारों 'बड़ों' के बीच अनेक संधियाँ चलती रही। सन् १९४९ में 'जर्मन फ़ेडरल रिपब्लिक' (पश्चिमी जर्मनी) तथा 'जर्मन डेमोक्रेटिक रिपब्लिक' (पूर्वी जर्मनी), इस तरह दो स्टेट बन गये। ब्रिटिश, फ़्रेंच और अमेरिकन सेना का जिस हिस्से पर कब्ज़ा था, वहाँ 'जर्मन फ़ेडरल रिपब्लिक' बना और सोवियत-मेना का जिस हिस्से पर कब्ज़ा था, वहाँ 'जर्मन डेमोक्रेटिक रिपब्लिक' बना। इस तरह सवा पाँच करोड़ जनता एक तरफ़ तथा पौने दो करोड़ जनता दूसरी तरफ़ बँट गयी। दोनों तरफ़ गरम वातावरण है, जो किसी भी समय भभक सकता है।

यह ठीक है कि पश्चिमी जर्मनीवाले पूर्वी जर्मनी की सरकार को मान्यता नहीं देते। पर वहाँ की जनता, जो अपने ही देश में बेगाना बनी हुई अलग-थलग पड़ी हुई है, उसके साथ मिल जाने के लिए अर्थात् दोनों जर्मनी को एक बनाने के लिए पश्चिमी जर्मनीवाले कोई वास्त-

विक कदम उठाने के बजाय कम्युनिज्म के भय से व्यर्थ ही परेशान है। इस तरह की बातें पूर्वी जर्मनी में हमें सुनने को मिली। दोनों तरफ से एक-दूसरे के खिलाफ जबर्दस्त प्रचार चलता है। प्रचार में अनगिनत पैसा पानी की तरह एक-दूसरे के खिलाफ बहाया जाता है। पूर्वी जर्मनी के पक्ष के लोग कहते हैं : “पश्चिमी जर्मनी के लोग निर्णय करने में स्वतन्त्र नहीं। उन पर अमेरिका हावी है।” पश्चिमी जर्मनी के लोग कहते हैं : “पूर्वी जर्मनी के लोग सोवियत-संघ के साथ बंधे हैं। वे सोवियत-संघ के कब्जे में हैं।”

पश्चिमी जर्मनी के नेतागण ‘स्वतन्त्र चुनाव’ के आधार पर समस्या का समाधान चाहते हैं, जब कि पूर्वी जर्मनी के नेताओं की माँग है कि “सबसे पहले सभी सैनिक सगठनों से अलग होकर जर्मनी एक तटस्थ राष्ट्र बने और चारों ‘बड़ों’ की सेनाएँ जर्मनी की भूमि को खाली करें, तब चुनाव की बात सोची जाय।” पर ‘चारों बड़े’ जर्मनी की सुरक्षा का ठीका लेकर ऐसे अड़े बैठे हैं कि यह मामला सुलझ ही नहीं पाता। जर्मनी तथा बर्लिन की समस्या ज्वालामुखी का रूप धारण किये हुए है। आणविक युद्ध की संभावनाओं के बादल हर समय मँडराते रहते हैं। दीवार के दोनों ओर शस्त्र-सन्नद्ध सेना टैको पर सवार है।

आखिर यह ‘दीवार’ क्या है ? शायद यह एक ऐसा सवाल है, जिसका सही उत्तर ढूँढना असंभव नहीं तो कठिन अवश्य है। कारण दीवार अपने-आपमें कोई रोग नहीं, रोग का एक परिणाम मात्र है। हम यदि पड़ोसी के साथ झगडा करेंगे, उसे अपना दुश्मन मानेंगे, उसके खिलाफ प्रचार करेंगे, तो सहज ही पड़ोसी भी उसी तरह से प्रतिकार करेगा। इसलिए सवाल यह नहीं है कि दीवार क्या है ? बल्कि सवाल यह है कि दीवार क्यों है ? उसके निर्माण के पीछे क्या मजबूरियाँ हैं ? जब तक दीवार बनाने की पूर्वस्थिति साफ नहीं होती, जब तक उसके कारण नहीं मिटा दिये जाते, तब तक दीवारें इसी तरह खड़ी होती रहेंगी। यह कॉटो की दीवार और सीमेट की दीवार उम

दीवार का प्रतीक है, जो दीवार दोनों ओर के राज-नेताओं के हृदयों में खड़ी है। यह बाहरी दीवार जितनी खतरनाक है, उससे कई गुनी खतरनाक है दिलों की दीवार।

पूर्वी बर्लिन में नेशनल फ्रंट के एक भाई ने पूछा : “गांधी होते तो क्या करते ?” मैंने कहा : “गांधी होते तो जर्मन-प्रश्न पर क्या करते, यह मुझे मालूम नहीं। पर उन्होंने ब्रिटिश सरकार से यही कहा : “हम भारतवासी जैसे भी हैं, अज्ञानी हैं, अयोग्य हैं, उसकी चिन्ता आप मत कीजिये। हमें क्या करना है, कैसे रहना है, इसकी चिन्ता हम खुद करेंगे। आप हमारे यहाँ से पधारिये।” पश्चिमी बर्लिन में एक युवक ने ठीक यही बात कही : “हम जर्मन मिलकर यह खुद तय करेंगे कि हमें समाजवाद चाहिए या साम्यवाद, या पूँजीवाद ? सबसे पहले ‘चारों वडे’ अपना-अपना बिस्तर गोल करके हमारे यहाँ से चले क्यों नहीं जाते ? अमेरिका और रूस के विदेश मंत्री हमारी समस्या पर वहस करते हैं। उनकी बातचीत में अपना-अपना रंग रहता है। इसलिए अब हमें ‘भारत छोड़ो’ की तरह ‘जर्मनी छोड़ो’ का नारा लगाना होगा।”

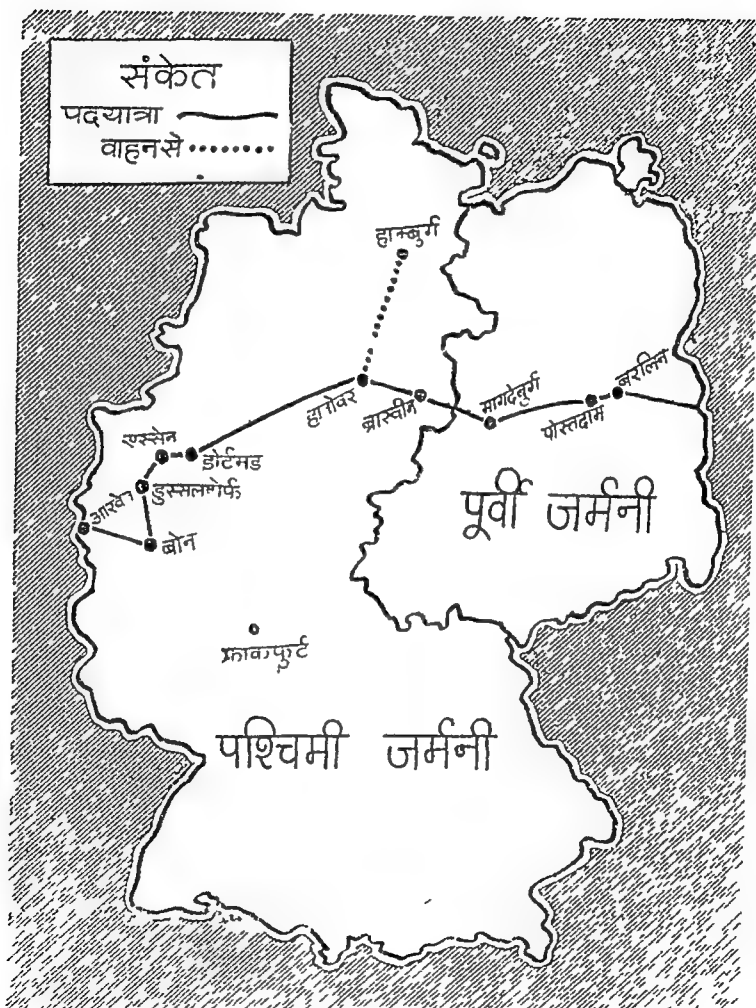
## पश्चिमी जर्मनी



२२ जून '६३ को हमने पूर्वी जर्मनी की सीमा पार करके पश्चिमी जर्मनी में प्रवेश किया। पश्चिमी जर्मनी को बर्लिन से जोड़नेवाली सड़क, ओतोवान पर सैकड़ों कारें सीमा पार करने के लिए ‘क्यू’ में खड़ी थीं। हमने इतने देशों की सीमाएँ पार की, पर जितनी सख्ती और सतर्कता इस सीमा पर धरती जाती है, वैसी कहीं देखने को नहीं मिली। एक ही देश की धरती पर कैसे दो देश बन गये, इसका विचित्र नजारा हमने देखा। पश्चिमी जर्मनी में प्रवेश करते ही हमने देखा कि अमेरिका, ब्रिटेन और फ्रांस के अण्डे वहाँ लहरा रहे थे।



हम यात्रा पर बढ़ने लगे । यूथ होस्टलो की व्यवस्था पश्चिमी जर्मनी में हमने असाधारण रूप से विकसित पायी । छोटे-छोटे नगरों में बहुत साफ-सुथरे और सुन्दर भवन, यूथ होस्टल ( युवक निवास ) के रूप में



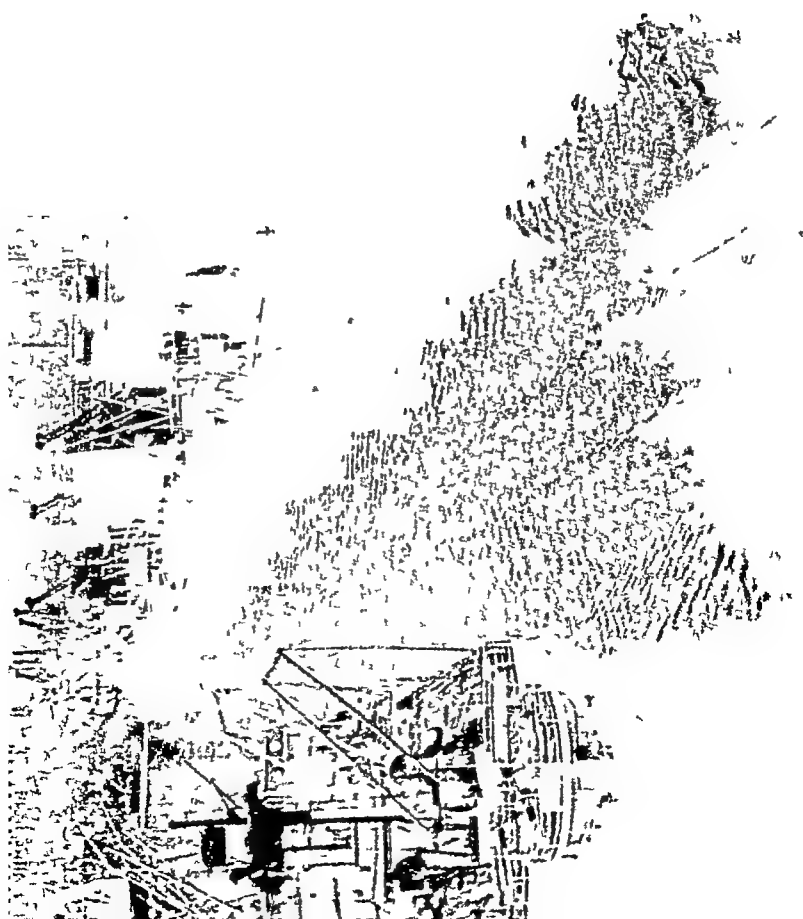
बने हुए हैं । हजारों युवक-युवतियों इन यूथ होस्टलो में ठहरती हैं । जर्मनी जैसे महँगे देश में खाने और रहने का प्रबन्ध इतने सस्ते में ये

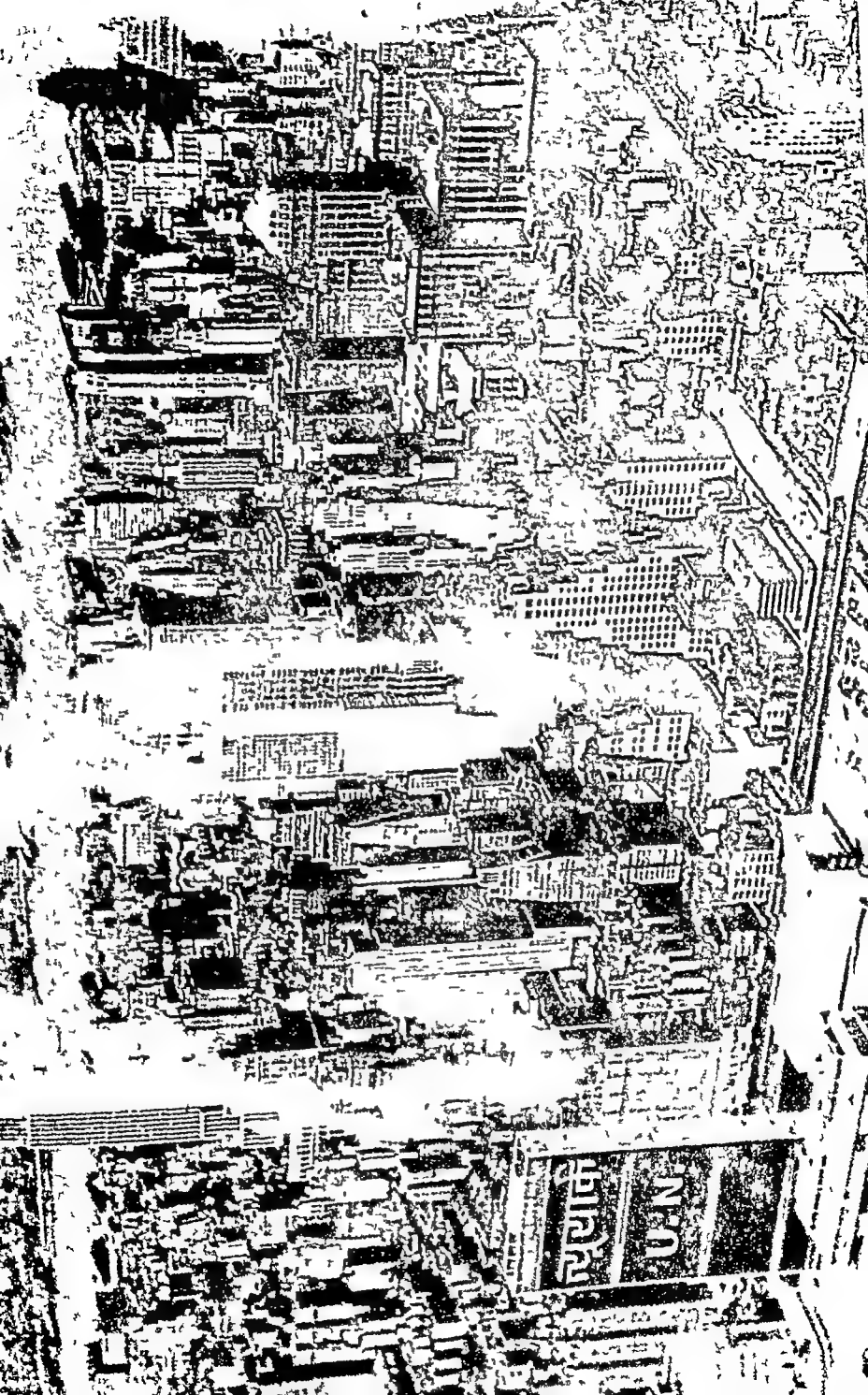
11/18  
MOSCOW-WASHINGTON



Peace News

How to...





UNION HOUSE  
1000 10th St.





国際平和行進

13000人

国際平和行進

13000人

印度→モスコウ→

ワシントン→広島長崎

WAR is a Crime  
against humanity

BAN ALL Bombs  
PEACE FOR ALL

トキヨ

# हिरोशिमा



हिरोशिमा पहुँचने पर । बीच में अमरीकी शांतिवादी महिला मेरी हार्वी, जिसने सात सौ मील पैदल चलकर अमरीकी एटमबम के पाप का प्रायश्चित्त किया ।

लोग कर पाते हैं, यह उनकी बड़ी विशेषता है। [साधारण तौर पर यहाँ वे लोग ही ठहर सकते हैं, जो यूथ होस्टल के सदस्य हों। हम विदेशी अतिथि हैं, इसलिए हमारे लिए विना किसी तरह का किराया या खर्च लिये इन होस्टलों में ठहरने और खाने की व्यवस्था होती थी।

हमें परचे वॉटते देखकर और हाथ में युद्ध-विरोधी पोस्टर लेकर चलते देखकर कुछ लोग हमें कभी-कभी दो-चार जर्मन सिक्को का 'दान' करने की कोशिश करते थे तो बड़ा विचित्र-सा लगता था। पूँजी-वादी समाज-व्यवस्था का विकृत रूप हमारे सामने आता था। हमने कभी भी ऐसा दान स्वीकार नहीं किया, पर ऐसे मौके पर हम सोचने लगते थे कि धर्मान्धता और चर्च-परायणता ने मनुष्य को किस कदर गैर-जिम्मेदार बना दिया कि वह किसीको दो-चार सिक्को का दान करके समस्या से मुँह मोड़ लेना चाहता है। असाधारण रूप से सम्पन्न जर्मनी में भी जब हमने रोटी के लिए मुहताज और आलसी लोगों की जमात देखी और भीख माँगनेवालों को पीछा करते देखा, तो मन में वेदना होनी स्वाभाविक थी।

पहले मैं सोचा करता था कि हमारे यहाँ भारत में भिखमंगी का कारण जीवन-स्तर का ऊँचा न होना है और जीवन-स्तर ऊँचा हो जायगा, तब गरीबी और भिखमंगी की समस्या स्वतः मिट जायगी। पर, जब पश्चिमी देशों को देखा, जहाँ ऊँचा जीवन-स्तर होने पर भी गरीबी और भिखमंगी कायम है, तो मुझे अपना विचार बदलने को मजबूर होना पड़ा। समस्या तभी हल होगी, जब समाज का ढाँचा बदलेगा। हम कभी-कभी ऐसी संस्थाओं में भी ठहरे, जहाँ सरकार या चर्च की तरफ से ऐसे गरीबों को खाने के लिए रोटी और सोने के लिए बिस्तर मुहैया किया जाता है। एक दिन हम ऐसे ही एक मुहताजखाने में ठहरे थे, जहाँ आलसी, बेकार और विक्षिप्त लोगो की भीड़ थी। हमें उम संस्था का एक कर्मचारी तहखाने में ले गया। वहाँ हमारे कपटे उतारकर देखा गया कि उनमें 'जू' तो नहीं हैं। हमारी बगलों में टार्च का प्रकाश



फेककर देखा गया कि उनमें कीड़े या जूँ तो नहीं है ? कैसी विचित्र जगह थी । पर बाद में हमें लगा कि यह भी अच्छा ही हुआ । उस दुनिया के दर्शन भी हमें हो गये । पूँजीवादी समाज-व्यवस्था के नमूने तो देखने को मिले ।

जब हम पश्चिमी जर्मनी की यात्रा कर रहे थे, तो हमें सड़को पर, शहरों के मकानों पर, दफ्तरों में, एक विशेष प्रकार का पोस्टर तथा साइनबोर्ड देखने को मिलता था । उसमें जर्मनी के पाँच टुकड़े दिखाये गये थे और उस पर एक प्रश्नचिह्न लगा हुआ था ! इस पोस्टर को देखते ही किसी भी जर्मन युवक का खून खौल उठना स्वाभाविक है । तथाकथित मातृभूमि का प्यार इन पाँच टुकड़ों को फिर से एक करने के लिए हर कीमत पर तैयार होने की प्रेरणा देगा । रूस और पोलैण्ड के खिलाफ उसके मन में आग पैदा होगी । ऐसे खतरनाक पोस्टर देखकर मुझे बड़ी निराशा होती थी ।

## पदयात्री साथी



जब हम बोन में थे, तो हमें ड्रुसलडोर्फ से एक तार मिला : “क्या मैं आपकी यात्रा में शामिल हो सकती हूँ ?” यह एलके नाम की २० वर्षीया तरुणी का तार था । हमने तुरन्त ही स्वीकृति का उत्तर दिया और कुमारी एलके हमारी यात्रा में शामिल हो गयी । पहले ही दिन जब हम अपने पड़ाव पर पहुँचे, तो हमने देखा कि एलके वहन के मुकोमल पॉव छालों से फूल गये हैं और उसे यह पदयात्रा भारी पड़ रही है । हमने उसे समझाया कि पैदल चलने के लिए प्रारम्भ में अभ्यास की जरूरत है और इसलिए वह अभी हमारे साथ यात्रा करने का विचार छोड़ दे । पर एलके वहन ने हमारी एक न सुनी । “कष्टों से डरकर क्या आप वापस चले जाने की सलाह मुझे देंगे ?” उसने वीयर का प्याला अधंगे पर

लगाते हुए हमें चुनौती दी और आखिर उसने बेल्जियम की सीमा तक हमारे साथ यात्रा की।

हाम्बुर्गका थामस नामक युवक भी हाम्बुर्ग से डोर्टमंड की सैकड़ों मील लम्बी सड़क पर खड़ा हो गया। वह आती-जाती कारवालों को रोककर कहने लगा कि “मैं अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति-पदयात्रा में शामिल होने के लिए जाना चाहता हूँ। मेरे पास रेल-किराया देने के लिए पैसे नहीं हैं, क्या कोई मुझे अपनी कार में ले जायगा ?” कई कारवालों ने उसकी बात मानी। किसीने २० मील, किसीने ४० मील और किसीने १०० मील तक लिफ्ट देकर आगे बढ़ाया। आखिर वह साहसी युवक हमारे पास तक आ ही पहुँचा। वह हमारी पदयात्रा का बेहतरीन मार्गदर्शक बन गया। वह अंग्रेजी भी जानता था, इसलिए एक अच्छे दुभाषिया का भी काम देता था।

२८ मील की यात्रा करके हम कोलोन पहुँच रहे थे। तेज वर्षा होने लगी। थोड़ी ओट पाकर हम एक तरफ खड़े हो गये। सामने के कॉफी हाउस से एक भारतीय विद्यार्थी ने हमें देखा। ये थे, श्री शिवकुमार सिंह। दौड़े आये हमारे पास। उन्होंने अखबारों में हमारा फोटो देखा था, इसलिए उन्हें पहचानने में देर नहीं लगी। उनसे बातें हुईं। वे हमारे साथ हो गये। आये थे कुछ घण्टों के लिए, रुक गये पूरे दिनभर। दूसरे दिन पदयात्रा में भी वे शामिल हुए। एक दिन साथ चलने के ख्याल से आये, पर दो दिन बीत गये, चार दिन बीत गये। वापस जाने का उनका मन ही नहीं हो रहा था। आखिर दस दिन वे हमारे साथ रहे। बेल्जियम की सीमा आ गयी। अब आगे चलना उनके लिए कानूनी तौर से सम्भव नहीं था। उधर उनका कॉलेज भी बूटा जा रहा था। कुछ मजबूर-से होकर वे वापस गये। ऐसे कितने ही मित्र हमारे साथ यात्रा में शामिल होते थे। उनके चेहरे और उनका उत्साह भुलाया नहीं जा सकता।

पश्चिमी जर्मनी में शाकाहार का आन्दोलन खूब तेजी पर है। ईरान और अफगानिस्तान में हमें सूखी रोटी और काली चाय के अलावा अक्सर कुछ नहीं मिलता था, वैसी बात यहाँ नहीं थी। हमें ऐसे-ऐसे शुद्ध शाकाहारी भोजनालय और रेस्तराँ मिले कि देखकर दग रह जाना पड़ा। शाकाहार में आगे बढ़े हुए भारत में भी हमने वैसे रेस्तराँ कभी नहीं देखे। स्वास्थ्य की दृष्टि से शाकाहार अधिक उपयोगी और लाभ-दायी है, ऐसा विचार यहाँ काफी जोर पकड़ रहा है। इसी तरह योगासनों की ओर लोगों की बढ़ती हुई रुचि को देखकर भी मैं चकित रह गया। कुछ शहरों में तो वाकायदा ऐसे स्कूल चलते हैं, जहाँ पर योगासन सिखाये जाते हैं। कई जगहों पर लोग हमसे आग्रह करते थे कि आप योगासन करके हमें दिखायें। हम जब उन्हें शीर्षासन, सर्वांगासन, प्राणायाम आदि करके बताते थे, तो वे बहुत प्रसन्न होते थे। भारत के प्रति पश्चिमी जर्मनी में जो रुचि तथा आकर्षण है, उसका मुख्य कारण हमारे यहाँ का प्राचीन साहित्य तथा योगविद्या है। दुनिया की अपने ढंग की सबसे बड़ी औद्योगिक वस्ती—एस्सन, डुस्सलडोर्फ, कोलोन—को देखकर तो हमें लगा कि भारत को वहाँ तक पहुँचने में न जाने कितने दशक लगेंगे।

## वह पादरी और वह सिपाही

चलते-चलते सोंझ हो गयी। धरती पर अन्धेरा बिखरने लगा। हम पश्चिमी जर्मनी की एक खासी अच्छी वस्ती में थे। कहाँ जायें? मेयर का दफ्तर बन्द हो चुका था। यूथ होस्टल का भी पता नहीं। इतने में एक गगनचुम्बी कैथोलिक चर्च दिखाई पड़ा। चर्च के साथ ही लगी हुई थी एक सेमिनरी (पादरी बनने का प्रशिक्षण विद्यालय)। हमने सोचा कि क्यों न हम वहीं चले। जब हमने दरवाजा खटखटाया, तो एक भारी-भरकम पादरी ने दरवाजा खोला। एडी तक लटकता हुआ गहरे काले रंग का चोगा, गले में कास, हाथ में वाइविल। पुस्तक के बीच में अँगुली

दबी हुई। जान पड़ता था कि वे वाइविल पढ़ रहे थे। तभी हमने दस्तक दी। उन्होंने हमें बड़े गौर से देखा—थके हुए दो यात्री, पीठ पर कपड़ों का थैला, सूखे-सूखे बाल, हाथ में युद्ध-विरोधी पोस्टर।

“क्या चाहिए आपको?” उन्होंने पूछा।

“हम पदयात्री हैं। रातभर के लिए ठहरना चाहते हैं।” हमने इस उत्तर के साथ अपनी यात्रा के उद्देश्य एवं दिल्ली से अब तक की कहानी भी संक्षेप में बतायी। अपनी यात्रा के सम्बन्ध में हम जो परचा सबको बँटते थे, वह पर्चा भी हमने उन्हें दिया। उन्होंने ध्यान से हमारा परचा पढ़ा। फिर हम पर सन्देह की नजर फैलाते हुए बोले : “लेकिन, हमारे पास आपको ठहराने की जगह है कहीं?”

मैंने कहा : “आपके घर के ढालान में ही हम ठहर जायें। ओटने विछाने के कपड़े हमारे पास हैं।”

“नहीं। यह तो सम्भव नहीं है।”—पादरी ने कहा।

“तो क्या हम चर्च में ठहर सकते हैं?”

“नहीं। यह भी सम्भव नहीं।”

“तो फिर क्या हम सेमिनरी में ठहर सकते हैं?”

“नहीं। मेरे पास आप लोगों को ठहराने के लिए कोई जगह नहीं है।” यो कहते हुए उन्होंने घर के दरवाजे बन्द कर दिये। हम अपना-सा मुँह लिये इस चिन्ता में सन्न खड़े थे कि अब कहीं जायें। इतने में पादरी महोदय ने फिर दरवाजा खोलकर कहा : “आप वहाँ से चले क्यों नहीं जाते? मेरे पास आपको ठहराने के लिए कोई जगह नहीं है।” उन्होंने फिर दरवाजा बन्द कर दिया। अब तो हमारे वहाँ खड़े रहने में भी कोई तुक नहीं था। भगवान् के प्रतिनिधि के द्वार पर न हम यो लौटा दिये जायेंगे, इसकी हमने कल्पना भी नहीं की थी। पादरी महोदय के हाथ में वाइविल थी, जिसमें लिखा है कि ‘दुश्मन से भी प्यार करो।’ पर कितनी दूर था उनका आचरण। हम वहाँ से लौट आये।

आखिर निराश होकर आगे बढ़ने लगे, तो हमें एक पुलिस स्टेशन मिला। वहाँ के पुलिस अधिकारी ने एक अस्पताल में हमारे ठहरने का प्रबन्ध किया।

और भी एक दिन हमें मिला पुलिस थाने का एक सिपाही, जिसकी किताब में डडा और जेल लिखा है, प्यार और अतिथि-सेवा नहीं। दोपहरी में हमने एक पुलिस थाने का दरवाजा खटखटाया। अधिकारी थाने में नहीं थे। वे सामने की 'बार' में बीयर पी रहे थे। जर्मन लोग बीयर को वैसा ही प्यार करते हैं, जैसे केरलवासी कच्चे नारियल के पानी को। जर्मनी में शायद ही कोई ऐसा मिले, जो बीयर न पीता हो। पर ये लोग नशे से पागल होकर भान खो बैठे, ऐसा अवसर नहीं आता। 'बार' से ही सिपाही ने हमें देखा। वह सोच सकता था कि दरवाजा खटखटाकर हम स्वतः चले जायेंगे, पर उसने ऐसा नहीं सोचा। उसने मित्रों की गोष्ठी छोड़ी और दौड़कर हमारे पास आया। "क्या चाहिए आपको?" उसके इस सवाल पर हमने कहा: "हमें कुछ नहीं चाहिए। हम थोड़ी देर विश्राम करना चाहते हैं।" फिर अपनी यात्रा की कहानी हमने संक्षेप में उसे बतायी। सिपाही ने कहा: "तो फिर चलिये न मेरे साथ, 'बार' में चलिये। मेरे अतिथि बनिये।"

हम उसके साथ 'बार' में जाकर बैठे। वह बीयर लाने के लिए आदेश देने ही जा रहा था कि हमने कहा: "नहीं। हम बीयर नहीं पियेंगे। हमें आप सिर्फ पानी पिला दीजिये।" पर वह माननेवाला कहाँ? उसने केक के लिए आदेश दिया। आइसक्रीम मँगवायी। हमें प्यास लगी थी, इसलिए उसने कोकाकोला की दो-चार बोतलें खुलवाकर रख दीं। कहने लगा: "अब सुनाइये अपनी यात्रा की कहानी।" हमने सोचा था दस-पन्द्रह मिनट विश्राम करने का, पर लग गये दो घण्टे। हमने जब चलने की अनुमति माँगी, तो सिपाही बोला: "ऐसा कैसे हो सकता है? आपको मेरे घर पर भी चलना होगा। मेरी पत्नी से मिलना होगा और भोजन भी करना होगा।" तुरत उसने अपनी पत्नी को फोन

किया। हमारे 'ना' 'ना' कहने पर भी वह हमें घर ले ही गया। खाना खाने से हमने जब बिलकुल इनकार कर दिया, तो सिपाही की पत्नी ने हमारे लिए कॉफी बनायी और हमें नाश्ता कराया।

यो जर्मनी के लोग टर्किश कॉफी ज्यादा पसन्द करते हैं। वह कॉफी बहुत कड़वी होती है। मैं तो वैसी कड़ी कॉफी का एक घूँट भी नहीं पी सकता। वे लोग कॉफी में न तो चीनी मिलाते हैं, न दूध। चाय में भी ये लोग दूध नहीं मिलाते। रूसी लोग चाय में दूध के स्थान पर नीबू डालते हैं। पर जर्मनीवाले शुद्ध चाय का स्वाद लेना चाहते हैं। परन्तु हमारे मेजबान सिपाही ने हमारे लिए विशेष रूप से दूधवाली कॉफी बनाकर हमें पिलायी। फिर सिपाही ने कहा : “सच्चा काम तो आप लोग कर रहे हैं—देश-विदेश का सफर, युद्ध-विरोधी प्रचार। मैं तो जीवन के विचित्र गोरख-धन्धे में फँसा हूँ।”

इतने में मेरी नजर दीवार पर टँगे तैल-चित्रों पर पड़ी। बेहतरीन किसिम के चित्र थे। मुझे बहुत पसन्द आये। मैं पिकासो का उपासक हूँ। नयी और प्रतीकात्मक कला मुझे बहुत पसन्द आती है। मैं पूछ ही बैठा कि ये चित्र किसने बनाये हैं? मैं चकित रह गया यह सुनकर कि वे चित्र उसी सिपाही के बनाये हुए थे। भले ही पेगो से वह एक सिपाही था, पर हृदय से वह एक कलाकार था। मैं उसके चरणों में नतमस्तक हो गया। वह एक सच्चा इन्सान था। तुरन्त मुझे वह पादरी याद आया। कहाँ वह पादरी, कहाँ यह सिपाही! पादरी खड़ा नहीं होने दे रहा था, पर यह सिपाही हमें आगे बढ़ने ही नहीं दे रहा था। सिपाही और उसकी पत्नी, दोनों ही अच्छी अंग्रेजी बोल लेते थे। वे हमें अपने ही घर पर रोकना चाहते थे। बोले : “रातभर यहाँ ठहरिये। कल सूर्योदय पर आप अपनी यात्रा प्रारम्भ करिये।” पर हमारा आगे का कार्यक्रम कुछ इस तरह से तय था कि उसमें परिवर्तन करना सम्भव नहीं था। अतः हमें जाना पड़ा। पर वह सिपाही सदा के लिए हमारे

हृदय में बस गया। वह इन्सान पहले था, सिपाही बाद में। यही थी उसकी विशेषता।

## श्री अडनावर के सामने प्रदर्शन



हम ब्राश्वीग, हानोवर, डोर्टमंड, ड्रुसलडोर्फ, कोलोन आदि नगरों में होते हुए १५ जुलाई को पश्चिमी जर्मनी की राजधानी—बोन पहुँचे। एक सप्ताह पहले ही हमने चासलर श्री अडनावर को मुलाकात के लिए पत्र लिखा था और समय मँगा था। जिस तरह पूर्वी जर्मनी के विदेश मंत्री के साथ हमने जर्मन-समस्या के बारे में चर्चा की थी, उसी तरह हम पश्चिम जर्मनी के सरकारी नेताओं के साथ भी चर्चा करना चाहते थे। इसलिए हम सीधे मार्च करते हुए चासलर के दफ्तर पहुँचे। बहुत देर खड़े रहने पर उत्तर मिला, 'कल आओ।' हम दूसरे दिन गये। फिर कहा गया, 'कल आओ।' तीसरे दिन उत्तर मिला : कुछ 'राजनैतिक कारणों से' स्वयं चासलर अथवा अन्य कोई उच्च अधिकारी हमसे भेट नहीं कर सकेंगे। हम जिन-जिन देशों में जाते थे, उन सभी में आम जनता से तथा सरकार के सर्वोच्च व्यक्ति अथवा सरकारी तौर पर नियुक्त किसी जिम्मेदार व्यक्ति से मिलकर अपनी एकपक्षीय निःशस्त्रीकरण की माँग पेश करते तथा उनका उत्तर सुनते थे। परन्तु इस देश की सरकार 'राजनैतिक कारणों से' हमारी बात सुनने के लिए भी तैयार नहीं थी।

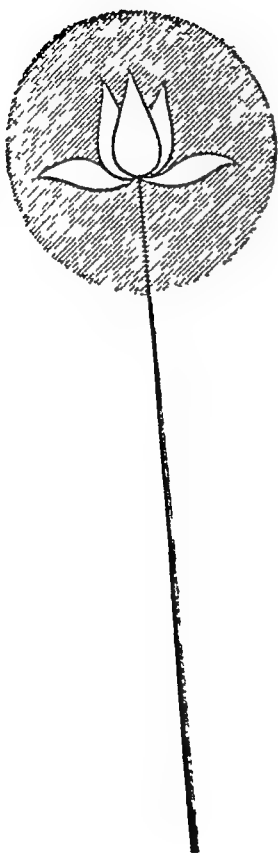
हम करीब सौ मील का चक्कर खाकर सरकारी प्रतिनिधियों से मिलने के लिए बोन गये थे। पर कोई भी हमसे मिलने के लिए तैयार नहीं था। इसलिए १९ जुलाई को सुबे ९ बजे से शाम को ६ बजे तक, चासलर श्री अडनावर के दफ्तर के सामने हमने प्रदर्शन करने का निश्चय किया। हम ठीक ९ बजे वहाँ पहुँचे। सरकार को और पुलिस को हमने इसकी सूचना पहले से ही दे दी थी। हमारे वहाँ पहुँचने के

थोड़ी देर बाद ही पुलिस आयी। हम जो परचे वॉट रहे थे, उन्हें उसने जवरन छीन लिया। हमारे हाथ का 'प्लेकार्ड' भी उसने छीन लिया। कुछ शान्ति-साहित्य भी ले लिया। फिर उसने हमसे प्रदर्शन न करने के लिए कहा। हमने जवाब में कहा कि "आप जो कुछ छीनकर ले जाना चाहते हैं, भले ले जाइये। पर हम आज पाँच बजे तक यहीं रहेंगे।" इस तरह ५ बजे तक हम खाली हाथ बैठे रहे। हमने सोचा कि जो सरकार प्रतिदिन ५ करोड़ जर्मन मार्क सेना पर खर्च करती है, उसके सामने अपनी माँग तो अवश्य रखेंगे। यदि वे हमसे मिलकर हमारी बात सुनना नहीं चाहते हैं, तो प्रदर्शन द्वारा सुनायेंगे। इस देश की सरकार ने हमारी यात्रा के प्रति पूरी तरह उपेक्षा दिखायी। हमें परचे वॉटते हुए पहली बार इसी देश की पुलिस ने रोका। एक बार हम कुछ सैनिकों के बीच परचे वॉट रहे थे, तो एक अधिकारी ने हाथ से परचों का ढण्डल छीनकर परचे फाड़ डाले। हम जब परचे वॉटते थे, तो हमारे हाथ का 'प्लेकार्ड' देखकर कुछ लोग परचा लेने से इनकार भी कर देते थे।

बहरहाल, यह जर्मन-सरकार की सहानुभूति थी कि हम गिरफ्तार नहीं किये गये। शांतिपूर्वक अपना प्रदर्शन सम्पन्न करके हमने वोन नगरी से विदा ली और बेल्जियम की तरफ चल पड़े। जर्मनी में हमारा अंतिम पड़ाव आखेन में था। आखिरी दिन की हमारी मेजबान महिला ने बड़े प्रेम से हमारा आतिथ्य किया। औद्योगीकरण तथा आधुनिकता के परिणामों की चर्चा करती हुई वह बहन बोली : "हमारे यहाँ के लोग विवाह को एक अनावश्यक भार मानने लगे हैं। ४६ प्रतिशत महिलाएँ और ५१ प्रतिशत पुरुष विवाह के प्रति उदासीन हैं। इनका ऐसा विचार है कि सुखी जीवन के लिए विवाह की कोई आवश्यकता नहीं है। हमारे देश में अविवाहित स्त्रियों की संख्या एक करोड़ के आसपास है।" इस तरह से हमारी बातें चलती रहीं और जर्मनी का प्रयाण पूरा हुआ।







शैलजयम्

की सुन्दर गोद में



२४ जुलाई को जर्मनी की ६० दिन की यात्रा पूरी करके हमने बेल्जियम में प्रवेश किया। ९० लाख की जनसंख्यावाला यह छोटा-सा देश है। सारा यूरोप ऐसे छोटे-छोटे देशों का महाद्वीप है। हिन्दुस्तान जैसे बड़े देश के निवासी को यूरोप के देश जिले या प्रान्त जैसे ही मालूम देंगे। यूरोप को एक देश बनाकर नया संगठन खड़ा करने के लिए कुछ लोग आन्दोलन चला रहे हैं। व्यापार आदि की दृष्टि से कुछ यूरोपियन देशों ने साझे का बाजार—‘कामन मार्केट’—खड़ा किया है, फिर भी सारे यूरोप का एक संगठन अभी सपना ही है।

बेल्जियम में भी भाषा का झगड़ा एक तीव्र विवाद का विषय था। फ्लेमिश भाषा बोलनेवालों की यह शिकायत हमें बार-बार सुनने को मिलती थी कि फ्रेंच भाषा बोलनेवाले लोग उन पर आधिपत्य जमाना चाहते हैं। इसलिए राज-काज में दोनों भाषाओं को समान स्थान मिलना चाहिए। फ्रेंचभाषी वालन अल्पमत में हैं और फ्लेमिशभाषी बहुमत में, पर प्रत्येक फ्लेमिशभाषी फ्रेंच सीखता है। उधर फ्रेंचभाषी फ्लेमिश भाषा सीखते तो हैं ही नहीं, उन्हें वे फ्लेमिश को नीची नज़र में देखते हैं।

हम वेल्जियम की राजधानी ब्रुसेल्स पहुँचे। यह एक सुन्दर और खर्चीला शहर है। हम वाइ. एम. सी. ए. (यंग मेन क्रिश्चियन एसोसियेशन) के भवन में ठहरे। यह एक अन्तर्राष्ट्रीय संस्था है, जो ईसाई धर्म को माननेवाले युवकों की तरफ से चलती है। दुनियाभर में जगह-जगह इस संस्था ने अपने भवन खड़े किये हैं, जहाँ पर यात्री लोग सस्ते में सुविधा के साथ ठहर सकते हैं। वैचारिक गोष्ठियाँ, मनोरञ्जन के कार्यक्रम इत्यादि का आयोजन भी इस संस्था की ओर से होता है। ब्रुसेल्स में समाजवादी पार्टी के अध्यक्ष श्री लेयोकोलार्ड से हम मिले। इन्होंने अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय में कुछ वर्ष पहले गोआ के मामले में भारत की तरफ से वकालत की थी। पर हमें यह जानकर आश्चर्य हुआ कि उन्हें यह भी ज्ञात नहीं था कि गोआ को भारत ने सैनिक कार्रवाई द्वारा स्वतन्त्र कर लिया है। जो सवाल संयुक्त राष्ट्रसंघ में विवाद का विषय बना, उसके बारे में वेल्जियम की दो में से एक शासक पार्टी के अध्यक्ष और राज्यमन्त्री श्री कोलार्ड को कुछ भी पता नहीं था।

ब्रुसेल्स में मोरिस कोसिन नाम के भाई ने हमें बहुत मदद की। ये भाई वेल्जियम के तटस्थ शान्ति-आन्दोलन के प्राण हैं और विश्व-नागरिक संस्था के प्रमुख सञ्चालक हैं। श्री कोसिन के साथी तथा अणु निःशस्त्रीकरण आन्दोलन (सी. एन. डी.) के अध्यक्ष श्री रेन. डी मोट ने भी हमें उत्तम आतिथ्य प्रदान किया। श्री डी. मोट यो वृद्ध हैं, पर हैं बहुत चुस्त और सक्रिय। पठन-पाठन खूब करते हैं। छोटा-मोटा सब काम खुद कर लेते हैं। अपना घर है। छोटा-सा बगीचा भी है। खेलते हैं। धूप-स्नान लेते हैं। आश्रम-जीवन जैसा ही है। पियानो बजाने के बड़े शौकीन हैं। काम से थककर अकसर पियानो पर अँगुलियाँ थिरकाने लगते हैं। घर पर अकेले ही रहते हैं। पत्नी को बहुत दिन पहले तलाक दे दी थी, पर आज भी उसके साथ अच्छा सम्बन्ध रखते हैं। महीने में एकाध बार उसके यहाँ भोजन आदि भी कर आते हैं।

तलाक ले लेने के बाद भी मित्रों जैसा अच्छा वर्ताव रखनेवाले पति-पत्नी के यूरोप तथा अमेरिका में मुझे कई उदाहरण देखने को मिले । दाम्पत्य जीवन सुखी नहीं रहता, तो लोग समझ-बूझकर अलग हो जाते हैं । तलाक का अर्थ यह नहीं कि दोनों आपस में झगड़ते रहते हों । और भी हम अनेक बार ऐसी महिलाओं व पुरुषों के साथ ठहरे, जिन्होंने अपने पति से तलाक ले लिया हो । तलाक के बाद भी वे अपने भूतपूर्व साथी के साथ अच्छे साथी जैसा सम्बन्ध रखते थे । दोनों का परस्पर मिलना-जुलना, खाना-पीना, घूमना-फिरना इत्यादि चलता रहता था । मुझे ऐसा लगा कि यूरोप और अमेरिका में बड़ी संख्या में तलाक होते तो हैं, परन्तु भारत की अपेक्षा वहाँ के लोगों का वैवाहिक जीवन कहीं अधिक सुखी है । क्योंकि उन पर मजबूरी का बन्धन नहीं है । हमारे यहाँ जिस तरह से धुट-धुटकर के दाम्पत्य जीवन की गाड़ी खोंची जाती है और मजबूरी का प्रेम निभाया जाता है, वैसा वहाँ नहीं चलता । विवाह केवल साथ रहने का समझौता नहीं, बल्कि प्रेम और हृदय का सम्बन्ध है—इसका दर्शन हमें कई बार हुआ । मजबूरी से प्रेम की गाड़ी खींचनी पड़े, तो वह प्रेम नहीं, बन्धन ही है ।

हम जिन दिनों ब्रुसेल्स में थे, उन दिनों कागों के तत्कालीन प्रधान मन्त्री भी वही थे । बेल्जियम ने कागों में जो साम्राज्यवादी नाटक खेला, वह बेल्जियम के इतिहास पर एक कलक ही है । अफ्रीका में यूरोप के देशों ने ऐसे खेल रचकर अपनी साम्राज्यवादी मनोवृत्ति का जो परिचय दिया, उससे एशिया और अफ्रीका के लोगों के दिलों में यूरोप के लोगों के प्रति एक प्रकार का द्वेष और नफरत पैदा हुई है । यह स्थिति आज भी कायम है । अगोला जैसे अफ्रीकी देश अभी भी साम्राज्यवादी पंजे के नाखूनों से लहू-लुहान हो रहे हैं । स्वयं बेल्जियम के अनेक लोगों ने इस परिस्थिति के प्रति चिन्ता और असहमति प्रकट की और अपने देश की कागो-नीति का विरोध किया ।

बेल्जियम के आखिरी पड़ाव, मोन्स में एक विचारगोष्ठी में युद्ध और शान्ति के प्रश्न पर बोलते हुए हम भारत और चीन के संघर्ष पर चर्चा कर रहे थे। भारत के सैनिक दृष्टि से पीछे हटने पर एक शान्तिवादी ने टिप्पणी करते हुए कहा : “थोड़ी पूँजी मालिक को भी खा जाती है। जिसके पास थोड़े से पैसे हों, वह गरीब कहलाता है। पर एक भी पैसा जिसके पास नहीं, जिसने स्वेच्छा से पैसे का त्याग कर दिया है, ऐसा व्यक्ति बड़े-से-बड़े धनपति का भी सम्मान प्राप्त करता है। उसी तरह आज के आणविक युग में सेना का विसर्जन करनेवाला बड़े-से-बड़े सैनिकवादी राष्ट्र का भी आदर प्राप्त करेगा।”



मोन्स नगर की हमारी यह गोष्ठी भारत-चीन सम्बन्धों पर केन्द्रित रही। यूरोप के शान्तिवादियों के सामने शान्ति का प्रश्न ज़िम्मेदार तरह से उपस्थित है, उस तरह से भारत के सामने शान्ति का प्रश्न नहीं था। भारत की धरती पर कोई बड़ा युद्ध भी नहीं लड़ा गया। अणुअस्त्र और राकेट भी भारत के पास नहीं, पर अब जब से चीन के साथ भारत का

सघर्ष छिड़ा है और जब से चीन के पास अणुबम हो गया है, तब से भारत के शान्तिवादियों के सामने भी वे ही प्रश्न खड़े हो गये हैं, जो यूरोप के शान्तिवादियों के सामने हैं। गांधी का देश भारत इन प्रश्नों का सामना किस तरह करता है, यह यूरोप के लोगों के लिए दिलचस्पी की बात है।

एकतरफा निःशस्त्रीकरण सैद्धान्तिक रूप से बड़ा आदर्श प्रतीत होता है। आये दिन रूस और अमेरिका को आह्वान करनेवाले प्रस्ताव पास करके उन्हें एकतरफा निःशस्त्रीकरण की दिशा में आगे बढ़ने के लिए निवेदन किया जाता है, पर प्रस्ताव करनेवाले अनेक शान्तिवादियों को इस बात की आशा नहीं है कि रूस या अमेरिका उनके प्रस्तावों की तरफ गम्भीरता से दृष्टि भी डालेगा। ऐसी दशा में एकतरफा निःशस्त्रीकरण की बात पर लोगों का विश्वास नहीं जमता। लेकिन भारत आज भी कोई असाधारण कदम उठा सकता है, ऐसा स्वप्न संसारभर के शान्तिवादी लोग देखा करते हैं। किन्तु आज की परिस्थिति में तो वह स्वप्न भी टूटता जा रहा है। भारत-चीन के सीमा-विवाद के बाद विदेशी आलोचकों की दृष्टि में भारत के लिए एक परीक्षा का अवसर उपस्थित हुआ है। इन विदेशी आलोचकों को हम तीन हिस्सों में बाँटेंगे। अमेरिकी गुट, सोवियत गुट और तटस्थ लोग, जिनमें शान्तिवादी आलोचक भी शामिल हैं। हमने अपनी विदेश-यात्रा में देखा कि तीनों क्षेत्रों के अन्व-वारों और पत्र-पत्रिकाओं में भारत की गृह-नीति, विदेश-नीति तथा सुरक्षा-नीति के बारे में विभिन्न पहलुओं से आये दिन विचार प्रकट किये जाते हैं। अमेरिकी गुट की दिलचस्पी इस बात में है कि भारत कहीं कम्युनिस्ट कब्जे में न चला जाय। सोवियत गुट की दिलचस्पी इस बात में है कि भारत कहीं पूँजीवादी गुट में शामिल न हो जाय। तटस्थ और शान्तिवादी आलोचकों की दृष्टि इन दोनों से भिन्न है। वे बड़ी उत्सुकता के साथ देख रहे हैं कि अहिंसा की जो बुनियाद भारत में है और नेतृत्व ने बल तक तटस्थता, शान्ति और अहिंसा के प्रयत्न वनकर अन्य देशों



को जो सलाह और उपदेश दिया है, उसे आज भारत की सरकार, जनता तथा शान्तिवादी तत्त्व किस तरह व्यवहार में उतारते हैं। यदि भारत का अहिंसावादी और शान्तिवादी आन्दोलन असफल हुआ, तो इन शान्तिवादी समालोचकों की मान्यता में विश्व के अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति-आन्दोलन की कमर झुक जायगी।

भारत की गरीबी का राक्षस, सामाजिक और आर्थिक विषमता, पाकिस्तान के साथ बिगड़े हुए सम्बन्ध और चीन के साथ संघर्ष, इन सबके साथ लड़ने के लिए भारत के पास क्या तैयारी है? एक अमेरिकी दैनिक पत्र ने यह प्रश्न उठाया था कि क्या भारत और चीन का मुकाबला सैनिक तैयारी से संभव है? लगभग २६ लाख सैनिकों की स्थायी फौज के अलावा २ करोड़ ६० लाख के करीब सिपाहियों की पुलिस के साथ चीन के पास दुनिया के किसी भी देश से बड़ी स्थल-सेना है। इस तुलना में अमेरिका के पास भी १० लाख सैनिकों से कम ही स्थायी फौजी ताकत है। तीन हजार वायुयान, जिनमें अधिकांश जेट विमान हैं, और एक लाख सैनिकों की वायुसेना चीन ने तैयार की है। इस तरह चीन एक परिपूर्ण सैन्यवादी देश के रूप में खड़ा हो रहा है। उसने अणु-अस्त्रों का निर्माण प्रारम्भ कर दिया है और वह अगले पन्द्रह सालों में संसार को ध्वस्त कर सकने लायक अणु-शस्त्रों का निर्माण भी कर लेगा।

एक दूसरे अमेरिकी पत्रकार लारेन्स वारेड का मत है कि ७० करोड़ की आबादी का ऐसा देश, जिसकी आबादी तेजी से बढ़ती जा रही है, जो चारों तरफ कमजोर पड़ोसियों से घिरा हुआ है, जो दुनिया के अधिकांश राष्ट्रों से तथा संयुक्त राष्ट्रसंघ से उपेक्षित होकर अकेला पड़ा है और जहाँ के नेता अपने ही रंग में मतवाले हैं, अगर दुनिया को किसी आणविक युद्ध के खतरे में झोक दे, तो वह असम्भव बात नहीं है। चाहे कोरिया-युद्ध हो या दक्षिण वियतनाम, भारत के साथ का संघर्ष हो या दक्षिण-पूर्वी एशिया का अन्य कोई संघर्ष। चाहे विदेशी मामले हों या

घरेलू। चीन सरकार ने अपने देश के मनुष्यों के जीवन के प्रति सदैव अनादर दिखाया है और कितने चीनी मरे, इस तथ्य की उपेक्षा की है। इसलिए क्या भारत भी चीन के साथ उसी होड़ में उतरना चाहता है? क्या वह कोई स्वस्थ होड़ है? क्या उस होड़ का कहीं अन्त भी है?

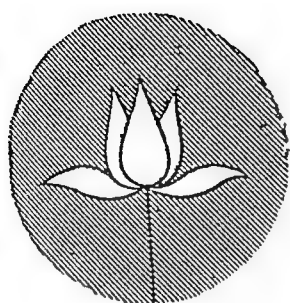
राष्ट्रपति केनेडी, जिन्होंने लाल चीन की सरकार को औपचारिक रूप से मान्यता तक प्रदान नहीं की, भी लाल चीन के इरादों से सशंकित थे। उन्होंने कहा था कि सन् १९७० तक लाल चीन अमेरिका के लिए दूसरे महायुद्ध के बाद सबसे बड़ी परेशानी बन जायगा।

पेरिस में भारतीय दूतावास के एक कार्यकर्ता ने कहा कि क्या चीन के रूप में नया अंगुलिमाल प्रकट हो रहा है, जो रूस, अमेरिका और भारत की दोस्ती को टुकराता चला जा रहा है? मैंने हँसते हुए पूछा कि उस अंगुलिमाल को सामान्य मानव रूप में बदलने के लिए बुद्ध कौन बनने को तैयार है? तब उस कार्यकर्ता ने कहा कि बुद्ध निर्भय और निःशस्त्र थे। पर वह तरीका राजनीति में व्यावहारिक नहीं है। हमें अंगुलिमाल का दमन शस्त्रों द्वारा करना होगा। तब मुझे वाद आयी एक फ्रेंच लेखक की बात, जिसने कहा था कि नेहरू के आदर्शों की चमक धुंधली पड़ रही है। तटस्थता, शान्ति और अहिंसा के सिद्धान्त को अमल में लाकर किसी भी जटिल-से-जटिल समस्या को बातचीत द्वारा तथा शान्तिपूर्ण तरीके से निबटाने का नेहरूजी का सिद्धान्त अमल में लाने के लिए उनके तन्त्र की धार भोथरी होने लगी है। भारत के शासक भी सामान्य राजनीतिक बनते जा रहे हैं। वे वैसा ही कदम उठाने हैं, जो कोई भी साधारण राजनेता उठा सकता है। यह आलोचना एक से अधिक बार मुझे सुनने को मिली।

इस तरह से हमारे सामने भारत और चीन का प्रश्न तीव्रता के साथ उपस्थित होता था, क्योंकि हम स्वयं शान्ति और निःशस्त्रीकरण की बात करते थे और ऐसे लोगों के सम्पर्क में अधिक आते थे, जो इन प्रश्नों पर गहराई से चिन्तन करते थे। वेल्लियम जैसे छोटे-से देश में

भी गांधी की बात को समझनेवाले लोगो की बड़ी जमात हमे मिली और इन प्रश्नों पर हमारी उनके साथ चर्चा हुई ।

४ अगस्त का दिन वेल्जियम की इस सक्षिप्त-यात्रा का अन्तिम दिन था । २४ जुलाई से ४ अगस्त तक के इस समय में वेल्जियम की मनोरम धरती पर विहरण करते हुए हमने सदैव एक विशिष्ट आनन्द का अनुभव किया । इस यात्रा का अन्तिम दिन हमने श्री हाइनट दोर के साथ बिताया । कला के इस महान् प्रेमी ने अपने घर को मानो कला-संग्रहालय ही बना रखा है । मिट्टी के वर्तनो पर हाथ की कारीगरी का इतना सुन्दर काम देखकर ऐसा लगा कि मशीने कभी भी मनुष्य के हाथ की कला का मुकाबला नहीं कर सकती । ●



संगीत सौन्दर्य और  
शृंगार की धरती फ्रांस में





५ अगस्त १९६३ । हमने कला और संगीत की मधुमयी धरती फ्रांस में प्रवेश किया । हमारा पहला पड़ाव मोवोज नगर में था । लोगो में आकर्षण और उत्सुकता थी । नगरपालिका के लोग, चर्च के लोग और समाजवादी लोग हमारे आतिथ्य का प्रबन्ध कर रहे थे । पहले ही दिन स्थानीय दैनिक पत्रों ने हमारी यात्रा का वर्णन नगर की प्रमुख घटना के रूप में प्रकाशित किया । फ्रांस में भाषा की दिक्कत ने हमारे लिए कठिनाइयाँ शुरू कर दी । कभी-कभी तो पूरे दिन एक भी आदमी ऐसा नहीं मिलता था, जिसके साथ हम बात कर सकें । किसी नगर में पहुँचकर हम नगरपिता के कार्यालय में जाते, तो नगरपिता हमें तुरन्त पहचान लेते । अखबारों के जरिये उनके पास हमारे फोटो और समाचार पहुँचे हुए रहते थे । वे हमें आरामदेह होटलो में ठहराते, ठहरने और खाने का खर्च भी नगरपालिका की तरफ से करते, परन्तु एक शब्द भी बात किये बिना हम दूसरे दिन आगे चल पड़ते थे । कभी-कभी हम लोग रोटरी क्लब के सदस्यों के साथ ठहरते, तो उनके साथ अंग्रेजी में बात करना सम्भव हो पाता था ।

प्राकृतिक शोभा की दृष्टि से फ्रांस की धरती अनुपम है। फ्रांस का ग्राम-जीवन अभी भी पूरी तरह टूटा नहीं है। इसलिए गाँवों का वातावरण बहुत स्वच्छ और सुहावना है। प्रतिष्ठित लोग गाँवों में रहना और खेती करना पसन्द करते हैं। खाद्य-सामग्री और कृषि-उत्पादन का निर्यात करनेवाले देशों में फ्रांस का स्थान महत्वपूर्ण है। फ्रांस के लोग अगूरी हाला पीने के बड़े शौकीन होते हैं। सुबह का नाश्ता हो या दोपहर का

भोजन, रात हो

या दिन, मदिरा

की बोतल भोजन

की मेज पर

अवश्य रहेगी।

रूस में मदिरा-

पान के लिए

जैसा जबर्दस्त

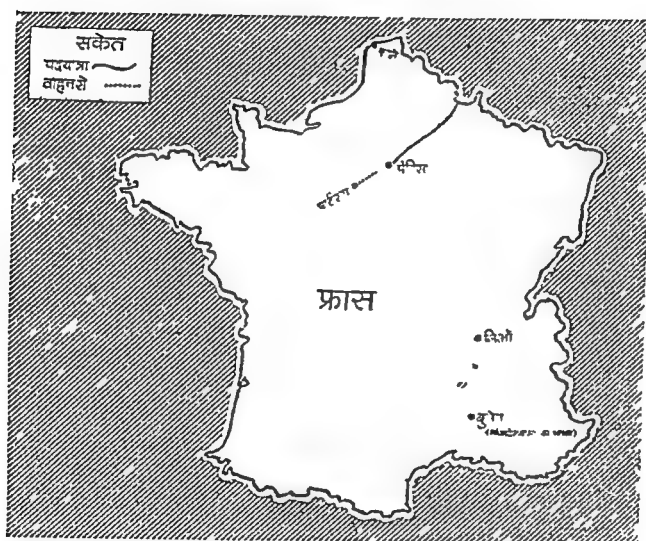
आग्रह हमारे साथ

किया जाता था,

उमकी याद फिर

ताजा हुई। हमें

यह भी लगा कि



फ्रांस के लोगों का दिल जल्दी नहीं खुलता, पर एक बार बुल-मिल जाने के बाद तो वे न्योछावर हो जाते हैं। फ्रांस के लोग बहुत स्वादिष्ट भोजन बनाते हैं। दो-दो हाथ लम्बी फ्रेंच राटियों खाने में बड़ी स्वादिष्ट होती है। फ्रेंच भोजन में पनीर का होना तो अनिवार्य है। सैकड़ों प्रकार का पनीर हमने देखा। सवेरे का नाश्ता बहुत हल्का होता है—कॉफी का एक बड़ा कप और 'क्वॉमों' नाम की रोटी। हम नाश्ते की टेबल पर बैठते ही कह उठते थे : 'क्वॉ सॉ मिस्फे।' ग्राम का भोजन तो एक ढावत जैसा ही होता है।

## पेरिस में

हम पेरिस पहुँचे । पेरिस है संसार की सुन्दरतम नगरियों में से एक । पैगन और विलास की सामग्रियों का यहाँ अत्यधिक प्रचलन है । रात्रि के विद्युत् प्रकाश में पेरिस की सुन्दरता और भी निखर उठती है । मीलों लम्बी और अत्यन्त चौड़ी सड़के इस महानगरी की विशेषता है । हर दस कदम पर सुन्दर और आधुनिक जलपान-गृह । जगह-जगह ऊँचे-ऊँचे गगन-चुम्बी महल । सुन्दर और कलापूर्ण द्वार । पेरिस के बीचोबीच सेइने नदी बहती है, जो नगरी के सौन्दर्य में चार चोंद लगाती है । अपने उत्कृष्ट कोटि के चित्र-संग्रहालयों के लिए तो पेरिस प्रसिद्ध ही है । पेरिस नगर का प्रतीक है एफेल टावर । बादलों से वाते करनेवाला यह टावर फ्रांस की औद्योगिक क्रान्ति का परिचायक है । पूरा-का-पूरा इस्पात-निर्मित । पेरिस को किसीने यूरोप की रानी कहा है और किसीने इसका नाम अलकापुरी दिया है । विश्व के सुप्रसिद्ध साहित्यकार विक्टर ह्यूगो ने पेरिस की नदी के किनारे बैठकर मानवता का जो राग अलापा और रूसो तथा वाल्टेयर ने जिस धरती पर स्वतन्त्रता, समानता एवं बन्धुता के सिद्धान्तों की रचना की, उन सिद्धान्तों ने हमारे हृदय में भी चेतना पैदा की ।

मुक्त प्रणय का पेरिस मानो केन्द्र ही है । बगीचों में, सड़कों पर, बेंचों पर, नदी के किनारे, जहाँ देखिये तरुण युगल एक-दूसरे को गल-बहियों में लिपटे हुए चुम्बन करते दिखाई पड़ेंगे । रात्रि-क्लबों में चलने-वाला अंग-प्रदर्शन तो कला के अन्तर्गत मान लिया गया है । इसमें कोई सन्देह नहीं कि पेरिस उन लोगों की नगरी है, जिनकी जेबें भरी हैं ।

स्वच्छता, सुन्दरता और सुव्यवस्था के कारण यह नगरी बहुत प्रसिद्ध है । सड़कों के नाम, मकानों के नम्बर इत्यादि बड़ी कुशलता के साथ लिखे हुए हैं । लोगों से मिलने-जुलने के लिए हम नगर के भिन्न-भिन्न



भागों में अकेले ही पैदल जाते थे, पर हमें कभी कोई दिक्कत नहीं आयी। हम अपने हाथ में नकशा रखते थे और उसके अनुसार आसानी से ठीक जगह पर पहुँच जाते थे। प्रत्येक मैट्रो ( भू-गर्भ रेल ) के स्टेशन पर भी बड़े-बड़े नकशे टँगे रहते हैं, ताकि कहीं भी यह जाना जा सके कि इस समय हम कहाँ हैं। ऐसे सुन्दर शहर में भी नीलाम करनेवाले के बाजार में जब हम पहुँचे, तो हमारा दम-सा घुटने लगा। लोग हमें सड़क पर से आवाज देकर बुलाते थे और सामान खरीदने का आग्रह करते थे। पेरिस का यह हिस्सा उस हिस्से से सर्वथा भिन्न था, जहाँ धनी लोग भोग-विलास का जीवन जीते हैं। ऐसे इलाकों के लोग अपने जीवन से थके और परेशान लगते थे। 'बार' में, नृत्य-घर में या थियेट्रो में मनोरंजन खोजते हुए वे घूमते हैं। विज्ञापनों की दमक, विजली की चमक और रात्रि-क्लबों का आकर्षण भी उन्हें शान्ति और समाधान देने में असफल रहता है। पेरिस के सौन्दर्य पर लोग मोहित हैं, पर अन्दर के जीवन में वहाँ भी एक घुटन है। पेरिस के लोग शनिवार और रविवार को कहीं नदी किनारे, पहाड़ की गोद में, जंगल की छाया में या गाँव की शान्ति में अपना समय बिताने के लिए भागकर जाते हैं।

पूरे यूरोप में ऊपर से दीखनेवाली यह समृद्धि एशिया और अफ्रीका के शोषण पर ही टिकी है। फ्रांस ने दक्षिण-पूर्वी एशिया और अफ्रीका के उपनिवेशों पर शासन करके जो लाभ कमाया और अल्जीरिया जैसे देश के साथ जो व्यवहार किया, उसकी कहानी के साथ यहाँ की समृद्धि को जोड़कर देखे, तब यह सहज महसूस होगा कि इस समृद्धि की तारीफ करने का मतलब है, शोषण पर आधारित अर्थ-रचना को बढावा देना। इसलिए इस स्वर्गपुरी के आगे सदैव 'लेकिन' का प्रश्न-चिह्न खड़ा है। एक शहर के नीचे हजार-हजार गाँवों की करुण-कथा छिपी है। इसलिए मुझे लगता है कि शहर से गाँव ज्यादा सुन्दर है। कृत्रिमता से प्रकृति ज्यादा लुभावनी है। महलों से ओपडियों ज्यादा सुहावनी है।

जब पिस्तौल पिघल गयी !



पेरिस अविस्मरणीय है। इसलिए नहीं कि वहाँ विश्वप्रसिद्ध एफेल टावर है। इसलिए भी नहीं कि वहाँ फला का बेहतरीन नमूना मोनोलिसा का चित्र है। इसलिए भी नहीं कि वहाँ के रात्रि-क्लबो और मदिरालयो की गान निराली है। इसलिए भी नहीं कि दिल्ली से १६ महीने में ६ हजार मील की पैदल यात्रा समाप्त कर हम वहाँ पहुँचे। पेरिस इसलिए अविस्मरणीय है कि वहाँ प्रेम के सामने पिस्तौल पिघल गयी। शान्ति के सामने क्रोध धुल गया। भय और अविश्वास प्रेमपूर्ण आतिथ्य में बदल गया।

यह घटना घटी १८ अगस्त १९६३ को। पेरिस का चहल-पहल-भरा राजपथ-एवेन्यू डी क्लिन, मकान नं० ३५। मैं अपने साथी प्रभाकर के साथ गांधीवादी श्रीमती पेटिट से मिलने के लिए उक्त मकान पर पहुँचा। हम जब मकान के सामने पहुँचे, तो दरवाजे से एक युवती बाहर निकल रही थी। उस युवती ने जैसे ही हमें देखा, वह डरी, घबरायी और तुरन्त लौट पड़ी। घर के भीतर जाकर उसने दरवाजा बन्द कर लिया। हम कुछ समझ नहीं सके कि बात क्या है। हमने पता अच्छी तरह से देखा। मकान नं० ३५। ठीक पता था। पेरिस में किसी भी घर का प्रमुख दरवाजा खोलने के लिए 'ऑटोमेटिक बटन' होता है। हमने बटन दबाकर दरवाजा खोला। हम ज्यों ही अन्दर पहुँचे कि उस युवती की धिग्घी-सी बँध गयी। उसका सन्देह पक्का हो गया कि नायब हम उसीके पीछे है। वह घबरायी हुई जल्दी-जल्दी सीढ़ियों पर चढ़ने लगी।

हम दरवाजे के पास ही खड़े थे। दो मिनट बाद हमने देखा कि एक अधेड़ उम्र का हट्टा-कट्टा पुरुष जल्दी-जल्दी सीढ़ियों से उतर रहा है। उसके हाथ में भारी हुई पिस्तौल थी। उसकी उँगली पिस्तौल के घोटे पर थी। उसका चेहरा लाल था। उसके ललाट पर पसीना था।

वह क्रोधित कम था, भयभीत अधिक । युवती ऊपर से झुककर देख रही थी, पर नीचे आने का साहस नहीं कर पा रही थी । पुरुष और युवती दोनों यह सोच रहे थे कि हम शायद पिस्तौल देखकर डरेगे और तुरंत भाग जायेंगे । पर ऐसा नहीं हुआ । वह पिस्तौल मेरी छाती के नजदीक लाया । मैं इस सारी घटना पर अचम्भा कर रहा था और हँस भी रहा था । आखिर मासला क्या है ? हम फ्रांसीसी भाषा नहीं जानते थे । बात कैसे करे ? हमने अंग्रेजी में उससे बार-बार कहा कि हम यहाँ अपने मित्र से मिलने आये हैं और उसका पता ढूँढ रहे हैं । पर वह अंग्रेजी नहीं जानता था । फ्रांसीसी में उसने हमें ललकारा, डाँटा । वह क्या कह रहा है, यह हम समझ नहीं सके । हम भागे भी नहीं । तब उसने पुलिस को कई आवाजे दी । फिर भी हम खड़े रहे । इशारे से हम इतना समझे कि वह हमें बाहर निकल जाने के लिए कह रहा था, पर हम बाहर नहीं निकले । हम शान्त खड़े थे । उसने दूसरे हाथ में हमें धक्का दिया । हमारी 'शान्ति' को वह सह नहीं सका । उसने हमारा गला पकड़कर हमें घर से बाहर कर दिया । हम तब भी उसके भोलेपन पर हँस रहे थे और बड़े प्यार से उसकी ओर देख रहे थे । हम घर के बाहर ही खड़े रहे ।

हमें काफी देर हो गयी । हमने सोचा कि यदि हम यों ही चले जायेंगे, तो इस भाई के मन का भ्रम कभी नहीं मिटेगा । उसे हमारे बारे में सचमुच कोई भ्रान्ति हुई है । इसलिए हम खड़े रहे । उसने फिर से एक बार इशारे से डाँटते हुए कहा : “चले जाओ यहाँ से ।” वह हमें बदमाश समझ रहा था ।

इतने में उसी घर से एक दूसरी महिला, जो यह सब देख रही थी, बाहर आयी । सौभाग्य से यह महिला अंग्रेजी जानती थी । उसके सामने हमने अपनी परेशानी रखी । उस महिला ने कहा : “आप ठीक हैं । श्रीमती पेटिट इसी मकान में छठी मंजिल पर रहती हैं । अभी वे घर पर नहीं हैं, बाहर गयी हैं ।” और फिर उसने युवती और पुरुष को

हमारी पूरी बात बतायी। तब तो क्या पूछना, वह बेचारा बहुत पछताने लगा और बार-बार क्षमा माँगने लगा। वह युवती भी बहुत शर्मिन्दा हुई। युवती से हमने अग्रजी जाननेवाली महिला को दुभाषिया बनाकर पूछा कि आखिर वह हमें देखकर डर क्यों गयी? तो उसने कहा—“आप लोगो ने जो वेश धारण कर रखा है—चूड़ीदार पायजामा और लम्बा कुरता—वह मैंने अपने जीवन में पहली बार देखा है। इस अजीबो-गरीब पहनावे को देखकर मैं डर गयी। मैंने सोचा, ‘आप लोग शायद मुझे तग करने के लिए इस घर में बुसे है।’ इस पर हम सब लोग बहुत हँसे। चूड़ीदार पायजामा और कुरता ऐसी करामात दिखायेगा, वह मैंने सपने में भी नहीं सोचा था। फिर तो हम उस मकान में श्रीमती पेटिट से मिलने दसो बार गये। हर बार वह युवती बड़े प्रेम से हमारा स्वागत करती, आतिथ्य करती, अपना नौनिहाल पुत्र हमारी गोद में दे देती और हमारे साथ बुल-मिलकर बातें करती। कैसी अविस्मरणीय घटना है यह।

## राष्ट्रपति-भवन में गिरफ्तारी

हमने फ्रांस की जनता और सरकार से बार-बार यह निवेदन किया कि फ्रांस अणु-अस्त्रों के प्रयोगों पर पाबन्दी लगाये। पर राष्ट्रपति देगाल का यह कहना था कि फ्रांस के पास अभी तक ऐसे शक्तिशाली अणु-अस्त्र नहीं है, जैसे कि रूस और अमेरिका के पास है। रूस और अमेरिका ने बमों से अपने भण्डार भर लिये हैं और अब सारी दुनिया को वे अपने प्रभाव में रखना चाहते हैं, क्योंकि अणु-अस्त्रवाला देश ही स्वतन्त्रता के अपने सिद्धान्तों की रक्षा बिना किसीके सामने दबे कर सकता है। इसलिए या तो पूर्ण निःशस्त्रीकरण हो. अन्यथा फ्रांस स्वतन्त्र अणु-शक्ति का विकास करेगा।

यह ठीक है कि आणविक प्रयोगों पर प्रतिबन्ध मात्र लगाने से अणु का खतरा टल नहीं जाता। किन्तु सभी देश यदि यही कोशिश करें कि

हम भी अपनी स्वतन्त्र अणु-शक्ति बनाये, तो शस्त्र-प्रतियोगिता बढेगी और समस्या अधिक-से-अधिक उलझेगी। इसलिए हमने आणविक प्रयोगों पर पाबन्दी लगाने की माँग लेकर राष्ट्रपति-भवन के सामने प्रदर्शन करने की घोषणा की। एक बुजुर्ग शान्तिवादी ने कहा कि “हमारे राष्ट्रपति को फ्रांस पर गर्व है। वे फ्रांस को यूरोप का नेता मानते हैं। इसलिए एंग्लो-अमेरिकन नीति के साथ उनकी पटरी नहीं बैठती। लेकिन उनका गर्व वास्तविकता पर आधारित नहीं है।” इसी तरह एक दूसरे सज्जन ने भी कहा कि “फ्रांस अगर आणविक हथियारों का प्रयोग करके वायुमण्डल को विपाक्त बनायेगा, तो सारे संसार में उसे बदनामी ही मिलेगी। आणविक हथियारों के निर्माण की होड़ में नेतृत्व पाने की इच्छा के बजाय निःशस्त्रीकरण की होड़ में हमारे राष्ट्रपति नेतृत्व लें, तो कितना अच्छा हो। संसार के वायुमण्डल को विपैला करने का अधिकार किसीको नहीं देना चाहिए।” आज तक बड़े राष्ट्रों ने अपनी शक्ति के गर्व पर मानव-जाति पर जो अन्याय किया, उसे फिर से नहीं दुहराया जाना चाहिए। फ्रांस अणु-अस्त्रों का प्रयोग अपनी धरती पर न करके अफ्रीका में जाकर क्यों करता है? यह प्रश्न पूरी मानव-जाति से सम्बन्ध रखता है, इसलिए प्रत्येक मानव, भले ही वह संसार के किसी भी कोने में रहता हो, यह प्रश्न पूछने का अधिकारी है।

हमने अत्यन्त विनय के साथ राष्ट्रपति देगाल को पत्र लिखा, पर हमें उसका कोई उत्तर न मिला। दूसरा पत्र लिखा, उसका भी कोई उत्तर नहीं। तीसरा पत्र लिखा, फिर भी कोई उत्तर नहीं। आखिर हमने घोषणा की कि १६ सितम्बर को साढ़े चार बजे हम राष्ट्रपति-भवन के सामने पूर्ण अहिंसात्मक ढंग से शान्तिपूर्वक सत्याग्रह प्रारम्भ करेंगे। हमारे इस निर्णय की सूचना विजली की तरह सर्वत्र फैल गयी। एक जर्मन युवक, वोल्फगांग हमारे साथ सत्याग्रह में शामिल होने के लिए आये। डेनमार्क के युवक ओल भी हमारे साथ शामिल हो गये। अपने कार्यक्रम की सूचना भारतीय राजदूत अली यावर जंग को भी दी। १५ सितम्बर

की रात को प्रभाकर ने एक गानदार 'वैनर' लिखकर तैयार किया। १६ सितम्बर को हमारे शान्तिवादी मित्रों ने सत्याग्रह पर जाने से पहले गानदार भोज का आयोजन किया। उसके बाद 'क्वेकर हाउस' में एक छोटा-सा पत्रकार-सम्मेलन हुआ। हमारे मित्रों ने सुझाया कि हम राष्ट्र-पति-भवन के सामने पैदल चलकर न जायें। बहुत सम्भव है कि पुलिस रास्ते में ही हमें रोक ले। इसलिए हम चारों सत्याग्रही कार में चले।

राष्ट्रपति-भवन के सामने कार पार्किंग की सुमानियत है, पर एक मित्र ने कार पार्क करने का खतरा उठाया। हमारे पहुँचने के पहले ही अनेक पत्रकार, फोटोग्राफर आदि वहाँ पहुँच गये थे। हर १० कदम पर सिपाही खड़े थे। ज्यों ही साढ़े चार बजे कि हमारी कार खाना हुई और राष्ट्रपति-भवन के दरवाजे के ठीक सामने निषिद्ध स्थान पर रोकी गयी। पुलिस ने ज्यों ही कार खड़ी करने के लिए कहना शुरू किया कि हम पलक मारते कार से बाहर निकल पड़े। हमने अपना वैनर खोलना शुरू किया कि सिपाहियों ने आकर वैनर को पकड़ लिया। हम वैनर पूरा खोल नहीं पाये थे कि वह छीन लिया गया। फोटोग्राफर फोटो ले रहे थे। इतने में हमने देखा कि भारतीय दूतावास के सांस्कृतिक सचिव भी वहाँ उपस्थित हैं। आखिर राष्ट्रपति-भवन के सुरक्षा-अधिकारी खुद दरवाजे पर आये और हमसे बोले : "आप लोग राष्ट्रपति-भवन में आमन्त्रित हैं। अन्दर चलिये।"

हम यह नहीं समझ सके कि यह आमन्त्रण असल में गिरफ्तारी का नोटिस है। हम अन्दर गये। पीछे से अपने-आपको 'गार्डीज की मित्र' बतानेवाली दो फ्रेच महिलाओं ने हमारे मिशन के बारे में और सत्याग्रह के बारे में परचे वॉटने शुरू कर दिये। वे तुरन्त ही गिरफ्तार कर ली गयीं। बाद में उनसे तीस-तीस रुपया जुर्माना लेकर उन्हें छोड़ दिया गया।

हम लोग सुरक्षा-अधिकारी के सामने एक आरामदेह सोफे पर बैठ गये। अधिकारी ने कहा : "राष्ट्रपति को आपकी सभी चिट्ठियाँ मिली हैं और उन्हें यह भी मालूम है कि आप इस समय क्यों हैं। पर न तो

लोग अपने इरादे के पक्के हैं।” हमे फिर उसी कोठरी में बन्द कर दिया गया। शाम को भी हमने कुछ नहीं खाया। हमारे इस उपवास के कारण पुलिस-अधिकारी बहुत चिन्तित हुए। हमारे न खाने की सूचना जेल-कर्मचारी बराबर अधिकारियों के पास पहुँचा रहे थे। शहर के अनेक शान्तिवादी, राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय पत्रकार और भारतीय दूतावास के अधिकारी बार-बार टेलीफोन करके हमारे बारे में पूछताछ कर रहे थे।

१८ सितम्बर को जब हमे पुलिस-अधिकारी के सामने पेश किया गया, तो हमने देखा कि वहाँ भारतीय दूतावास के दो अधिकारी भी उपस्थित हैं। पुलिस-अधिकारी ने कहा : “गृह-मंत्रालय से हमें यह आदेश मिला है कि आपको ‘देश निकाला’ दे दिया जाय।” और उन्होंने देश निकाले का लिखित आदेश हमारे हाथ में थमा दिया। २४ घण्टे के भीतर फ्रेच-सीमा से बाहर निकल जाने का यह नोटिस था। पुलिस-अधिकारी ने अपनी बात जारी रखते हुए कहा : “कल सुबह पेरिस से साढ़े दस बजे एयर फ्रांस का विमान जाता है। उसमें आपके लिए दो सीटें रहेगी। आपको विमान में डालकर दिल्ली पहुँचा दिया जायगा।” इस पर भारतीय दूतावास के अधिकारियों ने कहा : “आप इन्हे दिल्ली भेज रहे हैं, इससे और भी ज्यादा गलतफहमी पैदा होगी। इनकी यात्रा का कार्यक्रम ब्रिटेन और अमेरिका जाने का है। अतः वजाय दिल्ली भेजने के आप इन्हे ब्रिटेन क्यों नहीं भेज देते?” इस तरह काफी देर तक बातचीत हुई और आखिर पुलिस-अधिकारी ने कहा : “मैं इन लोगों की यात्रा के उद्देश्य से और इनके साहस से बहुत प्रभावित हूँ। कानूनी बन्धनों के कारण मुझे इन्हे गिरफ्तार करके जेल में बन्द करना पड़ा, पर मेरी भी यही कामना है कि इनकी आगे की यात्रा भग्न न हो, इसलिए आपका सुझाव मान्य करने के लिए मैं गृह-मंत्रालय से कहूँगा।” फिर दूतावास के अधिकारियों ने उपवास समाप्त करने का आग्रह किया। हमने कहा : “यह उपवास जेल के अमानवीय व्यवहार के कारण है। यदि हमें उचित रीति से आकाशवाणी भोजन उपलब्ध किया जायगा, तो

उपवास समाप्त करने में हमें कोई दिक्कत नहीं। इस पर पुलिस-अधिकारी ने कहा : “आपके साथ जेल-कर्मचारियों ने जो बर्ताव किया, उसके लिए मुझे खेद है। आज मैं नया आदेश देकर उचित व्यवस्था करने के लिए कह रहा हूँ।”

REPUBLIQUE FRANCAISE  
PRÉFECTURE DE POLICE  
DIRECTION  
DE LA POLICE GÉNÉRALE  
8<sup>e</sup> Bureau  
N E.224.226.

Paris le 18 SEPT 1962 19

# REFUS DE SÉJOUR

(Application de la circulaire ministérielle  
n° 1523 du 20.9.1946)

Monsieur E U M A R Satish

né le 9 Août 1936 à Dingergark (Indes)

de nationalité indienne

demurant 106, rue Sadi Carnot à Vanves

est autorisé à résider en France et devra, en conséquence, quitter le territoire français le 19 Septembre 1963

à moins "a trouble l'ordre public"

Il se déclare se rendre à l'étranger

Le présent bulletin rend l'entrée dans le territoire français jusqu'à la date fixée pour son départ

Signature du titulaire

Signature du titulaire

Signature du titulaire

Signature du titulaire

Signature du titulaire

Signature du titulaire

Signature du titulaire

Signature du titulaire

Signature du titulaire

Signature du titulaire

Signature du titulaire

Signature du titulaire

Signature du titulaire

Signature du titulaire

Signature du titulaire

Signature du titulaire

Signature du titulaire

Signature du titulaire

Signature du titulaire

Signature du titulaire

Signature du titulaire

Signature du titulaire

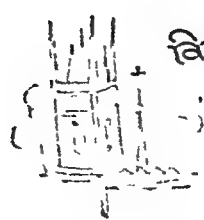
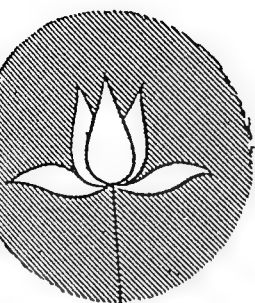
## देश निकाले का आदेश

हम ज्यों ही पुलिस-अधिकारी के कार्यालय से बाहर आये कि श्रीमती पेटिट—जो कि १६ सितम्बर को हमारे समर्थन में परचे वाँटने के कारण कुछ घण्टों के लिए हिरासत में ले ली गयी थी—हमसे मिलने के लिए पहुँचीं। हम श्रीमती पेटिट के मातृवन् व्यवहार को कभी भूल नहीं



सकेगे । वे बार-बार हमारे बारे में पूछताछ करती रही थी । हमसे मिलते ही हमारा भूखा चेहरा देखकर उन्होंने पूछा : “क्यों इस तरह कमजोर लग रहे हैं आप ?” और ज्यों ही उन्हें मालूम हुआ कि पिछले दो दिन से हमने कुछ भी नहीं खाया है, वे एकदम चिन्तित हो उठी । वे पुलिस-अधिकारी से हमें थोड़ी देर रोकने के लिए कहकर जल्दी से गयी और बाजार से विस्कुट, कॉफी, आलू चिप्स, केले आदि बहुत-सा सामान ले आयी । कहने लगी : “आपका उपवास मेरे हाथों टूटे ।” हम उनके आग्रह को टाल नहीं सके और वही पर हमने उपवास समाप्त किया ।

१९ सितम्बर को दोपहर के दो बजे हम फिर से पुलिस-अधिकारी के दफ्तर में ले जाये गये । वहाँ अचानक हमने देखा कि स्वयं भारतीय राजदूत श्री अली यावर जग आ रहे हैं । “फ्रांसीसी सरकार ने गिरफ्तार व्यक्तियों को जेल से उठाकर हमारे देश में क्यों डाल दिया !” ऐसी शिकायत ब्रिटिश सरकार को करने का अवसर न मिले और ‘पुलिस के पहरे में हमें देश से निर्वासित किया गया’ ऐसा असुहावना प्रभाव लोगों पर न पड़े, इसलिए राजदूत महोदय ने हस्तक्षेप करके हमें रेल द्वारा पेरिस से डोवर ( ब्रिटिश सीमा का पहला बन्दरगाह ) तक भिजवा दिया । यो समाप्ति हुई पेरिस-जेल के प्रकरण की ! और यो समाप्त हुई फ्रांस की यात्रा ।



विचार-स्वातंत्र्य की भूमि...  
ब्रिटेन में



फ्रांस से देश निकाला पाकर बर्तानिया की धरती पर जब हमने पहला कदम रखा, तो लगा कि जैसे दुनिया ही बदल गयी है। हमारे लिए सुविधा की बात यह थी कि इस धरती पर भापा की दिक्कत नहीं थी। समुद्र के तट पर बसे हुए डोवर बन्दरगाह से हमारी पदयात्रा शुरू हुई। कदम-कदम चलकर २५ सितम्बर १९६३ को हमने लन्दन शहर में प्रवेश किया।

हाथ में 'युद्ध-विरोधी' पोस्टर लेकर जब हम टेम्स नदी पर बना हुआ लन्दन ब्रिज पार कर रहे थे, तो एक सिपाही ने आकर हमें रोका। पूछने लगा कि आपके पास इस तरह का पोस्टर लेकर चलने की सरकारी आज्ञा है या नहीं? हमने कहा : "हम तो अभी-अभी लन्दन आये हैं और दिल्ली से यहाँ तक इसी तरह बिना किसी सरकारी आज्ञा के अपना युद्ध-विरोधी पोस्टर हाथों में उठाये चलते रहे हैं। हमारा यह निर्णय है कि वाशिंगटन पहुँचने तक हम इसी तरह चलने रहेंगे।" सिपाही ने हमें धमकाते हुए कहा : "बन्द करो यह बहस और इस पोस्टर को मोड़कर कहीं अन्दर छिपा लो।" उसकी इस धमकी के सामने हम

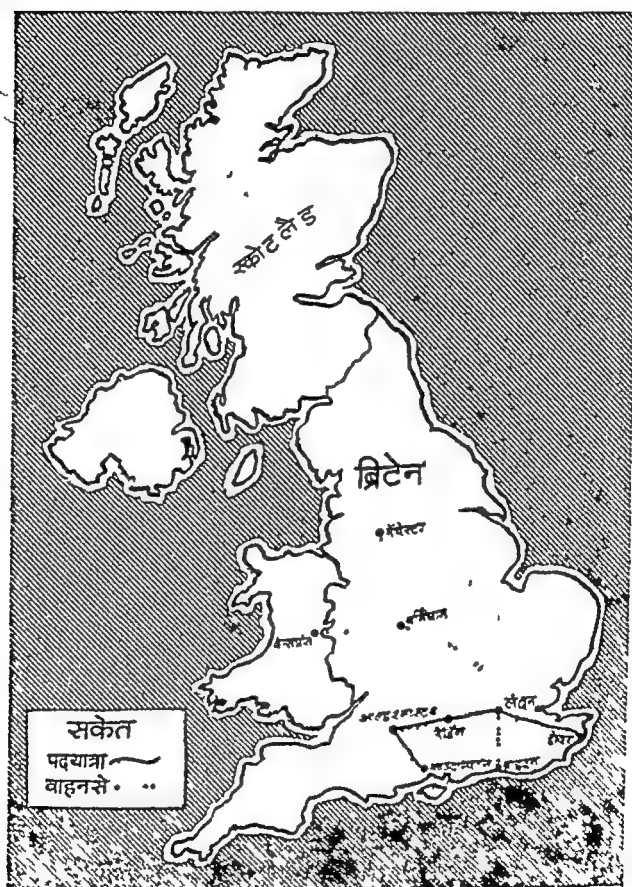
झुकने को तैयार नहीं हुए। हमने कहा : “पोस्टर को मोड़कर रखना असम्भव है। हम इसी तरह चलेगे।” उसने कहा कि अगर आप नहीं मानेंगे तो मैं आपको गिरफ्तार कर लूँगा।” हमने कहा : “गिरफ्तारी का क्या डर बताते हो ? गिरफ्तार करना है तो कर लो। हम अभी-अभी पेरिस की जेल से छूटकर आ रहे हैं। अच्छा ही है, लन्दन की जेल भी देख लेंगे।” जब हम इस तरह निर्भय होकर बात कर रहे थे, तो सिपाही को भी थोड़ा अचरज हुआ। उसने पूछा : “यह पेरिस की जेल फिर क्या बला है ?” तब हमने उसे पूरी कहानी सुनायी। हमारी इस बातचीत से तथा पदयात्रा के वृत्तान्त से वह चक्कर में पड़ गया और कहने लगा : “अच्छा भाई, जहाँ जाना है, जाओ। अपना रास्ता लो।”

लन्दन में हमने लम्बा समय बिताया। लन्दन के एक प्रमुख दैनिक पत्र ‘गार्डियन’ ने हम लोगों के बारे में एक लम्बा लेख लिखा। उसके बाद तो प्रचार का तौता ही लग गया। हम अनायास ‘टेलीविजन हीरो’ बन गये। टेलीविजनवालों ने हमें छह मिनट का समय दिया और उस छह मिनट के लिए करीब ६ सौ रुपये भी हमें दिये। इसी तरह वी. बी. सी. रेडियो पर भी हमें ब्राडकास्ट करने का अवसर दिया गया। उसके लिए भी हमें करीब ६ सौ रुपये मिले। साधारण तौर पर हम रुपये स्वीकार नहीं करते। मास्को में जब रेडियोवालों ने हमें रुपया देना चाहा, तो हमने उसे अस्वीकार कर दिया और उनमें कहा कि आप यह रकम मास्को की शान्ति-परिषद् को दे दीजिये, ताकि वे शान्ति-आन्दोलन को बढ़ावा देने के लिए उसका इस्तेमाल कर सकें। लेकिन लन्दन में हमने यह रकम इसलिए स्वीकार कर ली कि बर्तानिया से अमेरिका तक हमें जहाज से जाना था और हमारा ग्वर्च न्यानीय शान्तिवादी संस्थाएँ देनेवाली थी। शान्तिवादी संस्थाओं की आर्थिक हालत तो सभी जगह कमजोर होती है, इसलिए उनका बोझ कुछ हल्का हो, ऐसा हमने सोचा। कम पटनेवाली रकम शान्ति-संस्थाओं ने दी। इसलिए आमानी में जहाज के टिकट खरीदे जा सके।

लन्दन एक निराला शहर है। कलकत्ता, बम्बई और दिल्ली में मैं काफी रहा हूँ। लाहौर, काबुल और तेहरान की सड़को से भी मैं परिचित हो गया। मास्को में भी महीनाभर बिताया। बर्लिन और ब्रुसेल्स की आसमान छूनेवाली इमारतों की छाया में भी मैंने दिन गुजारे। यद्यपि पेरिस का जवाब पेरिस ही है, उसकी शोभा निराली ही है; लेकिन लन्दन भी लन्दन ही है। लन्दन का निरालापन इसलिए नहीं है कि वह नीचे से पूरा खोखला है और वहाँ रेलें दौड़ती हैं। इसलिए भी नहीं कि फैशन, सौन्दर्य और आडम्बरपूर्ण सामग्रियों का वह केन्द्र है। इसलिए भी नहीं कि वहाँ विश्वविख्यात अजायबघर हैं। इसलिए भी नहीं कि लन्दन मनुष्यों का जगल जैसा है। बल्कि लन्दन की विशेषता है, वहाँ की वैचारिक जाग्रति और राजनैतिक चेतना। अगर पेरिस में कला, बुद्धिवाद और साहित्य का अन्तर्राष्ट्रीय सगम है, तो लन्दन सामाजिक, राजनैतिक और अन्य सार्वजनिक चेतना का अन्तर्राष्ट्रीय केन्द्र है। ९ करोड़ की आबादीवाले इस वर्तानिया देश के करीब एक करोड़ लोग तो केवल इस टेम्स नदी के किनारे ही बसे हुए हैं। बड़े-बड़े मैदानों, बगीचों और जलाशयों के लिए यह शहर बहुत प्रसिद्ध है। जगह-जगह पर बेहतरीन नमूने की कलात्मक शिला मूर्तियाँ हैं। दिल्ली में जैसा चौदनी चौक है, लन्दन में वैसा ही है आक्सफोर्ड राजपथ और गिज़ेन्टमार्ग। विश्वभर की विलास-सामग्रियाँ यहाँ उपलब्ध हैं।

एक तरफ तो एशिया और अफ्रीका में अमूल्य लोग बिना रोटों के मर रहे हैं, दूसरी तरफ यूरोप और अमेरिका के लोग फैशन पर, मौज-बहारों पर, सेना और हथियारों पर तथा अणु ज़मों पर पानी की तरह पैसा बहा रहे हैं। धनी लोग सदा ही यह सोचते हैं कि उनकी पैसावारी पर, उनकी मौज-बहारों पर तथा उनके भोग-विभागों पर गरीब लोग नजर न लगावे। वे उनके ऐशानों के साधनों पर नजर न करें। इसीलिए वे चारों तरफ बन्दूक का पहगा फैलाकर रखते हैं।

लन्दन की हवा और तमिळी में हर तरह के विचारों को फलने-फूलने का अवसर मिलता है। हजारों तरह की सस्थाओं का जाल बिछा है। साम्यवादी, समाजवादी, पूँजीवादी, शान्तिवादी, अराजकतावादी, सेनावादी आदि सभी प्रकार के लोग यहाँ प्रश्रय पाते हैं। मार्क्स को भी



अपनी किताब, कैपिटल—‘पूँजी’ लन्दन में ही लिखने का अवसर मिला था। कितनी विविधता है लन्दन नगर में। एक तरफ यह हाल है कि सड़कों पर सैकड़ों जगह अखबारों की पेटियाँ रखी हैं, आप खुद पैसा डालिये, अखबार उठा लीजिये। सैकड़ों बोतलें दूध से भरी पटी हैं। पैसा

रखिये, बोतल ले लीजिये । कभी कोई गड़बड़ी नहीं होती । दूसरी तरफ करोडो का डाका डालनेवाले लोग भी यहाँ हैं । एक तरफ हजारों रुपये रोज किराया देकर होटलो में रहनेवाले लोग हैं, तो दूसरी तरफ भीख माँगकर गुजारा करनेवाले और गन्दी बस्तियों में रहनेवाले लोग भी हैं । लेकिन लन्दन ही क्यों, यह हालत तो प्रायः सभी शहरों की है ।

लन्दन में एक पार्क है—हाइड पार्क । इस पार्क में एक ऐसा मंच है, जहाँ किसी भी रविवार को कोई भी, किसी विचार का आदमी आकर अपने विचार सार्वजनिक रूप से व्यक्त कर सकता है । इस तरह का लोकमंच और किसी शहर में मैंने नहीं देखा । कवियों, साहित्यकारों और कलाकारों का भी यह एक अद्भुत गढ़ है । हर शनिवार और रविवार को लन्दन में सैकड़ों प्रकार की विचार-गोष्ठियाँ, चित्र-प्रदर्शनियाँ, साहित्य-सभाएँ आदि होती रहती हैं । कितने ही अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन भी होते हैं । अफ्रीका की आजादी का मसला हो या रंग-भेद का मसला, अविकसित देशों को मदद देने का काम हो या भूख-निवारण आन्दोलन, हर तरह की प्रवृत्तियों के लिए लन्दन में संस्थाएँ खुली हुई हैं ।

लन्दन का जीवन काफी महँगा है । मकान-किराया भी महँगा है, यातायात भी । हाँ, भोजन बहुत सस्ता है । रोटी, दूध, मक्खन जैसी चीजों पर सरकार खास तौर से रिबेट—छूट देती है । कोई भी आदमी थोड़े खर्च में अपना काम चला सकता है । खाद्य-सामग्री अत्यन्त शुद्ध और प्रामाणिक मिलती है । मिलावट का सवाल ही नहीं । ये तथाकथित भौतिकवादी लोग इन छोटे-छोटे दैनिक व्यवहारों में भारत के तथाकथित अध्यात्मवादियों से कहीं ज्यादा ईमानदार और सच्चे हैं ।

पश्चिम के शान्ति-आन्दोलन का रुख

पश्चिमी देशों के वर्तमान शान्ति-आन्दोलन की शुरुआत युद्ध-विरोधी आन्दोलन के रूप में हुई । लेकिन इस समय आन्दोलन ने अधिक



व्यापक स्वरूप लिया है। बीसियों संस्थाएँ शान्ति के विभिन्न पहलुओं को लेकर विस्तृत पैमाने पर काम कर रही हैं। इन सब कामों को यदि एक साथ मिलाकर देखे, तो उसका स्वरूप पूरी तरह अहिंसक समाज-रचना का स्वरूप होगा।

आज पश्चिम के शान्ति-आन्दोलन की गाड़ी का जुआ जिन लोगों के कंधों पर है, उनमें अधिकतर लोग जवान हैं। वहाँ के जवानों की कार्य-तत्परता, निष्ठा और नेतृत्व-शक्ति देखकर ताज्जुब होता है। खास तौर से ब्रिटेन की 'शत समिति' के लोगों ने तो युवा नेतृत्व का अन्यतम उदाहरण पेश किया है। वे किसी भी नेता की बात को आँख मूँदकर मानने को तैयार नहीं होते। नेताओं के साथ उनकी जमकर बहस होती है। मैंने ऐसी कुछ सभाओं और गोष्ठियों में भाग लिया, तो सचमुच मजा आ गया। हमें भी भारत के शान्तिवादी आन्दोलन में निस्संकोच और खुलकर बहस करने की परम्परा डालनी चाहिए।

वैचारिक स्तर पर व्यापकता ने पाँव पसार दिए हैं, पर व्यावहारिक और कार्यक्रम के स्तर पर स्थिति अभी भी वही है। पश्चिम के शान्ति-आन्दोलन के बारे में मेरा जो अध्ययन है, उससे मुझे लगता है कि यहाँ के साथी अब तक अपने कार्यक्रमों में युद्ध-विरोध के एकांगी पहलू पर ही ज्यादा जोर दे रहे हैं। अभी भी सम्पूर्ण रूप से अहिंसक समाज-रचना की बात उठाने जोर से जनता के सामने पेश नहीं की जाती। खास तौर से अणु-अस्त्र-विरोधी आन्दोलन (सी. एन. डी.) तो केवल आणविक युद्ध की बात पर ही जोर देता है। इस आन्दोलन के कार्यकर्ता आणविक युद्ध की खोफनाक कल्पना पेश करके जनता के दिलों में भय पैदा करते हैं। 'शत समिति' के लोग कुछ ज्यादा तीव्र हैं। वे केवल आणविक अस्त्रों का ही नहीं, बल्कि सभी अस्त्रों का विरोध करते हैं। अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए सत्याग्रह, सविनय कानून-भंग, अगहयोग आदि मांगों को अपनाते हैं। इसके अलावा 'युद्ध-विरोधी अन्तर्राष्ट्रीय' तथा

क्वेकर्स लोग हैं, जो हर हालत में युद्ध को अपराध मानते हैं। पर ये सभी संस्थाएँ मात्र युद्ध के पहलू पर केन्द्रित-सी प्रतीत होती हैं।

ब्रिटेन के शान्ति-आन्दोलन में 'पीस न्यूज' साप्ताहिक का किसी भी नेता या संस्था से कम महत्त्व नहीं है। 'पीस न्यूज' ने अपना स्वतन्त्र अस्तित्व खड़ा किया है और वह शान्ति-कार्यकर्ताओं की वैचारिक बहस के लिए खुले मंच की भूमिका अदा कर रहा है। 'पीस न्यूज' में जव-तब शान्ति-आन्दोलन की कमियों को जॉचा-परखा जाता है। कमियों की कड़ी आलोचना की जाती है। लॉर्ड रसेल जैसे नेताओं के दृष्टिकोण पर भी खुली टीका करने का मौका दिया जाता है। 'पीस न्यूज' किसी एक संस्था का पत्र नहीं, वह सभी कार्यकर्ताओं और संस्थाओं को एक सूत्र में पिरोनेवाला विचार-पत्र है। 'पीस न्यूज' ने खास तौर से एकपक्षीय निःशस्त्रीकरण, आणविक सुरक्षा के स्थान पर अहिंसक सुरक्षा, अहिंसक समाज रचना आदि पहलुओं को शान्ति-आन्दोलन के साथ जोड़ने में सफलता पायी है।

वेल्स प्रान्त में जाकर हमने बट्टेण्ड रसेल से भी मुलाकात की। ९३ वर्ष की अवस्था में भी वे बहुत ही सक्रिय हैं।

इन सारे उज्ज्वल पहलुओं के बावजूद हमने सभी जगह यह अनुभव किया कि कार्यकर्ता काम की गति से सन्तुष्ट नहीं हैं और लक्ष्यों के बारे में स्पष्ट नहीं हैं। पूरे आन्दोलन में गत्यवरोध-सा महसूस किया जा रहा है। "क्या आणविक निःशस्त्रीकरण का आन्दोलन समाप्त हो गया है?"—यह सवाल स्वयं कार्यकर्ता अपने मन से पूछ रहे हैं। विशेष रूप से मास्को में सम्पन्न अणु-प्रयोग निषेध-सन्धि के बाद यह प्रश्न और तीव्र हुआ है। जिनका लक्ष्य केवल आणविक निःशस्त्रीकरण तक सीमित था, वे समझते हैं कि अब हमारे लिए ज्यादा काम नहीं बचा है। मास्को-सन्धि से हथियारों पर किये जानेवाले खर्च में कोई कमी नहीं आयी है। ऐसी परिस्थिति में 'सी. एन. टी.' आन्दोलन के नामने अपने लक्ष्य को फिर से परिबर्धित करने की जरूरत पैदा हुई है।

## अमेरिकी वीसा पाने में २२ दिन !



पासपोर्ट और वीसा प्राप्त करना बहुत आसान नहीं होता। अमेरिका के लिए वीसा प्राप्त करने में हमें २२ दिन संघर्ष करना पड़ा। हालाँकि हर नागरिक का यह सहज मानवीय अधिकार है कि वह दुनिया के किसी भी कोने में रहनेवाले लोगों के पास जाय और उनसे मिलकर मित्रता स्थापित करे। साथ ही सरकारों का यह कर्तव्य है कि एक-दूसरे देश में जाने-आनेवालों को सुविधाएँ प्रदान करे। पर दुर्भाग्यवश आज की अधिकांश सरकारें अनेक अवसरों पर अन्तर्राष्ट्रीय यात्राओं के लिए बाधा पैदा करती हैं। आदर्श समाज तो तब होगा, जब सारे ससार के लोग बिना पासपोर्ट और वीसा के स्वतन्त्रतापूर्वक एक-दूसरे के देशों में भाई-भाई की भाँति आ-जा सकेंगे और विश्व-नागरिक माने जायेंगे।

भारत से हमने पाकिस्तान, अफगानिस्तान और ईरान के लिए वीसा प्राप्त किया था। रूस के लिए तेहरान में, पोलैण्ड के लिए मास्को में, जर्मनी के लिए वारसा में, फ्रान्स के लिए बोन में और ब्रिटेन के लिए पेरिस में सम्बद्ध दूतावासों से हमें प्रवेश-पत्र मिले थे। लन्दन पहुँचने पर अमेरिका के लिए प्रवेश-पत्र (वीसा) प्राप्त करने का प्रयत्न हमने प्रारम्भ किया। लन्दन के सुप्रसिद्ध हाइड पार्क के पास अमेरिकी दूतावास की भव्य अट्टालिका है। हम दूतावास के वीसा-विभाग में गये। एक लम्बी लाइन लगी थी। एक अधिकारी के पास से आवेदन-पत्र मिला। दूसरे अधिकारी को हमने आवेदन-पत्र भरकर दिया। तीसरे अधिकारी ने हमारा आवेदन अन्दर भेजा। उसके बाद हम लाइन में बैठकर करीब दो घण्टे तक प्रतीक्षा करते रहे। जब हमारा नम्बर आया, तो हम चौथे अधिकारी के पास गये। यह एक मधुर स्वभाव की महिला थी। उसने मुझे कुर्सी पर बैठ जाने के लिए कहा। बहुत नम्रतापूर्वक उसने कुछ औपचारिक प्रश्न पूछे और मेरे उत्तर टाटप करती गयी। टंग

प्रश्नोत्तर के बाद उसने मेरा पासपोर्ट अपने पास रख लिया और मुझे प्रतीक्षा करने के लिए कहा ।

थोड़ी देर की प्रतीक्षा के बाद एक युवा महाशय ने धीरे-से पुकारा :  
“सतीश कुमार ।”

“जी, हॉ !” और मैं अन्दर गया ।

“आप संयुक्त राज्य अमेरिका जाना चाहते हैं ?” — अधिकारी ने पूछा ।

“जी, हॉ ! तभी तो आवेदन-पत्र लेकर यहाँ आया हूँ ।” मैंने रुखा उत्तर दिया । इससे पहले चार अधिकारियों की हाजिरी भरने और दो घण्टे की प्रतीक्षा करने के बाद मैं कुछ ऊब-सा गया था ।

“आप अमेरिका क्यों जाना चाहते हैं ?” एक रुखा प्रश्न ।

“क्योंकि अमेरिका में काफी मात्रा में अणु-बम जो है ।” फिर से एक रुखा उत्तर ! मैंने अपनी शान्ति पदयात्रा की पूरी कहानी सुनाते हुए कहा : “हम न्यूयार्क से वाशिंगटन तक पदयात्रा करना चाहते हैं निःशस्त्रीकरण की माँग करते हुए ।” हमारी सारी कहानी सुन लेने के बाद अधिकारी को कुछ दिलचस्पी पैदा हुई । बीसा की बात छोड़कर इन महाशय ने रूस की बातें शुरू कर दीं ।

“आप लोग रूस में चार महीने रहे और पदयात्रा की ?”

“जी, हॉ !”

“और उन्होंने आपको आजादी के साथ ऐसा करने दिया ?”

“जी, हॉ !”

“आप लोग रूसी भाषा जानते हैं ?”

“जी, हॉ !”

“आप लोग रूसी लोगो से क्या कहते थे ?”

“यही कि रूसी सरकार एकतरफा निःशस्त्रीकरण करे । अहिंसा की नीति अपनाये ।”

कहाँ ? मैंने कहा : “आपका इतना बड़ा दूतावास है । अमेरिका दुनिया का सबसे बड़ा धनी देश है । क्या आप दूतावास के खर्च से एक तार नहीं भेज सकते ?” पर हमारे ये तर्क अधिकारी महोदय के सामने नाकामयाब रहे । हमें प्रतीक्षा करनी ही होगी ।

“हम एक पत्र चेस्टर वाउल्स को क्यों न लिखें ?”—प्रभाकर ने मुझसे कहा । “चेस्टर वाउल्स विनोबाजी को, भूदान-ग्रामदान के विचारों को, अहिंसावादी सिद्धान्तों को अच्छी तरह जानते हैं । मैं उनकी पत्नी से तो मिला भी हूँ ।”

“जरूर लिखो ।”—मैंने सहमति प्रकट की; “और अमेरिका की ‘कमिटी फॉर नॉनवायलेट एक्शन’ तथा उसके अध्यक्ष ए. जे. मस्ते को भी हम एक चिट्ठी लिखें, ताकि हमारी अमेरिका-यात्रा की जिम्मेदारी वहन करने सम्बन्धी एक पत्र वे हमें भेज दें ।” हमने दोनों जगह तुरन्त पत्र लिखे । उसके बाद बीच-बीच में हम अमेरिकी दूतावास जाकर पता लगाते रहे । आखिर ए. जे. मस्ते और चेस्टर वाउल्स के पत्र हमें मिल गये । इन पत्रों के साथ जब हम अमेरिकी दूतावास में गये, तो अधिकारी ने हमें बीसा दे दिया । आखिरी घाटी पार हुई—ठीक २२ दिन की प्रतीक्षा के बाद ।

श्री बाडर के कारखाने में



श्री अर्नेस्ट बाडर द्वारा चलाये जा रहे एक अद्भुत प्रयोग की तारीफ मैंने सुन रखी थी । इसलिए ‘स्काट बाडर कामनवेल्थ’ देखने की उत्कठा थी । यह बताने की आवश्यकता नहीं कि हम इस कारखाने में पहुँचकर कितने खुश हुए । स्वयं अर्नेस्ट बाडर से मैं अजमेर में मिला था और उन्होंने निमन्त्रण दिया था कि कभी आकर हमारे साथ कुछ दिन बिताइये । हम उद्योगों में ‘सामूहिक स्वामित्व’ का प्रयोग कर रहे हैं । तब यह कल्पना भी नहीं की थी कि उनका निमन्त्रण इस तरह

फलेगा । ४ नवम्बर को जब हम वोल्लास्टन पहुँचे, तो श्री अर्नेस्ट वाडर के पुत्र श्री गेडरिक वाडर ने हमारा स्वागत किया । कारखाने के लोगो के बीच हमारे भाषण का कार्यक्रम था, पर हमारे लिए तो कारखाने की गतिविधि समझना सबसे ज्यादा रुचि की बात थी । जगह कमाल की थी । ग्राम्य वातावरण, चारो तरफ हरियाली, बहुत ही कलापूर्ण और आधुनिक मकान । कारखाने के कार्य-संचालक ने हमें कारखाने में घुमाया । फिर हम अर्नेस्ट वाडर के दफ्तर में गये, जहाँ विनोबाजी का एक बहुत बड़ा चित्र टँगा था—पूरे कमरे में किसी व्यक्ति का कोई चित्र था, तो वह एकमात्र विनोबा का था—इससे हम यह सहज कल्पना कर सकते हैं कि श्री अर्नेस्ट विनोबा के प्रति कितनी आदर की भावना रखते हैं ।

श्री गेडरिक और उनकी पत्नी के साथ जब हम लकड़ी के बने हुए और ग्राम्य वस्तुओं से सजे हुए घर में भोजन की टेबुल पर बैठे बातें कर रहे थे, तो गेडरिक वाडर ने हमें कारखाने की गतिविधियों और कठिनाइयों का परिचय दिया । “जब चारो तरफ आग लगी हो, तो वाम की एक ओपड़ी को बीच में बचाकर रखना बड़ी मुश्किल बात है । फिर भी हम उसे बचाने के लिए सघर्ष कर रहे हैं । स्वयं कारखाने के श्रमिक ‘कामनवेल्थ’ की बात को पूरी तरह नहीं समझ पाये हैं और इसलिए हमें बहुत-से ऐसे नियमों से काम चलाना पड़ता है, जिन्हें हम गैर-जरूरी मानते हैं ।” उन्होंने अपनी बात को सरल ढंग से समझाया । ‘हमारा यह सामूहिक स्वामित्व का प्रयोग है और हम समझते हैं कि इसके द्वारा हम केन्द्रीकरण की बीमारियों से बच सकते हैं ।”

इस कारखाने में छपाई, प्लास्टिक और रंगों में काम आनेवाले कुछ रासायनिक पदार्थ बनते हैं । २७५ श्रमिक इस समय काम करने में हैं । इन श्रमिकों के सामने केवल हर महीने के अन्त में वेतन प्राप्त करने का लक्ष्य ही नहीं है—बल्कि “कारखाने के काम की अन्तिम कमीटी है—मानव-श्रम की प्रतिष्ठा और समाज की सेवा ।” इसकी घोषणा विधान में

अन्तर्निहित है। इस प्रयोग के सूत्रधार श्री अर्नेस्ट वाडर का जन्म सन् १८९० में स्विट्ज़रलैंड में हुआ। १४ साल की उम्र में एक क्लर्क के तौर पर बहुत साधारण ढंग का जीवन प्रारम्भ किया। उसके छह साल बाद अपनी 'किस्मत आजमाने के लिए' वे लन्दन पहुँच गये। लन्दन में वे कुमारी स्कॉट के सपर्क में आये। कुमारी स्कॉट ने युवक अर्नेस्ट के जीवन में नया अध्याय जोड़ दिया और आखिर दोनों विवाहित होकर सदा-सदा के लिए जीवन-साथी बन गये। इतना ही नहीं, बल्कि अर्नेस्ट ब्रिटेन में ही बस गये। पहले उन्होंने सेलोलाइड का छोटा-सा व्यापार किया, फिर उसका उत्पादन शुरू किया और बढ़ते-बढ़ते वे एक कारखाने के मालिक बन गये। इसी बीच उन्होंने औद्योगिक-कार्यविधि और उद्योग-क्षेत्र की समस्याओं आदि के बीच अपने को जिस ढंग से खपाया, उसके परिणामस्वरूप उनके मस्तिष्क में एक क्रांतिकारी परिवर्तन आया। उन्होंने एक नयी औद्योगिक व्यवस्था के दर्शन किये। आखिर वे इस तत्त्व के कायल हो गये कि "कारखाने के असली मालिक वे ही हैं, जो रात-दिन श्रम करके पैदा करते हैं।" इस विचार ने उनके मानस में तूफान खड़ा कर दिया और उसका परिणाम यह हुआ कि उन्होंने कारखाने के स्वामित्व का वेंटवारा करने का निश्चय किया। सन् १९५१ में उन्होंने कारखाने का समविभाग किया। सन् १९५१ के बाद इस कारखाने का कोई एक मालिक नहीं। सभी मालिक हैं। कितना गजब का और क्रांतिकारी कदम था यह। यह कारखाना उन सब श्रमिकों और कारीगरों का है, जो इसमें काम करते हैं।

लन्दन में हम ५० दिन रहे। दिल्ली छोड़ने के बाद लन्दन में ही हमारा सबसे लम्बा समय बीता। ऐसा लगता है कि कलकत्ता, बम्बई आदि भारतीय शहरों की अपेक्षा लन्दन से मैं कहीं ज्यादा परिचित हूँ।

५ नवम्बर '६३ को 'क्वेन्स हाउस' में 'डबल्यू. आर. आई.', 'कमेटी आफ १००', 'फ्रेड्स पीस कमेटी', 'पीसन्यूज' और 'वर्ल्ड पीस

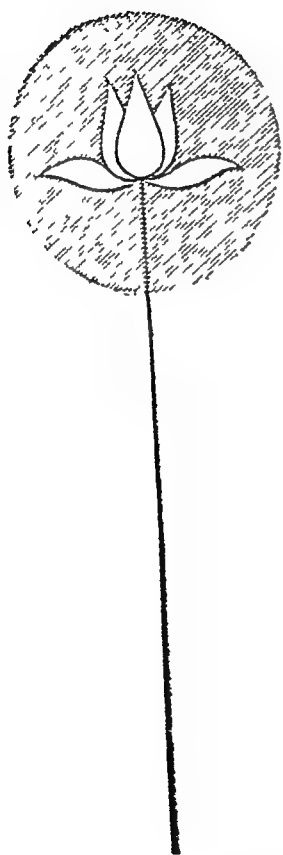
ब्रिगेड' की ओर से हम लोगो को विटाई दी गयी । शान्तिवादी मित्रो और संस्थाओ ने हम दोनो के लिए जहाज का किराया एकत्र कर लिया और २२ नवम्बर के लिए 'क्वीन मेरी' में हमारे लिए एक विगोप कैबिन बुक कर दिया गया ।

हम लन्दन से आल्डर मास्टन होते हुए साउदाम्पटन पहुँचे और वहाँ से जहाज द्वारा अमेरिका के लिए रवाना हुए ।

○







यांत्रिक चरमोत्कर्ष के देश  
अमेरिका में



“आप कम्युनिस्ट तो नहीं हैं ?” अमेरिका की धरती पर पहुँचते ही सबसे पहला सवाल सरकारी अधिकारियों ने हमसे पूछा । हमारे यह बताने पर कि “हम इस देश में ‘कमेटी फॉर नॉनवायलेंट एक्शन’ (सी. एन. वी. ए. ) के अतिथि हैं और यह संस्था एक गान्तिवादी संस्था है”, सरकारी अधिकारी ने पूछा : “क्या यह गान्तिवादी संस्था कम्युनिस्टों द्वारा संचालित है ?”

हम रूस से आ रहे हैं, गान्ति की बात करते हैं और हम देश में निःशस्त्रीकरण की माँग करते हुए पदयात्रा करनेवाले हैं, ये तथ्य अधिकारियों को भ्रम में डालनेवाले थे । अतः उन्होंने पूछा : “आप भारत में क्या करते हैं ?” हमने बताया कि “हम सर्वोदय-आन्दोलन के कार्यकर्ता हैं और इस आन्दोलन का प्रारम्भ महात्मा गांधी ने किया था ।” वम, गांधी का नाम लेते ही उनके सामने चित्र नाक से गिरा । डॉन मैदकर पासपोर्ट पर मुहर लगाते हुए अधिकारी ने कहा . “आपकी यात्रा सफल हो ।”

“क्या आप अपनी यात्रा के उद्देश्यों पर प्रकाश डालेंगे ?”—हमारी दूसरी मुलाकात रेडियो, टेलीविजन और समाचार-पत्रों के सवाददाताओं से हुई । “कितने हजार मील चले ? कितनी जोड़ी जूते धिसे ? सोवियत संघ में क्या अनुभव आये ?” इत्यादि सवाल की बौछार होने लगी । टेलीविजनवालों ने लम्बी फिल्म तैयार की । रात को जब हम अपने मेज-वान के घर टेलीविजन देख रहे थे, तो हमने स्वयं अपने-आपको टेली-विजन पर व्याख्यान देते हुए पाया । अनेक शान्तिवादी अमेरिकन भाई पोर्ट पर बण्टो से हमारी प्रतीक्षा कर रहे थे । ज्यों ही हम उनसे मिले, ऐसा लगा, मानो अपने वर्णों पुराने साथियों से मिल रहे हो, जब कि सब के सब चेहरे नये थे ।

वह २७ नवम्बर १९६३ की शाम थी, संयुक्तराज्य अमेरिका की पहली शाम । बिजली की रोशनी में चमचमाती हुई गगनचुम्बी अट्टालिकाओंवाले न्यूयार्क शहर की पहली शाम । अनगिनत मोटर गाड़ियों से भरे हुए लम्बे-चौड़े राजपथों की पहली शाम । न्यूयार्क का पहला दर्शन बड़ा बोझिल-सा लग रहा था । मैंने न्यूयार्क शहर के बारे में जो कल्पना की थी, उससे भिन्न चित्र मुझे दीख पड़ा । एक भारी-भरकम व्यापारी नगर, जहाँ एक तरफ वैभव और ऐश्वर्य आसमान में बाहे फैला रहा है, तथा दूसरी तरफ एक गरीब भिखारी किसीकी कार की खिडकी को साफ करके दो-चार सिक्कों की भीख माँग रहा है । मैंने सपने में भी ऐसी कल्पना नहीं की थी कि विश्व के सबसे धनी नगर न्यूयार्क में भिखारी भी होंगे ।

अतलान्तक महासागर के तट पर बसी हुई न्यूयार्क महानगरी में हमने १० दिन बिताये । इन दस दिनों के लिए हम कुमारी वेवर्ली और उसके भाई के अतिथि थे । न्यूयार्क नगर के दक्षिणी हिस्से, ब्रुकलिन में इनका घर है । मैं यह देखकर चकित था कि इस घर को कभी ताला नहीं लगाया जाता । दोनों भाई-बहन काम पर चले जाते हैं । घर में उनकी

प्यारी कुतिया अकेली रहती है। कुमारी वेवर्ली २५ साल की उम्रवाली शान्तिवादी कार्यकर्त्री हैं। गांधीजी के बारे में, भारत के बारे में, अन्य राजनैतिक प्रश्नों के बारे में उसका विशद ज्ञान देखकर मुझे दाँतो तले अँगुली दबानी पड़ी। हम लोग रात के १२-१ बजे तक विभिन्न विषयों पर चर्चा करते रहते। युद्ध, शान्ति और निःशस्त्रीकरण से लेकर परिवार, विवाह, प्रेम और सामाजिक जीवन सम्बन्धी अनेक समस्याओं पर कुमारी वेवर्ली के साथ हमारी खुलकर चर्चा होती।

२८ नवम्बर को न्यूयार्क की नगर-पदयात्रा करते हुए हम संयुक्त राष्ट्रसंघ के भवन तक पहुँचे। हम अपने हाथ में 'अणुबमों पर पाबन्दी लगाओ' का ध्वज लिये हुए चल रहे थे। निःशस्त्रीकरण सम्बन्धी इन्तहार भी हम बाँटते जाते थे, वैसे हमने पिछले डेढ़ साल में अपनी पदयात्रा के दौरान में हजारों परचे बाँटे हैं, पर अमेरिका में तो यह पहला ही दिन था। ऐसा लगा कि यहाँ के लोग तरह-तरह के विज्ञापनों और इन्तहारों से इतने तंग आ गये हैं कि वे हमारे हाथ से परचे स्वीकार ही नहीं कर रहे थे। कुछ लोग हमारे ध्वज पढ़ते और निःशस्त्रीकरण की बात में चमककर परचा लेने से झिझक जाते। कुछ लोग प्रतिवाद करते हुए कहते : "हमें शान्ति का सबक सिखाने की जरूरत नहीं। रुस जाओ और कम्युनिस्टों को सिखाओ।" लेकिन ज्यादातर लोगों ने परचे स्वीकार किये। हमें आशीर्वाद दिया, शुभ कामना प्रकट की। मुस्कराकर 'गुट लक' कहनेवालों की तादाद ज्यादा थी। २८ नवम्बर का दिन इस देश में बड़े पर्व का दिन है। इसे 'थैंक्स गिविंग डे' (धन्यवाद-दिवस) कहा जाता है। न्यूयार्क नगर के अनेक शान्तिवादियों ने संयुक्त राष्ट्रसंघ के भवन के सामने इस पर्व के अवसर पर उन कगोड़ों लोगों की सहानुभूति में, जिन्हें पर्याप्त भोजन और वस्त्र उपलब्ध नहीं हैं, उपवास तथा मौन प्रार्थना का आयोजन किया था। हम भी इस प्रार्थना में दो घंटे तक शामिल रहे।

‘हमारा कोई धर्म नहीं, हम केवल मनुष्य-धर्म मानते हैं, हमारी कोई जाति नहीं, केवल मनुष्य-जाति है। हम विश्व-नागरिक हैं। हमें पूरे विश्व से प्रेम, आतिथ्य और सत्कार मिला। हम केवल मनुष्य बनकर सब जगह गये, इसलिए हमें सर्वत्र मनुष्यता के ही दर्शन हुए।

अगर हम हिन्दू बनकर जाते, तो हमें मुसलमान मिलता।

अगर हम हिन्दुस्तानी बनकर जाते, तो हमें पाकिस्तानी मिलता।

अगर हम कम्युनिस्ट बनकर जाते, तो हमें केपिटलिस्ट मिलता।

पर हम मनुष्य बनकर गये, इसलिए सब जगह हमें मनुष्य ही मिला।

संयुक्त राष्ट्रसंघ में चीन की ७० करोड़ जनता का प्रतिनिधित्व न होना हमें अखर रहा था। उसके बिना संयुक्त राष्ट्रसंघ अपूर्ण ही रहेगा। जापानी किमोनो, भारतीय साड़ी और अफ्रीकी चोगा पहने विश्वभर का रूप जिस संयुक्त राष्ट्रसंघ में साकार हो उठता हो, वहाँ सम्पूर्ण विश्व का प्रतिनिधित्व कितना लाजिमी है, यह बताने की आवश्यकता नहीं।

अधिवेशन की बैठक समाप्त होने के बाद महासचिव श्री ऊ थात से हमने जब हाथ मिलाया, तो ऊ थात ने कहा “आप जिस एक-विश्व के सन्देश को पैदल जा-जाकर घर-घर और गाँव-गाँव में पहुँचा रहे हैं, उसी सन्देश को क्रियान्वित करने की हमारी कोशिश है। पर हमारे रास्ते में बाधाओं के अम्बार लगे हैं।” फिर भी महासचिव की आँखों में आशा-वाद का तेज चमक रहा था।

१० दिन के न्यूयार्क-प्रवास के दौरान में हम अनेक अमेरिकी परिवारों में गये। अनेक ऐसे लोगों से मिले, जिनका शान्ति-आन्दोलन से कोई परिचय नहीं था। साधारणतः अमेरिकी लोग बड़े हमदर्द और सहायक होते हैं। मिलनसारिता और सरलतापूर्ण स्वभाव इनकी विशेषता है। हम जिन-जिनसे मिले, सबसे बहुत जल्दी बुल-मिल गये। लेकिन एक बात सतत हमारा ध्यान खींचती थी कि साधारण लोगों के मन में ‘अमेरिकी महानता’ पर बड़ा गर्व था। हमें कितने ही लोगों ने कहा कि “हमारा अमेरिका दुनिया में सर्वश्रेष्ठ है। हमारी शासन-प्रणाली

उत्कृष्ट है। दूसरे देशों को अमेरिकी महानता का अनुसरण करना चाहिए।”

एक दिन एक वृद्ध महाशय के साथ बातचीत हो रही थी। वे बोले : “आप भारत से आकर हमें निःशस्त्रीकरण का उपदेश दे रहे हैं। हमारी सरकार की आणविक नीति के खिलाफ प्रचार कर रहे हैं। आपको ऐसा करना नहीं चाहिए। यदि हमारा देश और हमारी सरकार हिन्दुस्तान को मदद न करे, तो हिन्दुस्तान भूखो मरेगा। वह अपनी सीमाओं की रक्षा नहीं कर सकेगा। हम अन्न भेजते हैं, दवा भेजते हैं, मशीनें भेजते हैं, कारीगर भेजते हैं, हथियार भेजते हैं। पैसा भेजते हैं। आपको इस देश का अहसानमद होना चाहिए।” धन, शस्त्र, सेना और अणुबमों की प्रचुरता के कारण अमेरिका विश्व की एक बड़ी ताकत माना जा सकता है, पर क्या भौतिक साधनों की विपुलता ही महानता है ?

न्यूयार्क अमेरिका का सबसे बड़ा नगर है। व्यापार, उद्योग, राजनीति, साहित्य, विद्या, कला आदि का भी शायद सबसे बड़ा केन्द्र है। १०८ मजिलेवाली दुनिया की सबसे बड़ी इमारत ‘एम्पायर स्टेट बिल्डिंग’ भी इसी नगर में है। संयुक्त राज्य अमेरिका की प्रमुख पत्र-पत्रिकाएँ और दैनिक अखबार भी यहीं से प्रकाशित होते हैं। देशभर में शान्ति-आन्दोलन का संचालन करनेवाली अनेक संस्थाओं के प्रधान कार्यालय भी यहीं हैं। हमने विभिन्न शान्तिवादी मन्थाओं में अनेक कार्यकर्ताओं और नेताओं से मुलाकात की। खास तौर से ए. जे. मन्ते के साथ की मुलाकात ने तो हमें अत्यन्त प्रभावित किया।

अमेरिका की धरती पर पदयात्रा



७ दिसम्बर का शीतल प्रातःकाल। स्वच्छ आकाश में चमकते भास्कर की सुनहली किरणें। संयुक्त राष्ट्रसंघ के भवन के सामने का भीड़भरा चौराहा। अनगिनत शान्तिवादी अपने ज्ञान-आज ने छुट्टी के



भारत के दो युवा शान्ति-यात्रियों को विदा करने आये थे। उनके अनन्त आशीर्वादों के बोझ से हम नतमस्तक थे। टेलीविजनवाले अपना कैमरा लगाये खड़े थे। पत्रकार लोग सवाल पर सवाल पूछ रहे थे। मित्रगण अपनी शुभ कामनाएँ बरसा रहे थे। दो अमेरिकन युवक, राडस्मिथ और आर्थर मिलर आगे बढ़े, हाथ मिलाकर बड़ी गम्भीरता से बोले : “हम भी आपके साथ पदयात्रा करना चाहते हैं।” “स्वागत है आपके निर्णय का”—हमने भी उसी गम्भीरता से उत्तर दिया।

अब हम दो से चार हो गये। हाथों में निःशस्त्रीकरण का झण्डा और पीठ पर कपड़ों की गठरी। कौन अजीब लोग हैं ये ? लोग आते-जाते रुकते। कुछ कानाफूसी करते और हमारी पदयात्रा के उद्देश्यों पर प्रकाश डालनेवाला साहित्य लेकर आगे बढ़ जाते। हम चारों चल पड़े। शहर की सीमा तक पहुँचाने के लिए १५-२० लोग हमारे साथ हो लिये। छोटा-सा एक जुलूस ही बन गया था। संयुक्त राष्ट्रसंघ का भवन पीछे छूट गया। १०८ मजिलवाली संसार की सबसे ऊँची इमारत भी पीछे रह गयी। ‘हारलम’ नाम की अस्वच्छ और दुखदर्दभरी नीग्रो वस्ती भी पीछे रह गयी। जहाँ करोड़ों का व्यापार घंटों में होता है, ऐसी वह ‘वॉल स्ट्रीट’ भी पीछे रह गयी। भीड़भरे लम्बे-चौड़े राजपथों को पार करके हम वाशिंगटन ब्रिज पर पहुँचे। यह ब्रिज शहर की सीमा पर है। हमारे साथी वापस गये। “गुड लक ! गुड बाई ! अलविदा साथियों !”

और यों हम अपनी लम्बी यात्रा के अन्तिम चरण पर निकल पड़े। पिछले १८ महीनों से हम सड़क पर थे। चलना और केवल चलना। हम सोते थे, खाते थे, लिखते थे तो चलने के लिए। हम सब कुछ भूल गये, केवल चलना याद रहा। न्यूयार्क के बाढ़ केवल एक महीना और चलना था। जब हम आठ हजार मील दूर दिल्ली से पैदल वाशिंगटन के लिए निकले, तब सारा रास्ता कितना लम्बा और कठिन प्रतीत हो रहा था। पर हम सतत चलते रहे और इस सातत्य ने हमें अपनी मजिल पर पहुँचा ही दिया।

अमेरिका में हमे सभी वर्गों के लोगो से मिलने का अवसर मिला । शाम के वक्त प्रायः प्रतिदिन सभाओ का आयोजन होता था । इसके अलावा स्कूलों, कॉलेजो और विश्वविद्यालयो मे विशेष कार्यक्रम रहते थे । इस सारे सम्पर्क के बाद ऐसा लगता है कि अमेरिका के लोग युद्ध की भयकरता से उतने भयभीत नहीं है, जितने यूरोप और रूस के लोग हैं । क्योंकि अमेरिका की धरती पर कोई विश्व-युद्ध नहीं हुआ, इसलिए वे नहीं जानते कि युद्ध कितना खौफनाक और बर्बर होता है । वे अपने व्यापार-धन्धे मे इतने व्यस्त है कि युद्ध, शान्ति और निःशस्त्रीकरण जैसे प्रश्नो पर ज्यादा ध्यान देने के लिए उनके पास समय ही नहीं है । रूस तथा कम्युनिस्ट देशो के खिलाफ जबरदस्त विरोधी भावना है । यह विरोध ज्ञान और बुद्धिजन्य कम है । भ्रमजन्य अधिक है । मैंने अनेक अमेरिकी लोगो से पूछा - “साम्यवाद क्या है ? रूस के बारे मे आप क्या जानते है ? मार्क्स या लेनिन के बारे मे आपने कुछ पढ़ा है क्या ?” साधारण लोगो की ओर से अधिकांश उत्तर नकारात्मक और भ्रामक थे । सरकार और पूँजीवादी अखबारो ने कम्युनिस्ट देशो के बारे मे भ्रम, अविश्वास और घृणा का वातावरण पैदा किया है । कम्युनिस्ट के लिए सरकारी नौकरी या अन्य किसी काम के लिए दरवाजे विलकुल बन्द हो जाते हैं । कम्युनिस्ट को अपना नाम सरकारी रजिस्टर मे दर्ज कराना पड़ता है । एक जनतन्त्रात्मक देश मे कम्युनिज्म के खिलाफ ऐसा अन्धा विरोध देखकर आश्चर्य होना स्वाभाविक है ।

**अमेरिकी आतिथ्य : एक पेट, हजार भेट !**



इस यात्रा मे हमे अमेरिकी आतिथ्य का ज्ञानदार अनुभव हुआ । उस यात्रा के दौरान मे हमारे मन पर यह प्रभाव पड़ा कि साधारणतः सभी देशो के लोग अतिथि के लिए बड़े उदार और स्नेही होते हैं । अमेरिकी सहसा किसी नये आदमी ने मिलने में शिष्टाचार । स्नेह

नहीं कि वह अतिथिपरायण नहीं है, वरन् इसलिए कि उसके मन में यह सन्देह होता है कि पता नहीं, यह नया आदमी कौन है ? कहीं कोई धोखा न हो जाय । पर जब वह अतिथि को जान लेता है, तब उसका आतिथ्य बरस पड़ता है ।

एक दिन कुछ पत्रकार और फोटोग्राफर रास्ते में आकर हमसे मिले और वे हमें एक कॉफी हाउस में ले गये । कॉफी हाउस के व्यवस्थापक को जब हमारे बारे में मालूम हुआ, तब उसने इन पत्रकार बन्धुओं से हमारी कॉफी के पैसे लेने से इनकार कर दिया । वह बोला : “इतनी दूर से आये हुए मेहमानों से कहां पैसा लिया जाता है । ये आपके भी मेहमान हैं, मेरे भी मेहमान हैं, सारे देश के मेहमान हैं ।” इसके बाद उसने हमसे कहा : “आप जो कुछ खाना-पीना चाहे, कृपया आजा करें । आप हमारे मेहमान हैं ।” अमेरिका जैसे व्यापारी देश में यह आतिथ्य आश्चर्य की बात थी ।

ऐसी घटनाएँ चार-पाँच बार हमारे साथ घटीं । इसलिए इन घटनाओं को आकस्मिक नहीं कहा जा सकता । कई बार लोग कार रोकते, ‘लिफ्ट’ के लिए पूछते । जब हम अचानक स्कूलों में पहुँच जाते, तब विद्यार्थी एवं अध्यापकगण हमें घेर लेते । विना भोजन कराये वापस नहीं लौटने देते ।

एक दिन अचानक पीछे से एक कार आकर रुकी । ड्राइवर ने हमें पुकारा । यह कार एक चलती-फिरती दूकान थी । हम ड्राइवर के पास गये । थोड़ी बातचीत हुई । वह बोला : “यात्रियों, पैदल चलते हो, भूख लगेगी । मेरी यह छोटी-सी भेट स्वीकार करो ।” और उसने तीन-चार डिब्बे बिस्कुट के हमारे सामने बढ़ा दिये । हमारा पेट भरा हुआ था । कहाँ तक अमेरिकी-आतिथ्य स्वीकार करते ? एक पेट, हजार भेट । हमने उसे समझाया, पर वह मानने को तैयार ही नहीं था । आखिर एक छोटा सा डिब्बा हमने स्वीकार किया ।

इसी तरह एक दिन हम चल रहे थे कि १५ वर्ष का एक बालक दौड़ा-दौड़ा आया और बिना कुछ कहे-सुने बोला : “क्या आप मेरे घर चलेगे, भोजन के लिए ?” हम चकित हुए यह सोचकर कि इस बालक को हमें भोजन के लिए आमन्त्रित करने की प्रेरणा कैसे हुई ? हमने पूछा : “कहाँ है तुम्हारा घर ?” “यहाँ से आधा मील” — बालक ने कहा । उसका आग्रह तीव्र था । वह और उसकी बहन हमें आमन्त्रित करने आये थे । हमने उनका निमन्त्रण स्वीकार किया । जब हम घर पहुँचे, तब घरभर के लोग खुशियाँ मनाने लगे । बड़ी-सी मेज लगा दी गयी । भोजन हुआ । खूब बातचीत हुई । हमारा भी चित्त प्रसन्न हुआ, ऐसा आतिथ्य पाकर । ऐसी कितनी ही घटनाएँ घटती रही ।

एक दिन एक कार आकर रुकी । एक महाशय कार से उतरकर दौड़े-दौड़े हमारे पास आये । “मैंने आपको टेलीविजन पर देखा था । क्या आप ही हैं भारत से आये हुए शान्ति-यात्री ? आज मैंने अखबार में आपके बारे में लेख पढ़ा ।” वे बोलते-बोलते भाव-विह्वल हुए जा रहे थे । हमसे सुनने की उनके पास फुर्सत ही नहीं थी । “मेरी ओर से यह भेट स्वीकार कीजिये”—१० डालर ( करीब ४० रुपये ) का एक नोट हमारे सामने बढ़ाते हुए वे बोले : “मैं आपके विचारों से पूरा सहमत हूँ । मैं इस काम के लिए हर तरह से मदद करना चाहता हूँ ।” हमने किसी तरह उन्हें समझाया कि हम पैसा स्वीकार नहीं करते । तब वे बोले : “अच्छा, मैं वह पैसा आपकी ‘अहिंसा समिति’ को भेज दूँगा ।”

गांधी-समाधि से केनेडी-समाधि तक



हमारी यह पदयात्रा न्यूजर्सी, पेनसिल्वेनिया, डालेवर और मरी-लैण्ड, इन चार राज्यों से होकर गुजरी । जैसे भारत में १६ प्रान्त हैं, वैसे ही इस देश में ५० राज्य हैं । वाशिंगटन सारे देश की राजधानी है । १० मील चौड़े क्षेत्र में यह राजधानी बनी है । यह क्षेत्र किंग्डी भी

राज्य के अन्तर्गत नहीं है। इसे कोलम्बिया जिला कहते हैं। वाशिंगटन बड़ी सुन्दर नगरी है, जैसे नयी दिल्ली। वाशिंगटन में रहते हुए मुझे कितनी ही बार भ्रम हुआ कि क्या मैं नयी दिल्ली पहुँच गया हूँ। हमने अपनी पदयात्रा की समाप्ति स्वर्गीय राष्ट्रपति केनेडी की समाधि पर की। ६ जनवरी १९६४ की वह सूनी सन्ध्या, जब हम केनेडी की समाधि पर पहुँचे, हमें १ जून १९६२ की सन्ध्या के पास ले गयी, जब हमने महात्मा गांधी की समाधि से अपनी यात्रा प्रारम्भ की थी। हम चले तो थे श्री केनेडी से मिलने के लिए, पर हमें जाना पड़ा उनकी समाधि पर श्रद्धाजलि अर्पित करने के लिए।

“सयुक्त राज्य अमेरिका के राष्ट्रपति की ओर से श्वेत भवन में शान्ति-यात्रियों का स्वागत है।” राष्ट्रपति जॉन्सन के निजी सहायक ब्रुक हैज ने श्वेत भवन में हमारा स्वागत करते हुए कहा : “उन्होंने मुझे आप लोगों की अगवानी करने के लिए नियुक्त किया है और आपकी यात्रा की समाप्ति पर बधाई भेजी है।” फिर उन्होंने विस्तार से राष्ट्रपति के निःशस्त्रीकरण सम्बन्धी विचारों पर प्रकाश डाला। इस तरह दिल्ली से मास्को और वाशिंगटन की हमारी पदयात्रा सम्पन्न हुई। हम अपनी मंजिल पर पहुँच गये।

## अमेरिका में अहिंसा की भूख



ब्रिटेन से अमेरिका के लिए २२ नवम्बर को जब हम जहाज में सवार हुए, तो जो सबसे पहली खबर रेडियो ने सुनायी, वह थी—‘राष्ट्रपति जॉन केनेडी की हत्या!’ जिस व्यक्ति से मिलने के लिए हम १९ मास पहले दिल्ली से पैदल रवाना हुए, उसके दर्शन से भी हम वंचित रहेंगे और यात्रा के अन्तिम परिच्छेद में हमारी योजना पर यो तुपायपात हो जायगा, इसकी आशंका हमने स्वप्न में भी नहीं की थी।



‘क्वीन मेरी’ जहाज ससार के सबसे बड़े दो-चार जहाजों में से है। इस जहाज में चार हजार आदमी एक साथ यात्रा कर सकते हैं। राष्ट्रपति केनेडी की मृत्यु का समाचार जहाज के यात्रियों ने सुना, तो सबके चेहरे सुन्न हो गये। कई जवान तो फूट-फूटकर रोने लगे। सिनेमा बन्द, नाच-गाना बन्द, खेलना-तैरना बन्द, सब कुछ बन्द। मैं गम्भीरता से सोचने लगा कि आखिर केनेडी की हत्या पर इतनी जबरदस्त प्रतिक्रिया लोगों के मन पर क्यों हुई? इसका कारण क्या है?

उस समय मैं पूरा समझ नहीं सका, पर इस देश में यात्रा करते समय मुझे मालूम हुआ कि केनेडी ने अपने शासन पर अनेक सेनापतियों और प्रतिक्रियावादियों के दबाव के बावजूद कुछ नये कदम उठाने के लिए कमर कस ली थी। अणु-प्रयोग-निषेध सन्धि तो उसका आरम्भ मात्र थी। वे कम्युनिस्ट चीन को मान्यता देने की बात सोचने लगे थे, वारसा-सन्धि और नाटो-सन्धि के देशों के बीच शान्ति-समझौता करने की योजनाएँ बना रहे थे। नीग्रो जाति के लोगों को समानाधिकार देने का ‘बिल’ पास करना चाहते थे। उनकी ये युवासुलभ प्रगतिशील आकांक्षाएँ बड़े-बड़े सेनापतियों और गोरे रंग की उत्कृष्टता के ठीकेदारों को भायी नहीं।

वास्तव में देखा जाय तो हिंसा का बीज अमेरिका में व्यापक रूप में मौजूद है। यहाँ सौ में दस आदमी विभिन्न सामरिक हथियारों को बनाने-वाले कारखानों में काम करते हैं। निःशस्त्रीकरण का समझौता हो जायगा, तो इस देश के दो करोड़ लोग एकदम बेकार हो जायेंगे। विदेशों के साथ इस देश का सबसे बड़ा व्यापार सम्बन्धों का है। उस मुनाफे का लालच छोड़ने के लिए कोई तैयार नहीं है।

गत १२ जून '६३ को जब राष्ट्रपति केनेडी ने अमेरिकन विन्ड-विद्यालय में भाषण करते हुए एक महान् शान्तिवादी की भाँति देश को चेतावनी दी और हथियारों की घुड़दौड़ से बाज आने की अपील की,

तो हथियारों से मुनाफा खानेवालों का दिल ढहल उठा। वे बौखला उठे और केनेडी को अमेरिकी अर्थव्यवस्था का दुश्मन समझने लगे।

अमेरिका में औसतन हर घर में बन्दूक का होना तो लाजिमी बात है। ये पाँच करोड़ बन्दूकें व्यक्तिगत रूप से घरों में हैं। क्रिश्चियन धर्म को भी यह देश मानता है, इसलिए हर घर में बाइबिल का होना भी लाजिमी है। कैसा मजेदार सन्तुलन, एक हाथ में शत्रु को भी प्यार करने की शिक्षा देनेवाली पुस्तक—बाइबिल, दूसरे हाथ में मनुष्य के प्राण-हरण करनेवाली बन्दूक।

और लीजिये। अमेरिका में बच्चों के खेलने के लिए किस तरह के खिलौने अधिक लोकप्रिय हैं? यहाँ के पचासो बड़े-बड़े कारखाने केवल युद्ध-सम्बन्धी खिलौने बनाते हैं। वे हैं: पिस्तौल, बन्दूक, राकेट, मिसाइल, टैंक, युद्ध में काम आनेवाले जहाज, बम-वर्षक इत्यादि। लगभग हर घर में ये खिलौने हमें देखने को मिले। ये हिंसा के बीज अप्रत्यक्ष रूप से बच्चों के दिमाग में बोये जा रहे हैं। इस प्रकार अप्रत्यक्ष रूप से उन्हें हिंसा की अनिवार्य शिक्षा दी जा रही है। टेलीविजन पर घंटों इस प्रकार का कार्यक्रम चलता है, जिसमें इस तरह के खिलौनों को चलाने का तरीका बताया जाता है। मनुष्य की आक्रमण-वृत्ति को उभाड़ने का जहाँ इतना सगठित प्रयत्न हो, वहाँ यदि महान् राष्ट्रपति केनेडी की हत्या की दुःखद घटना घटती है, तो आश्चर्य क्या?

एक दिन पदयात्रा में हमें किशोर उम्र के तीन लड़के मिले। तीनों के हाथ में खेलने की बड़े आकार की बन्दूक! हमने पट-पट-पट की आवाज सुनी, तो उनसे पूछा: “क्यों भाई, क्या करोगे इस बन्दूक का?”

“अपने दुश्मन को मारेगे।”—लड़कों ने उत्तर दिया।

“कौन है तुम्हारा दुश्मन?”

लड़के एक-दूसरे का मुँह ताकने लगे।—कोई उत्तर नहीं।

“जानते हो अपने दुश्मन को?”—दुवारा पूछा।

“नहीं।”—लड़के बोले।

सचमुच कोई नहीं जानता कि उनका दुश्मन कौन है ? 'दुश्मन' हवा में खड़ा किया जाता है । रूस में, चीन में, क्यूबा में उनका ऐसा कोई दुश्मन नहीं, जिसे वे जानते हों । दुश्मनी का यह कल्पित भूत जब तक समाप्त नहीं होगा, तब तक हिंसा के ये कारनामे चलते ही रहेंगे ।

एक दिन प्रिस्टन विश्वविद्यालय में छात्रों और प्राध्यापकों की एक गोष्ठी में हम बोल रहे थे । एक प्राध्यापक महोदय गांधी की अहिंसा को अव्यावहारिक सिद्ध करने में पूरा जोर लगा रहे थे । उनकी मान्यता थी कि वियतनाम में राष्ट्रपति नोदिन जियम की हत्या नहीं की गयी होती, तो अत्याचार पर काबू पाना असंभव था । यदि क्यूबा में डॉ॰ कैस्ट्रो के दमन को समाप्त करने के लिए अमेरिकी सेना हमला करे, तो भी इन प्राध्यापक महोदय को कोई आपत्ति नहीं । मैंने पूछा : "फिर राष्ट्रपति केनेडी की हत्या गलत है या सही ?"

"एकदम गलत"—प्राध्यापक ने मुट्ठी बन्द करके कहा ।

"पर क्यों ?"—मैंने धीरे से पूछा ।

प्रोफेसर ने कहा "क्योंकि यह अमानवीय है ।"

"यह सवाल तो आप उससे प्रछिये, जिसने केनेडी की हत्या की या जिसने इस प्रड्युन्त्र की रचना की । उनका मानना तो यही है कि केनेडी को समाप्त करके उन्होंने इस देश की सेवा की है । अगर आप क्यूबा में हिंसा का समर्थन कर रहे हैं तो, अमेरिका में वही हिंसा गलत क्यों मानते हैं ?"—मैंने विस्तार से अपना पक्ष रखा । प्राध्यापक महोदय गर्मज होकर सोचने लगे ।

इस देश में अहिंसा की बात सुनने की जबरदस्त भूख है । हमारी सभाओं में सौ-डेढ़ सौ और कभी-कभी तो दो सौ लोगों तक की उपस्थिति होती थी । अमेरिका में इतने लोगों की उपस्थिति असाधारण मानी जाती है । जहाँ लोग रेडियो और टेलीविजन के इतने आदी हैं कि सब कुछ टेलीविजन पर ही देखना-सुनना पसन्द करते हैं, सर्दी में, गर्मी में, घर में बाहर निकलना पसन्द नहीं करते, वहाँ हमारी सभाएँ बहुत अच्छी तरह



# अ मे रि का



सकेत

पदयात्रा

वाहनसे



जमती थी। सात-आठ बजे सभा शुरू होती, जो रात को बारह बजे और कभी-कभी एक बजे जाकर समाप्त होती थी।

अमेरिका में हिंसा का विकास चरम सीमा पर पहुँचा है। पलक झपकते सारी दुनिया को समाप्त कर सके, इतनी हिंसा की शक्ति संगठित की गयी है। हर घर में कार है। जीवन मशीनों के घेरे में बँधा है। समाज का नियन्त्रण मनुष्य के नहीं, मशीन के हाथ में है। कपड़े धोने और वर्तन मॉजने से लेकर जीवन के सभी छोटे-बड़े काम स्वचालित मशीनें करती हैं। ऐसे चरम विकास के बाद भी सारी समस्याएँ ज्यों-की-त्यों हैं। सौ में से पाँच आदमी बेकार हैं। तीन करोड़ अमेरिकी लोग गरीबी की हालत में जी रहे हैं। गन्दी बस्तियाँ अभी भी मुँह फाड़े चुनौती बनी खड़ी हैं। काले लोग अभी भी बुरी तरह अपमानित हैं।

इतने भारी मशीनीकरण और औद्योगीकरण के बावजूद समाज का इस असन्तुलित प्रणाली में सरल हृदय और बुद्धिमान अमेरिकी लोग गम्भीरता से सोचने लगे हैं। 'कम्युनिज्म' को लोग बुरी तरह घृणा करते हैं। ऐसे लोगों में यदि किसी नये विचार के प्रति आकर्षण होता है, तो वह है अहिंसात्मक क्रान्ति का, गांधी का, मार्टिन लूथर किंग का।

## भाषण-यात्रा पर



प्रारम्भ में मेरे मन में अमेरिका आने की इच्छा कभी भी प्रबल रूप से जाग्रत नहीं हुई थी। रूस जाने की और वहाँ के सामूहिक-कृषि के तथा साम्यवादी जीवन के प्रयोगों को देखने की मेरी इच्छा शुरू से थी। इसी तरह जापान की सुधरी हुई खेती के ढंग तथा वहाँ के छोटे-छोटे उद्योग-धन्वों को देखने की भी मुझे अभिलाषा थी। रूस, जापान, दज़राइल आदि देशों से हम कुछ सीख सकते हैं, पर अमेरिका जैसे अत्यन्त धनी और भारी उद्योगवाले देश के प्रति ज्यादा आकर्षण न होने का कारण यही था कि भारत के ग्राम-प्रधान तथा कृषि-प्रधान समाज में

अमेरिकी पद्धति बहुत काम देनेवाली नहीं हो सकती। पर बाद में मुझे अमेरिका के प्रति आकर्षण हुआ। इस आकर्षण के स्रोत थे : मार्टिन लूथर किंग और उनका अहिंसावादी नीग्रो-आन्दोलन। भारत की आजादी के आन्दोलन के बाद पहली बार इतने बड़े पैमाने पर अहिंसात्मक साधनों का प्रयोग अमेरिका में हो रहा है। इसके प्रति एक गहरा लगाव मुझ जैसे अहिंसा के छात्र के हृदय में हो, यह स्वाभाविक ही है। मुझे लगा कि शान्ति-सेना के काम की दृष्टि से अमेरिका में बहुत कुछ देखने-सीखने की सम्भावना है।

वैसे तो हमारी पदयात्रा दिल्ली से मास्को और वाशिंगटन तक ही थी। वह पूरी हो गयी। उसके बाद हमें वापस भारत लौटना था। पर सी. एन. वी. ए. के कार्यकर्ताओं ने तथा ए. जे. मस्ते ने आग्रह किया कि हम पूरे अमेरिका का दौरा करें और अपने विचार लोगों को सुनायें। हमने उसे स्वीकार किया।

अमेरिका की धरती पर करीब सवा छह महीने का समय हमने बिताया। सी. एन. वी. ए. ने इस यात्रा का सयोजन बड़ी कुशलता और चतुराई के साथ किया। हम पूरे समय इस सस्था के मेहमान रहे। सी. एन. वी. ए. का प्रधान कार्यालय न्यूयार्क में है और सानफ्रांसिस्को तथा वालेंटाउन में उसकी शाखाएँ हैं। नायल हावर्थ (मंत्री) तथा वार्वरा लेहमन ने बड़ी तत्परता के साथ हमारी यात्रा को सुगम एवं प्रभावकारी बनाया। वार्वरा के पति सानफ्रांसिस्को में मास्को की पदयात्रा में गये थे। पति-पत्नी दोनों बड़े निप्रावान् और अव्ययनशील हैं। वार्वरा ने गांधीजी का सत्याग्रह का विचार बड़ी गहराई से समझा है और कृषि-प्रधान सादगी का जीवन बिताने की उम्रको इच्छा है। अपनी यात्रा की पूरी जिम्मेदारी वार्वरा को सौंपकर हम निश्चिन्त हो गये। कब, किस, बस से या रेल से या वायुयान से जाना, कहाँ उतरना, कौन वहाँ पर लेने आयेगा, यदि लेने न आये तो उमका फोन नम्बर इत्यादि छोटी-से-छोटी बात वार्वरा ने तारीखवार हमें लिखकर दे दी।

चालीस हजार मनुष्यों को प्रति वर्ष दुर्घटनाओं में समाप्त कर देनेवाली मोटरों के लिए 'सुपर हाई वे' बनाकर धरती की गोभा को विनष्ट किया जा रहा है। मनुष्य इन वृहत्तम राजपथों पर न्यूयार्क से सानफ्रांसिस्को तक की कई हजार मील की यात्रा कार से कर लेता है, पर लोक-जीवन का स्पर्श तक उसे नहीं होता। ग्रामीणों और किसानों के जीवन-सौन्दर्य का एक छोटा भी उसके मानस पर नहीं पड़ता।

अगर मुझे कोई पूछे कि "तुम्हें अमेरिका की किस नगरी ने सबसे अधिक सुगंध किया?" तो मैं कहूँगा : "न्यू मेक्सिको राज्य की मनोहारी नगरी—आल्बुकर्की।" माना कि न्यूयार्क की तरह आल्बुकर्की में गगन-चुम्बी अट्टालिकाएँ नहीं हैं, शिकागो की तरह बड़े-बड़े कारखाने नहीं हैं, डेट्रोइट की तरह मोटरकारों बनानेवाली कम्पनियाँ नहीं हैं, वाशिंगटन की तरह राजनैतिक दौड़-पेच भी नहीं है, पर यहाँ के जीवन में एक सीधा-सादा वातावरण है। मिट्टी के बने हुए खूबसूरत घर हैं। प्रकृति का सान्निध्य है। अमेरिकन इण्डियन लोगों की हस्तकला का आकर्षक साहचर्य है। प्राचीन, पर चित्ताकर्षक स्थापत्य-कला के अभी भी यहाँ दर्शन होते हैं। बधाई है यहाँ के लोगों को कि नवीनता के नाम पर इस कला और सादगी का वे बहिष्कार नहीं कर रहे हैं। यदि बड़े नगरों की बात सोचूँ, तो सानफ्रांसिस्को मुझे अधिक भाया। खास तौर पर सानफ्रांसिस्को के पूर्वी सिरे पर बर्कले नाम के नगर के कारण यहाँ के वातावरण को चार चोंट लग गये हैं। बर्कले, विश्वविद्यालय का नगर है। तीस हजार विद्यार्थी और हजारों अध्यापकों तथा वैज्ञानिकों से भरा हुआ बर्कले विश्वविद्यालय। यहाँ हमारे हिन्दी के उपन्यासकार, कवि और लेखक अज्ञेयजी से भेंट हो गयी। अमेरिका में पहुँचकर अज्ञेयजी से भेंट करने का अवसर मिलेगा, ऐसा नहीं सोचा था। कभी-कभी अचानक भेंट का आनन्द सुनिर्धारित भेंट के आनन्द से कहीं अधिक होता है।

निःशस्त्रीकरण की बातचीत को ताक पर रखकर आणविक हथियारों के विकास का समर्थन करनेवाले अमेरिका के सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक

डॉ० एडवर्ड टेलर से हम लोग मिलना चाहते थे। पर जब मैंने फोन किया, तो वे यात्रा पर निकलने की तैयारी में थे, इसलिए केवल १०-१५ मिनट तक टेलीफोन पर ही उनसे बातचीत हो सकी। उनका अभिप्राय यही था कि जब तक रूस और चीन जनतन्त्रात्मक राज्य की स्थापना की ओर नहीं बढ़ते और उन देशों में चुनावों की स्वतन्त्रता नहीं होती, तब तक निःशस्त्रीकरण की बात करना भी खतरा मोल लेना है।

हमारे लिए सभाओं का आयोजन सर्वांगीण दृष्टि से किया गया था। अनेक प्रसिद्ध विश्वविद्यालयों में बोलने का हमें अवसर मिला। नामों की गिनती करूँ, तो सख्या पचास के ऊपर चली जायगी। पर बोस्टन शहर के हावर्ड विश्वविद्यालय की सभा में विद्यार्थियों के साथ प्रश्नोत्तरो में जो आनन्द आया, वह सदा स्मरण रहेगा। श्री जयप्रकाश बाबू ने मेडिसन नगर के जिस विश्वविद्यालय में अव्ययन किया था, वहाँ भी हम लोग भाषण करने पहुँचे, यह भी एक स्मरणीय सयोग था। स्वामी विवेकानन्द की ज्ञानधारा जहाँ बही थी, उस शिकागो विश्वविद्यालय की सभा में भारतीय छात्रों द्वारा हमारी अहिंसात्मक प्रतिरक्षा की नीति का जयर्दस्त विरोध होगा, ऐसी उम्मीद नहीं थी। लॉस एंजिलेस के कैलीफोर्निया विश्वविद्यालय की सभा भी कम रोचक नहीं थी। पर यदि छात्रों की सभाओं में किसीको नम्बर देना हो, तो वाल्टीमोर नगर के गाल्ब्रर महिला विश्वविद्यालय की सभा को पहला नम्बर देना होगा। यह सभा शाम को ७ बजे प्रारम्भ हुई और सैकड़ों छात्राओं ने रात का ११ बजे तक हिलने का नाम नहीं लिया। प्रश्नों पर प्रश्न। छात्राएँ केवल प्रश्न ही पूछकर नहीं रह गयीं, सभा के बाद उन्होंने 'छात्रा शान्ति-संघ' की स्थापना भी कर डाली। कई बार हमने चर्च के मंच पर से पादरी के स्थान पर रविवारीय सन्देश दिया। ऐसी सभाओं में हम स्पष्ट रूप से कह देते थे कि "हम ईसाई नहीं हैं, और किसी भी मंगटिन धर्म में हमारा श्रद्धा नहीं है।"

## मशीनो का देश



तेहरान, मास्को, बर्लिन, पेरिस और लन्दन के राजपथो पर तीव्र गति से दौड़ते हुए जन-जीवन को देख लेने के बाद और राज्यवादी, साम्यवादी, समाजवादी, सैन्यवादी और जनतन्त्रवादी शासन-व्यवस्थाओं में रहनेवाले लोगों के साथ महीनो गुजार लेने के बाद, सयुक्त राज्य अमेरिका के धरती पर यात्रा करते हुए मेरे मन में कुछ सनसनी पैदा हो उठी। आश्रम में रहनेवाला, चरखा कातकर खादी का कपड़ा पहननेवाला, हाथ से चक्की पीसकर रोटी बनानेवाला मेरे जैसा भोला सर्वोदयी कहीं इस रंगभरी दुनिया में खो तो नहीं जायगा ?—ऐसा डर खुद मेरे ही मन में पैदा हुआ।

मुझे सब कुछ अद्भुत लग रहा था। पहली नजर में ऐसा आकर्षक देश मैंने कभी नहीं देखा। बड़ी-बड़ी हजारों शेवरले, कैडिलक और रोल्सरायस गाड़ियों का तौता लगा था। बिजली की जगमगाहट तो इतनी लुभावनी थी कि रात और दिन का पता ही नहीं चलता था। बड़ी-बड़ी गगनचुम्बी अट्टालिकाओं में काम करनेवाले लोग रात-दिन बिजली के आलोक में ही काम करते हैं। उनके लिए सूरज का आलोक तो शायद अनावश्यक ही हो गया है।

शुरू-शुरू में अमेरिकी जीवन की चमक-दमक अपने गहरे रंग पर रही। पर ज्यो-ज्यो दिन बीतने लगे, त्यों-त्यों अमेरिकावासी लोगों का वास्तविक जीवन देखने और समझने से वह रंग फीका पड़ने लगा। मुझे ऐसा लगने लगा कि ग्रह पूरा देश भारत के पुराने व्यापारी सेठ के घर जैसा है। जहाँ धन पानी की तरह बहता हो, पर, जीवन के मृत्यु उपेक्षित हो चुके हो। धन और गुण साथ-साथ मिलना साधारणतः कठिन ही होता है। जब न्यूयार्क की गन्दगी देखी, तब तो लगा कि संसार का सर्वोत्कृष्ट धनी नगर भी इस अभिज्ञाप से मुक्त नहीं है। भले ही वहाँ धन

पानी की तरह बहता हो, पर बावरी स्ट्रीट पर टूटा हुआ जीवन लेकर पैसा मॉगनेवालों पर किसे दया नहीं आयेगी ? भारत में रहकर मैं यह कल्पना भी नहीं कर सकता था कि न्यूयार्क शहर में रात-दिन दौड़नेवाली रेलें अपने डिब्बों में भिखारियों को भी ढोती होंगी । क्या लाभ हुआ इस अपार धनराशि का ? एक ओर गगनचुम्बी महल, दूसरी ओर हार्लम की गन्दी बस्तियाँ ।

हम एक रेस्तराँ में बैठे जलपान कर रहे थे । मेरे साथ थे लन्दन के एक पत्रकार जॉन पैण्वर्थ । थोड़ी देर में ३०-३५ वर्ष का एक सुन्दर-सा गोरा जवान आकर हमारे टेबल के पास पड़ी खाली कुर्सी पर बैठ गया । थोड़ी देर बाद उसने हमारी प्लेट की तरफ इशारा करते हुए पूछा : “क्या यह मैं ले सकता हूँ ?” मैं समझा नहीं । क्या सचमुच वह खाना मॉग रहा था ? “क्या आप भूखे हैं ?” अमेरिका में भी ऐसे भूखे लोग होंगे, इसकी कल्पना मुझे नहीं थी, इसलिए मैंने पूछा ।

“हाँ, मैंने सवेरे से कुछ नहीं खाया है ।”—उसने कहा ।

“आप यह प्लेट जरूर ले सकते हैं ।”—मैंने कहा ।

“और यह प्लेट भी ।”—जॉन ने अपनी प्लेट देते हुए कहा ।

“मैं एक आवारा हूँ ।”—उस जवान ने अपनी कहानी शुरू की । “एक वेवकूफ आवारा । मुझ जैसे हजारों हैं यहाँ । मेरे पास कोई काम भी नहीं है ।” मैंने उससे कहा : “मुझे तो आप एक अच्छे आदमी दीखते हैं । आप आवारा नहीं हैं । वेवकूफ भी नहीं हैं ।” गायद उसने बहुत दिनों बाद किसीसे सुना कि वह भी एक भला आदमी है । उसे मेरी बात पर भरोसा नहीं हो रहा था । वह एकटक मेरी ओर देखता रहा ।

“मुझे जीवन चाहिए ।”—उसने गद्गद स्वरों में कहा ।

मेरे मित्र जॉन ने कहा कि “जीवन तो आपके पास है । गायद आपको किसीका थार चाहिए ।”



प्यार शब्द सुनते ही उक्त महाशय बौखला उठे : “प्यार, प्यार ! दुनिया का सबसे कठिन शब्द ! क्या मुझे प्यार चाहिए ? क्या कोई मुझे प्यार दे सकता है ? नहीं, कोई नहीं दे सकता ।”

हम यह बातचीत कर ही रहे थे कि दरवाजे पर हमने देखा कि रेस्तराँ के मैनेजर किसीको डाँट रहे थे और धक्के देकर उसे बाहर निकाल रहे थे । ऐसे लोग वहाँ एक नहीं, अनेक थे । हमारे टेबल पर के आदमी ने खाना खा लेने के बाद हमसे पैसा माँगा । बीयर पीने के लिए उसे पैसों की जरूरत थी । हम रेस्तराँ से बाहर निकले, तो सड़क पर भी कई लोगो ने मदिरा पीने के लिए हमसे पैसे माँगे । मदिरा पीकर वे लोग अपना दुःख-दर्द भुलाना चाहते थे । चॉद पर पहुँचने की घुड़दौड़ में जो देश बीस बिलियन डालर खर्च कर रहा हो, वहाँ पाँच करोड़ लोग अभी भी ‘स्लम्स’ में रहते हैं, क्या यह आश्चर्य की बात नहीं है ? ऊपर की चमक-दमक देखकर अगर हम अन्दर की बीमारी को नजर-अन्दाज कर देंगे, तो वह अनुचित होगा । खूबसूरत परिधान में ढँके हुए बीमार शरीर पर आखिर कितनी देर कोई मुग्ध होगा ?

इसमें कोई सन्देह नहीं कि अमेरिका असाधारण रूप से सम्पन्न देश है । पर ‘दीया तले अन्धेरा’ की भाँति इस असाधारण सम्पन्नता के नीचे एक-चौथाई आबादी का जीवन जिस हालत में है, उसे देखकर स्वयं राष्ट्रपति लिंडन जानसन का दिल भी दहल उठा है । वैज्ञानिक शिक्षा के क्षेत्र में अनिपुण, मशीनी सभ्यता में अकुशल, एक सीधे-सादे आदमी का जीना अमेरिका जैसे देश में दूभर है । तकनीकी विद्या में सक्षम लोगों के इस देश में इन अक्षम लोगो के लिए कोई स्थान नहीं । इतिहास में पहली बार मनुष्य और मशीन के बीच ऐसी जवर्दस्त होठ पैदा हुई है । ये अक्षम और कमजोर गरीब ! अल्पमतवालो की कौन सुनवाई करे ? राष्ट्रपति जानसन ने गरीबी के खिलाफ युद्ध छेड़ने का बीड़ा उठाया है । पर उसके लिए भी अमेरिका के अनुदारपथी, कन्जग-वेटिव लोगो की आलोचना का राष्ट्रपति को झिकार होना पड़ रहा है ।

जानसन सरकार अणुयुद्ध की तैयारियों पर साठ बिलियन डालर प्रतिवर्ष खर्च कर रही है, जब कि देश की गरीबी पर हमला करने के लिए उन्हें केवल एक बिलियन डालर का बजट मिला है।

सवा छह महीने की यात्रा में हम लोगों को लगा कि इस देश में मशीन की शक्ति के सामने मनुष्य की शक्ति घुटने टेककर हार रही है। जब हम लोग वाशिंगटन में थे, तो वहाँ कनटक्की राज्य से आये हुए खान-मजदूरों के प्रतिनिधि-मण्डल से मिलने का मौका मिला। कनटक्की राज्य के ये खान-मजदूर राष्ट्रपति के सामने अपनी यह पुकार पेन करने आये थे कि उस राज्य की खानों में स्वचालित मशीनों का इस्तेमाल दिन प्रति दिन बढ़ता जा रहा है और हजारों मजदूर बेकारी की भयंकर परिस्थिति में उलझते जा रहे हैं। इसी तरह मशीन यदि मनुष्य का हर जगह स्थान लेती जायगी, तो आखिर मनुष्य एक निरुपयोगी प्राणी मात्र बनकर रह जायगा।

मैं जब 'ओटोमेट' नाम के एक रेस्तराँ में गया, तो एक ओर मेरे मन में उस नवीन पद्धति के प्रति कुतूहल और आश्चर्य था, तो दूसरी ओर मेरे मन में मशीन के पजे में फँसते जा रहे मनुष्य के प्रति तरस भी आ रहा था। इस ओटोमेट रेस्तराँ के नजदीक पहुँचते ही दरवाजा अपने-आप खुल गया। दरवाजा खोलने के लिए बड़ा हुआ मेरा हाथ निराश होकर वापस आ गया। यह एक बड़ा-सा खूबसूरत रेस्तराँ था। पूरे रेस्तराँ में एक भी मनुष्य नहीं। पचासों तरह की सामग्रियाँ, गरम और ठंडे पेय, विभिन्न देशों के विभिन्न गरम और ठंडे पदार्थ मशीनों में रखे थे। मशीन में पैसा डालो, जो वस्तु चाहिए उस वस्तु के नाम के सामने-वाला बटन दबाओ, इच्छित वस्तु बाहर प्रस्तुत हो जायगी। यदि आपके पास एक डालर का नोट है और आपको खुदरा पैसे चाहिए, तो उसके लिए भी आप मशीन के पास जाइये। बटन दबाइये। मशीन खुदरा पैसे निकालकर दे देगी।

इसी तरह यहाँ के सर्ववस्तु भण्डार, 'सुपर मार्केट' की स्वचालित व्यवस्था ने भी मुझे हैरत में डाल दिया। ये सारे 'सुपर मार्केट' तीन-चार बड़ी कम्पनियों के हाथ में केन्द्रित हैं और यहाँ साग-भाजी, फल, मास तथा अन्य खाद्य-सामग्री ताजा मिलने के बजाय शीतोष्ण नियन्त्रित मशीनों से प्राप्त होती है। सभी तरह का पका-पकाया भोजन, सब्जी, सूप, खीर इत्यादि बन्द डिब्बों में उपलब्ध हैं। रसोई बनाने में ज्यादा समय खर्च करने की जरूरत नहीं। हाँ, इतने सारे बच्चे हुए समय का क्या और कैसे उपयोग करना, इस प्रश्न का कोई उत्तर नहीं। व्हीचिंग पाउडर से साफ किये हुए गोहूँ के आटे की बनी हुई रूई की तरह नरम और सफेद डबल रोटी देखने में कितनी ही आकर्षक लगती हो, पर खाने में मुझे तो कभी स्वादिष्ट नहीं लगी। आश्चर्य तो इस बात का हुआ कि डबल रोटी के लिए भी विज्ञापन किया जाता है। तो क्या कल पानी के लिए भी विज्ञापन करना पड़ेगा? भारत में तो टाफी, कैन्डी, चाकलेट आदि प्रायः बच्चों के लिए ही बनती है। पर यहाँ तो ये चीजे जवान और बूढ़े लोग भी बच्चों की ही तरह खाते हैं। कुछ अमेरिकी मित्रों ने बताया कि अधिक कैन्डी खाने की वजह से ही सफेद, मजबूत और सुन्दर दाँत कम ही देखने को मिलते हैं। 'कोकाकोला' जैसे पेय और मीठी टाफियों का सतत उपयोग दाँतों का दुश्मन ही है। यहाँ की तरुण-तरुणियों 'चुइंग गम' (एक ऐसा पदार्थ, जिसे बग़ैर तक धीरे-धीरे चबाया जा सकता है) बहुत पसन्द करती हैं। सिगरेट पीना तो आम बात है। कुछ लोगों ने हमें बताया कि वे सिगरेट इसलिए पीते हैं कि उनके हाथ सिगरेट थामे रहने से कुछ व्यस्तता-सी महसूस करते रहे। मनुष्यों का काम मशीनें करे और मनुष्य को व्यस्त रखने के लिए ये मशीनें 'चुइंग गम' तथा सिगरेट पैदा करें!—यह है इस नये युग की यान्त्रिक सभ्यता।

संयुक्त राष्ट्रसंघ के आँकड़ों के अनुसार हर नौ सेकण्ड के बाद एक मनुष्य नाम का प्राणी भूख का शिकार होकर मर जाता है। पर यदि अमेरिका जैसे देशों में होनेवाली अन्न की बरबादी का हिसाब लगाया

जाय, तो असंख्य लोगो के प्राण बचाये जा सकते हैं। कागज की बरबादी का तो कोई पार ही नहीं। रही, कूड़ा-कचरा उठाने के लिए एक परिपूर्ण तन्त्र ही खड़ा है। अकेले 'न्यूयार्क टाइम्स' के रविवारीय अंक को छापने के लिए दस एकड़ भूमि का बॉस काटकर बनाया हुआ कागज लगता है। अस्सी प्रतिशत विज्ञापनो से भरे हुए इस एक विशालकाय अंक का वजन दो-ढाई किलोग्राम तक होता है। और 'सभ्यता' के नाम पर इसे हम आँख मूँदकर स्वीकार कर लेते हैं। हाँ, एक बात मुझे बहुत पसन्द आयी कि किसीको एक कागज का टुकड़ा भी फेंकना हो, तो वह उसे जहाँ कहीं सड़क पर नहीं फेंकेगा, बल्कि जहाँ पर कचरा डालने का डिब्बा रखा है, वही पर फेंकेगा। जगह-जगह ऐसे डिब्बे रखे हैं। कोई आदमी यदि कागज का छोटा-सा भी टुकड़ा इधर-उधर फेंक दे, तो उसे १० डालर जुर्माना देना पड़ेगा। इसीलिए अमेरिका के नगरों में एक विशेष प्रकार की स्वच्छता हमने देखी। पर वह स्वच्छता भी न्यूयार्क की हारलम जैसी बस्तियों में कहाँ है।

एक दिन फिलाडेल्फिया में हमारी सभा के वाढ आयोजको ने श्रोताओ के लिए कुछ नाश्ता और चाय का प्रबन्ध किया। गत्ते से बनी सुन्दर प्लेट और प्लास्टिक के बने आकर्षक चम्मच इस्तेमाल करने के बाद कचरे के डिब्बे में फेंके जा रहे थे। चम्मचो को कौन धोये? कौन सँभालकर रखे? धोने के लिए नौकर रखा जाय, तो वह इतना महँगा पड़ेगा कि उतने में ऐसे कितने ही चम्मच और खरीदे जा सकते हैं।

अमेरिका में चीजे सस्ती हैं, आदमी महँगा है, जब कि भारत में आदमी सस्ता है, चीजे महँगी हैं। अमेरिका में प्रायः हर आदमी के पास कार होती है। पर, ड्राइवर तो हजारों में किसी एक के ही पान होगा। सब लोग अपनी कार खुद चलाते हैं। दो-चार हजार में कार मिल सकती है, पर ड्राइवर रखना हो, तो उस पर कम-से-कम हजार रुपया महीना खर्च करना पड़ेगा। कोई अमीर आदमी घर के काम-काज के लिए नौकर रखता है, तो वह नौकर अपनी कार में आता है।

वह छह-सात घण्टे घर में सफाई करेगा, भोजन पकायेगा, प्लेट आदि साफ कर देगा। और हजार रुपया मासिक वेतन लेकर अपनी गृहस्थी चलायेगा। यो अमेरिका में ज्यादातर काम तो मशीन से ही होते हैं। दाढ़ी बनाने के लिए विजली की मशीन हाजिर है। दाँतों का ब्रश विजली से चलता है। स्त्रियाँ अपने गीले बालों को विजली से सुखाती हैं, विजली के ब्रश से अपने बाल झाड़ती हैं। जूतों पर पालिश करने के लिए भी विजली का ब्रश है। कपड़े धोने और सुखाने की विजली की मशीन तो एक आम बात है। विजली का कम्बल ओढ़कर सो जाइये और रातभर गरम रहिये। भारी रजाइयाँ ओढ़ने की कोई जरूरत नहीं।

## अमेरिकी विविधता



अमेरिका की जिस विशेषता ने मुझे सबसे अधिक प्रभावित किया, वह है उसकी विविधता में एकता। सैकड़ों तरह के छोटे-बड़े राजनैतिक और धार्मिक दलों को देखकर मैं हैरान रह गया। हिटलर को युगनेता मानकर नाजी पार्टी चलानेवाले भी इस देश में कानूनन सुरक्षित हैं और इस नाजी पार्टी के कोप-भाजन यहूदी लोग भी सुरक्षित हैं। गोरे वंश की पवित्रता और सर्वश्रेष्ठता में विश्वास करनेवाले 'क्लक्स क्लान' पार्टी के लोग भी नीग्रोवंश के खिलाफ आजादीपूर्वक नीग्रो-विरोधी आन्दोलन चला रहे हैं और उसी स्वतंत्रता के साथ काले नीग्रो-वंश की पवित्रता और सर्वश्रेष्ठता की वकालत करनेवाले गोरे वंश के राक्षसीय वंश होने का प्रचार कर रहे हैं। फासिस्ट विचारों के उपासकों की 'जान वर्च सोसाइटी' भी जोर-शोर के साथ अपना प्रचार चला रही है। अहिंसा, समानता और ज्ञान की बात करनेवाले पैसिफिस्ट भी नक्कारखाने में तूती की आवाज के समान अपना स्वर ऊँचा कर रहे हैं। अधिकांश अखबार और पत्र-पत्रिकाएँ व्यापारियों, पूँजीपतियों और विजापनदाताओं द्वारा दमित होने के कारण और

दूर रहते हैं। फिर भी 'प्रोग्रेसिव', 'लिबरेशन', 'दि माइनोरिटी आफ वन', 'नेशन' आदि कुछ छोटे-मोटे प्रगतिशील पत्र प्रकाशित हो ही रहे हैं। भले ही उनकी आवाज अरण्यरुदन की भाँति व्यर्थ हो ! आमतौर पर रेडियो तथा टेलीविजन पर चलनेवाले कार्यक्रमों का स्तर अत्यन्त व्यापार-दमित और घटिया होता है, फिर भी के. पी. एफ. ए. जैसे कुछ रेडियो स्टेशन अपना ऊँचा स्तर कायम रखने में भी सफल हुए हैं और घाटे में चलकर भी जीवित हैं। इस तरह की विविधता का यह देश है।

अमेरिका में आत्मालोचन की प्रवृत्ति भी बढ़ रही है। मैंने ऐसी अनेक पुस्तकें देखी, जो अमेरिकी जीवन की गहरी समीक्षा प्रस्तुत करती हैं। 'अगली अमेरिकन्स', 'अदर अमेरिका' और इसी तरह की कुछ पुस्तकों ने मेरा ध्यान आकृष्ट किया। इस आत्मालोचन की प्रवृत्ति ने अमेरिका को अपना विकास करने की नयी दिशा दी है। अमेरिका का रूप अन्तर्राष्ट्रीय माना जा सकता है। इंग्लैण्ड, जर्मनी, पोलैण्ड, रूस, इटली आदि अनेक देशों से आये हुए करोड़ों लोगों का सम्मिलित रूप ही अमेरिका है। अमेरिका के मूल निवासी तो अमेरिकन इंडियन हैं, जिनकी संख्या बहुत ही कम है। केवल यहाँ के निवासी ही नहीं, बल्कि यहाँ के शहरों तक के नाम दुनिया के विभिन्न देशों से पहुँचे हैं। एक दिन हम अपनी मेजबान के साथ कही जा रहे थे कि वह बोली : "यह मास्को है", "मास्को ?"—मैंने आश्चर्य से पूछा। "जी हाँ, मास्को ! पर मास्को यू. एस. एस. आर. नहीं। मास्को यू. एस. ए. है।" अमेरिका में केवल मास्को ही नहीं, पेरिस, रोम, लन्दन, बर्लिन आदि दुनियाभर के शहरों के नाम पर बसे हुए गहर हैं। यहाँ तक कि देहली भी है और न्यू देहली भी। कितना मजेदार है यह देश !

अमेरिकी लोग सीधे दिल और खुले दिमाग के होते हैं। औसत अमेरिकी नागरिक को अधिक पैसा कमाने की तथा सुरक्षा की चिन्ता सबसे ज्यादा रहती है। किसी भी दूसरे देश की भाँति यहाँ के लोग भी राजनैतिक मामलों में ज्यादा ध्यान नहीं देते, बल्कि ब्रिटेन, जापान और

भारत के विद्यार्थियों की तुलना में अमेरिका के विद्यार्थी राजनैतिक और सामाजिक आन्दोलनों में अपेक्षाकृत कम भाग लेते हैं। नीग्रो-आन्दोलन ने पहली बार युवकों में सामाजिक आन्दोलन की चेतना पैदा की है और हजारों विद्यार्थियों को सच्चे अर्थ में कर्मक्षेत्र में उतरने का अवसर दिया है। अमेरिका का शान्ति-आन्दोलन युवकों और छात्रों में नीग्रो-आन्दोलन की तरह चेतना पैदा नहीं कर सका है। 'स्टूडेंट्स पीस यूनियन' नाम की संस्था ने इस दिशा में थोड़ा प्रयत्न किया है और 'कमिटी फॉर नॉनवायलेन्ट एक्शन' ने भी कुछ क्षेत्रों में संगठित जाग्रति उत्पन्न की है।

## अमेरिका में शिक्षण



अमेरिका पहुँचनेवाले मुझ जैसे मुसाफिर के लिए शिक्षण-संस्थाओं की सैर करना एक खास दिलचस्पी का विषय था। रूस, जर्मनी, फ्रांस और ब्रिटेन की शिक्षण-संस्थाओं में समय गुजार लेने के बाद अमेरिकी शिक्षण-पद्धति को जानने-समझने की उत्सुकता स्वाभाविक ही थी। मुझे पहली रुचि शान्ति के प्रश्न पर थी और दूसरी रुचि शिक्षण के प्रश्न पर। इसलिए जहाँ कहीं भी शिक्षण-व्यवस्था को समझने का अवसर आया, मैंने उसका उपयोग किया। मेरे मन में बराबर यह खटकता रहा है कि आजादी के बाद भारत में अगर किसीकी सबसे ज्यादा उपेक्षा हुई है, तो वह शिक्षण की हुई है।

प्रसिद्ध वैज्ञानिक अल्बर्ट आइन्स्टीन की साधना से पवित्र प्रिटन विश्वविद्यालय से लेकर हार्वर्ड और कोलम्बिया विश्वविद्यालय तक जाकर मैंने यह समझने की चेष्टा की कि आखिर अत्यन्त आधुनिक और वैज्ञानिक साधनों से सम्पन्न इन विश्वविद्यालयों के विद्यार्थियों का जीवन कैसा है एवं उनकी विचार-परिपक्वता कितनी ऊँची है और तीस-चालीम

हजार की संख्या में विद्यार्थियों को समा सकनेवाले ये विद्या के केन्द्र मानवीय सम्बन्धों के क्षेत्र में कहीं तक आगे बढ़े हुए हैं ?

अमेरिका की शिक्षण-संस्थाएँ एक जैसी नहीं हैं। प्रत्येक कॉलेज और विश्वविद्यालय का अपना ढंग और अपना स्वतन्त्र स्वरूप है। वेरमोन्ट राज्य के दो कॉलेजों में हमारे भाषणों का कार्यक्रम था। इन दोनों शिक्षण-संस्थाओं में कुछ आकर्षक ढाँचा हमें देखने को मिला। करीब डेढ़ सौ छात्र और छात्राएँ प्रत्येक कॉलेज में हैं। वहीं अध्ययन और वहीं निवास है। इतने थोड़े-से विद्यार्थियों के लिए ३०-४० प्राध्यापक थे। वहाँ हमें मानवीय स्पर्श के दर्शन हुए और शिक्षा का स्तर अपेक्षाकृत ऊँचा मिला। अमेरिका के सामाजिक जीवन और पारिवारिक जीवन की परम्परा में कॉलेज में पढ़नेवाले विद्यार्थी घर में रहने के बजाय छात्रावास में रहते हैं। लड़के-लड़कियों साथ मिलकर जीवन व्यतीत करते हैं। जिस लड़के के साथ 'लड़की-मित्र' ( गर्ल फ्रेंड ) न हो और जिस लड़की के साथ कोई 'लड़का-मित्र' ( बॉय फ्रेंड ) न हो, वे अपने-आपको कुछ हीन-सा महसूस करते हैं। भिन्न-भिन्न राज्यों में शिक्षा के तौर-तरीके भी भिन्न-भिन्न हैं। कुछ सरकारी स्कूल और कॉलेज भी हैं। अधिकांश शिक्षण-संस्थाएँ आम जनता के चन्दे से निजी तौर पर चलती हैं। गैर-सरकारी शिक्षण-संस्थाएँ बहुत महँगी हैं। प्रति वर्ष तीन-चार हजार डॉलर ( करीब सोलह हजार रुपये ) का खर्च आता है। इतनी महँगी शिक्षा दिल दहलानेवाली है। नौजवान छात्र प्रतिवर्ष अपने माँ-बाप से इतनी बड़ी धनराशि प्राप्त करके खुश नहीं रहते। वे आत्मनिर्भर रहना चाहते हैं। इतने भारी खर्च के कारण अनेक छात्र स्वेच्छित विश्वविद्यालयों में नहीं जा पाते। सरकारी विश्वविद्यालयों में शिक्षा सस्ती है। पर गैरसरकारी विश्वविद्यालयों के छात्रों की तुलना में सरकारी विश्वविद्यालयों से उत्तीर्ण छात्रों की पृष्ठ कम होती है।

अमीर घरानों के विद्यार्थी भी सामान्य श्रम करके अपनी पढ़ाई का खर्च खुद निकाल लेते हैं। कैसा भी छोटा काम करने में वे वेत्तती



महसूस नहीं करते। होटल में प्लेट धोने का काम हो या सफाई करने का काम हो, ये विद्यार्थी आसानी से सब कर लेते हैं। श्रम की ऐसी प्रतिष्ठा और ऐसा मूल्य भारत में कब होगा ? प्रिस्टन विश्वविद्यालय के एक छात्र ने हमें बताया कि शिक्षा का खर्च पूरा करने के लिए वह होटल में काम करता है और दिन में केवल एक बार भोजन करके अपना काम चला लेता है।

इस अति आधुनिक और दुरुह शिक्षा के बावजूद अपराधों का स्तर क्यों इतना ऊपर चलता जाता है ? केन्द्रीय जॉच संगठन ने सन् १९६२ के अपराधों की समीक्षा करते हुए बताया था कि गम्भीर अपराधों की २० लाख घटनाएँ उस वर्ष घटीं। राष्ट्रपति केनेडी की हत्या ने सारे संसार को चौंका दिया, पर हत्याएँ इस देश के लिए कोई नयी बात नहीं हैं। सन् १९६२ में प्रतिदिन २४ हत्याएँ हुईं। अर्थात् हर घण्टे में एक आदमी मौत के घाट उतार दिया गया। यदि इस हिसा और घृणा पर काबू नहीं किया जा सकता, तो अवश्य ही शिक्षण-पद्धति में कहीं दोष है। सन् १९६२ में बलात्कार की घटनाओं का औसत प्रतिदिन ५० रहा। यह तो निश्चित ही है कि बलात्कार की सभी घटनाएँ पुलिस की नजर में नहीं आ पातीं। हर चार मिनट के बाद एक झगड़ा पुलिस की पकड़ में आया। पुलिस की पकड़ के बाहर कितने झगड़े और बलात्कार हुए, उनका कोई हिसाब नहीं। हर रविवार को गिरजाघरों में धर्म की शिक्षा दी जाती है। इसलिए ऐसा नहीं कहा जा सकता कि धर्म की शिक्षा के अभाव में अपराध बढ़े हैं। हर गली और हर सड़क पर दो-चार गिरजाघर अवश्य मिलेंगे। साम्यवादी देशों में जिस तरह धर्म को जान-बूझकर बहिष्कृत किया गया है, उसके बदले यहाँ चर्च और धर्म को अधिक प्रतिष्ठा दी गयी है। फिर भी अपराधों की संख्या इतनी बड़ी है।

अमेरिका की शिक्षण-संस्थाओं पर राज्य का नियन्त्रण तो कम है, किन्तु अर्थदाताओं का प्रभाव उन पर कहीं अधिक है। कहीं-कहीं तो न चाहने पर भी विद्यार्थियों को कॉलेज के गिरजाघर में अनिवार्य रूप से

इसलिए जाना पड़ता है कि उस कॉलेज का खर्च अमुक चर्च से मिलता है।

अमेरिकी शिक्षण-पद्धति में सबसे अधिक आकर्षण की बात यह है कि विद्यार्थियों का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व प्राध्यापक के कन्धों पर होता है। विश्वविद्यालय की ओर से शिक्षकों और विषयों की लम्बी सूची विद्यार्थियों के सामने प्रस्तुत की जाती है। अपना शिक्षक और विषय चुनने के लिए विद्यार्थी स्वतन्त्र है। जब विद्यार्थी अपने शिक्षक और विषय का चुनाव कर लेते हैं, तब शिक्षक विद्यार्थियों के लिए पुस्तकें सुझाते हैं। ये शिक्षक ही परीक्षा लेते हैं।

भारत के विश्वविद्यालयों में तो विश्वविद्यालय की ओर से उसका स्वीकृत पाठ्यक्रम शिक्षक और विद्यार्थियों पर लाद दिया जाता है, पर अमेरिका के विश्वविद्यालयों में इस केन्द्रित निर्णय की पद्धति को हटाकर प्राध्यापक और विद्यार्थियों पर सब कुछ छोड़ दिया जाता है। भारत में शिक्षक पढ़ाता कुछ और है, परीक्षक प्रश्नपत्र कुछ दूसरे ही बना देता है। उत्तर-पत्रों की जाँच कहीं तीसरी जगह होती है। यही कारण है कि जब विद्यार्थी प्रश्नों के उत्तर नहीं दे पाता, तब वह या तो नकल करता है या चोरी करता है, और पकड़े जाने पर परीक्षा-भवन की जाँच के लिए तैनात प्राध्यापक पर हमला भी कर बैठता है। पर अमेरिका में ऐसा कुछ नहीं होता। वहाँ तो जो प्राध्यापक पुस्तकों का चुनाव करता है, वही पढ़ाता है। वही छात्रों के लिए प्रश्नपत्र बनाता है। वही परीक्षा लेता है। वही उत्तर-पत्रों की जाँच करता है, वही नम्बर देता है। वही छात्रों को उत्तीर्ण या अनुत्तीर्ण करता है। प्राध्यापक का हर निर्णय अन्तिम होता है। विश्वविद्यालय के किसी भी अधिकारी को छात्र और प्राध्यापक के बीच आने का हक नहीं।

इस पद्धति में छात्र और शिक्षक के बीच हृदय का सम्बन्ध बनता है। दोनों एक-दूसरे के प्रति जिम्मेदार होते हैं। दोनों के हृदय में एक-दूसरे के प्रति आदर होता है। अनुशासनहीनता की घटनाएँ स्वतः कम

हो जाती है। जब मैंने कुछ लोगो से पूछा कि 'क्या यहाँ के छात्र कभी हड़ताल करते हैं?' तो लोग मेरे प्रश्न को समझ ही नहीं सके। छात्र और हड़ताल? जब कि भारत में हड़ताली छात्रों पर गोलियाँ तक चलती हैं! भारत के छात्रों और प्राध्यापकों के बीच न तो इस तरह का आदर-भाव है और न कोई गहरा रिश्ता।

## थोरो की कुटिया पर



“सविनय कानून भंग का शस्त्र अत्यन्त प्रभावशाली है। आपको यह शस्त्र कहाँ से मिला?”—प्रसिद्ध अमेरिकी पत्रकार लुई फिशर ने महात्मा गांधी से पूछा।

“अमेरिका से”—बापू ने मुस्कराकर कहा।

“अमेरिका से?”—लुई फिशर ने आश्चर्य किया। बेचारा पत्रकार असमजस में पड़ गया।

“हाँ लुई, इसमें आश्चर्य की बात नहीं। अमेरिका के महान् चिन्तक हेनरी डेविड थोरो ही मेरे गुरु हैं। उन्हींसे मैंने सविनय कानून-अवज्ञा का पाठ पढ़ा है।”—बापू ने स्पष्ट किया।

मैंने जब यह विवरण पढ़ा, तो उसी दिन से मेरे मन में तरह-तरह की जिज्ञासाएँ उत्पन्न होने लगीं। मैंने पहली बार थोरो का नाम पढ़ा था। ‘कौन है यह महान् चिन्तक, जो महात्मा गांधी को प्रेरणा दे सकता है?’ यह सवाल रह-रहकर मेरे सिर में चक्कर काटने लगा। मैंने पुस्तकालय छानना शुरू किया, पर दुर्भाग्य से कोई पुस्तक नहीं मिली। मेरी जिज्ञासा बढ़ती गयी। एक दिन मैं किसी मासिक-पत्रिका के पन्ने उलट रहा था। सम्पादक ने एक लेख के नीचे बची हुई जगह में एक छोटा-सा संवाद छपा था। यह संवाद था थोरो और उसके मित्र महान् विचारक श्री एमरसन के बीच का। थोरो सरकार को व्यक्ति-कर चुकाने से इनकार करने पर गिरफ्तार करके जेल में बन्द कर दिये गये थे।

उन्होंने यह कर चुकाने से इसलिए इनकार किया था कि सरकार मेक्सिको-युद्ध के खर्च में सरकारी पैसे का उपयोग कर रही थी। थोरो से मिलने के लिए कवि एमरसन जेल की कोठरी पर पहुँचे और विनोद में बोले : “कहो हेनरी, जेल की कोठरी के अन्दर बैठे क्या कर रहे हो ?” हेनरी ने कहा : “साथी एमरसन, तुम जेल की कोठरी के बाहर खड़े क्या कर रहे हो ?” इस प्रश्न में एक उत्तर भी था और एक जबर्दस्त चुनौती भी। जेल की कोठरी के बाहर खड़े रहकर अन्याय को सहन करने की पीड़ा से अन्याय का प्रतिकार करते हुए जेल की कोठरी के अन्दर रहने की पीड़ा कहीं कम होती है।

उक्त सवाद ने मेरे मन को और अधिक झकझोर डाला। बहुत खोजने पर मुझे थोरो का एक निबन्ध पढ़ने को मिला—‘सिविल डिस्ओबीडिएन्स’—सविनय अवज्ञा। इस निबन्ध ने मुझे एक नयी रोशनी दी। थोरो ने लिखा था कि दुनिया का कोई भी कानून व्यक्ति की आत्म-चेतना से ऊपर नहीं है। यदि किसी कानून के कारण आत्म-चेतना पर आघात होता है, तो उस कानून को चुनौती देना या उस कानून को अस्वीकार कर देना व्यक्ति का जन्मसिद्ध अधिकार है। गांधी को इसी विचार से प्रेरणा मिली और उन्होंने अंग्रेजों द्वारा लादे हुए नमक कानून को अस्वीकार किया। मार्टिन लूथर किंग को भी थोरो से प्रेरणा मिली और उन्होंने रंगभेद कानून को अस्वीकार किया। वट्रेंड रसेल को भी थोरो से प्रेरणा मिली और उन्होंने आणविक अस्त्रों के खिलाफ प्रदर्शन करने की पावन्दी तोड़कर जेल जाना पसन्द किया।

हम अपनी शांति-यात्रा के दौरान में जब अमेरिका का पर्यटन कर रहे थे, तो हमारे मन में थोरो की कुटिया पर जाकर अपनी श्रद्धाजलि अर्पित करने की कामना अत्यन्त प्रबल थी। अमेरिका के पूर्वी किनारे पर बसे हुए बोस्टन शहर से करीब ४० मील दूर वाल्टेन पोड की वन-बीथी में थोरो ने अपने हाथ से एक छोटी-सी कुटिया बनायी थी। बिना

किसी मजदूर के पूरी कुटिया का उन्होंने स्वयं निर्माण किया था। स्वावलम्बी और श्रमिक जीवन का आदर्श उन्हें बहुत प्यारा था। पैसे का व्यवहार वे कम-से-कम करना चाहते थे। धन और सत्ता को उन्होंने मानव-जीवन की प्राकृतिक सरलता और सादगी के लिए बाधक माना था। जेल से छूटने के बाद उन्होंने इसी पहाड़ी पर अपने दोस्तों को दावत दी। अपने मित्रों के बीच अनुपम स्वतन्त्रता का अनुभव करते हुए कहा : “स्टेट वाज नो ह्वेयर टु बी सीन”। “राज्य कहीं भी तो दिखलायी नहीं पड़ता !” इस एक ही वाक्य से थोरो के शासन-मुक्ति के विचार समझे जा सकते हैं।

जब हम वाल्डेन पोण्ड पहुँचे, तो सूर्यास्त की वेल थी। लाल धित्तिज की पृष्ठभूमि में वाल्डेन पोण्ड के ऊँचे-ऊँचे पेड़ खूबसूरत लग रहे थे। बर्फ से सफेद धरती पर काला अन्धेरा बिछता जा रहा था। इस सुहावने जंगल के अन्दर सड़क पर हमने अपनी कार छोड़ दी। हमारे दो अमेरिकन मित्र अँधेरी पगडण्डी पर आगे-आगे चलते हुए रास्ता बता रहे थे। हम उनके पीछे-पीछे चल रहे थे। फरवरी का ठंडा महीना। तेज हवा। कभी-कभी ऐसी तूफानी हवा मुझे बड़ी अच्छी लगती। ओवर-कोट, फरोवाली गरम टोपी और हाथ के दस्तानों के कारण यह कड़-कड़ाती सर्दी हम पर ज्यादा असर नहीं कर सकती थी। दो-तीन घाटियाँ पार करके हम अपने लक्ष्य-स्थल पर पहुँचे। इस समय कुटिया पर कुछ नहीं है। टूटा खंडहर मात्र है। सरकार ने एक गिलालेख गाड़ रखा है, जिससे पता चलता है कि यहाँ थोरो रहते थे। यह स्थान सर्वथा उपेक्षित है। फिर भी चारों ओर का प्राकृतिक वातावरण अत्यन्त सुरम्य है। यदि इस स्थान की ओर थोड़ा भी ध्यान दिया जाय, तो पर्यटकों के लिए यह एक उत्तम आकर्षण-केन्द्र बन सकता है। एक-एक पत्थर और एक-एक लकड़ी चुन-चुनकर थोरो ने जब इस कुटी का निर्माण किया होगा, तो उनके मस्तिष्क में कितना ऊँचा आदर्श रहा होगा। सादगी के जीवन का आदर्श ! थोरो का यह छोटा-सा ममार कितना लुभावना

रहा होगा ! वे प्रकृति की गोद में रहते थे । प्रकृति के पुजारी थे । प्रकृति का प्यार उन्हें यहाँ खींच लाया था । हमने थोरो को अपनी श्रद्धाजलि अर्पित की । कितना पावन था यह तीर्थ ।

## काली चमड़ी, पिस्तौल का निशाना



गोरी चमड़ी का अभिमान भी कैसा भयकर अभिमान है । मैं सुना करता था कि दक्षिण अफ्रीका और अमेरिका के गोरी चमड़ीवाले लोग अपने-आपको काली चमड़ीवालों से ऊँचा समझते हैं और काली चमड़ी से घृणा करते हैं । लेकिन उस समय मैं ऐसा समझता था कि पहले भले ऐसा रहा होगा, पर अब धीरे-धीरे मिट गया होगा । लेकिन अमेरिका की यात्रा के दौरान मैं जब दक्षिणी राज्यों में गया, तब वहाँ के नीग्रो लोगो की हालत देखकर मैं चकित रह गया । इस बीसवीं शताब्दी में भी केवल काली चमड़ी के कारण ऐसा व्यवहार होगा, यह कल्पना से बाहर की बात है । काली चमड़ीवाले नीग्रो दूसरी श्रेणी के नागरिक माने जाते हैं । काली चमड़ी का होना एक भयकर अभिमान है । केवल इतना ही नहीं कि काली चमड़ीवाला नीग्रो हठ्ठी गोरी चमड़ीवालों के होटलो, सिनेमाओं आदि सार्वजनिक स्थानों में नहीं जा सकता, बल्कि यह भी है कि गोरी चमड़ी की उत्कृष्टता के दावेदार नीग्रो लोगो को भयकर रूप से सताते हैं । उन्हें वक्त-बेवक्त मारते-पीटते हैं । उनके घर जला डालते हैं । जॉर्जिया अलाबामा, मिसिसिपी आदि दक्षिणी राज्यों में नीग्रो-समाज की जो दुरवस्था है तथा उन पर जो अन्याय होता है, उस पर विश्वास करना भी कठिन है । रस्त्रियों का क्रन्दन सुनकर कान बहरे हो जाते हैं । ये लोग गन्दी वस्त्रियों में रहते हैं । फटे-पुराने कपड़े पहनते हैं । गरीबी का जीवन बिताते हैं । उन्हें सरकारी दफ्तरों में या निजी व्यापार-संस्थानों में आसानी से काम नहीं मिलता । बेकारी की समस्या उनके जीवन की प्रमुख समस्या है ।

का कुछ भी पता नहीं है। यदि आप नाराज होते हैं, तो मुझे इस रेस्तराँ में कुछ भी खाने-पीने की इच्छा नहीं है। लेकिन मैं समझना चाहता हूँ कि आखिर बात क्या है? आपको कारण समझाना होगा।”

मैंने ऐसा कई बार कहा। पर मेरे बारे में उसे भ्रम होने का सवाल ही क्या? साफ जाहिर था कि मेरी चमड़ी रेस्तराँ के मालिक की चमड़ी से भिन्न थी। जब इस सारी बहस में पाँच-सात मिनट गुजर गये, तो रेस्तराँ के मालिक का धीरज टूट गया। रेस्तराँ में बैठे हुए तमाम लोगों का ध्यान हमारी ओर खिंचा हुआ था।

रेस्तराँ के मालिक का शरीर कॉप रहा था। उसने चिल्लाकर कहा : “रेस्तराँ के बाहर जाते हो या सबक सिखाऊँ?” और उसने आलमारी की दराज में से एक बड़ा-सा चमड़े का बैग निकाला। बैग को खोलते ही एक अत्यन्त आधुनिक ढंग का पिस्तौल उसमें से निकल पड़ा। शायद उसने सोचा कि पिस्तौल देखकर मैं भाग जाऊँगा। पर मैंने हँसते हुए कहा : “मेरे भाई, पिस्तौल दिखाने की कोई जरूरत नहीं। मुझे आपके पिस्तौल का डर भी नहीं लगता। फिर, मैं यहाँ झगड़ने के लिए नहीं आया हूँ और स्वयं चला जा रहा हूँ। परन्तु तब तक नहीं जाऊँगा, जब तक आप मुझे यह नहीं समझा दें कि मुझे यहाँ खाना क्यों नहीं मिलेगा?”

मेरा हँसना और बजाय डरकर भागने के वही खड़े रहना उसकी क्रोधाग्नि में घी का काम कर रहा था। उसने पिस्तौल हाथ में उठायी, अगुली घोड़े पर रखी और दूसरे हाथ से रेस्तराँ के दरवाजे की तरफ इशारा करते हुए कहा : “बिना कुछ बोले बाहर निकल जाओ।”

इसी बीच हमारे पास खड़ी वेट्रेस को दया आयी। उसने सोचा कि कहीं कुछ दुर्घटना न घट जाय, इसलिए उसने पीछे से एक जोर का धक्का लगाया और मुझे रेस्तराँ के बाहर निकालकर झट से दरवाजा बन्द कर लिया। मैंने देखा कि रेस्तराँ का मालिक कोई बात सुनने-समझने को तैयार ही नहीं था। इसलिए बात बढ़ाना बेकार है। मैंने

साथी जॉन ने भी यही कहा कि अब बात बढ़ाना उचित नहीं होगा । इसलिए हम वहाँ से लौट आये ।

इस घटना से जाहिर है कि रंगभेद का नशा कितना जहरीला होता है । यदि ऐसा कोई प्रसंग हो, कोई परेशानी या मतभेद हो, तो पुलिस को बुलाया जा सकता है, परन्तु इतनी जरा-सी बात पर पिस्तौल हाथ में लेने की बात तो अजीब-सी लगती है । वाद में अन्य अमेरिकी मित्रों ने बताया कि अगर रेस्तराँ की वेट्रेस धक्का देकर बाहर न निकाल देती, तो किसी दुर्घटना का होना असम्भव नहीं था ।

## नीग्रो-आन्दोलन



नीग्रो लोगो से समानता प्राप्त करने के लिए पिछले कई सालों से एक बहुत जबरदस्त आन्दोलन छेड़ रखा है । इस आन्दोलन में भाग लेनेवाले और इसका नेतृत्व करनेवाले ज्यादातर हब्शी युवक हैं । इस आन्दोलन का स्वरूप लगभग वैसा ही है, जैसा भारत में आजादी के आन्दोलन का था । हम जब भी नीग्रो बस्तियों में से गुजरते थे, तो हमें 'फ्रीडम' 'फ्रीडम' का नारा सुनाई पड़ता था । भारत में तो हम केवल गांधी की पूजा करते हैं, अमेरिका के हब्शी युवक तो गांधी के विचारों पर अमल करते हैं । हजारों युवकों ने जिस तत्परता और निष्ठा के साथ इस आन्दोलन में भाग लिया है, वह विलक्षण है । ये युवक हफ्तो उपवास करते हैं, जेल-यातना भोगते हैं । रोबिन्सन नाम के एक नीग्रो युवक ने मुझसे घण्टेभर बात की । वह बोला : "मैं नीग्रो जाति की आजादी के लिए लड़ रहा हूँ, न कि गोरी चमड़ीवाले अपने भाइयों के खिलाफ । मैं अन्याय से नफरत करता हूँ । पर अन्याय करनेवाले के प्रति मेरे मन में द्वेष नहीं । यह सबक मैंने 'गांधी की आत्मकथा' में सीखा है ।" एक दूसरे नीग्रो युवक कार्ल अनौल्ड ने मैंने पूछा : "जब गोरों लोग आपके शरीर पर बिजली के कोड़े चलाते हैं अथवा आप पर रुने



छोड़ते हैं, तब भी क्या हिंसा का सहारा लेने की आपकी इच्छा नहीं होती ?” श्री अर्नोल्ड ने कहा : “हिंसा का गमन हिंसा से नहीं हो सकता । आग से आग नहीं बुझती । हमारे आन्दोलन में हिंसा अनैतिक ही नहीं, अव्यावहारिक भी है ।”

हम जब भारत से विदा हो रहे थे, तो कुछ मित्रों ने कहा था कि आप विदेशों में भारत की उच्च सस्कृति का सन्देश फैलाये और विश्व को अहिंसा तथा शान्ति का पाठ पढ़ाये । लेकिन जब हमने अमेरिका में डा० मार्टिन लूथर किंग के नेतृत्व में चलनेवाला अहिंसात्मक नीग्रो-आन्दोलन देखा, तो हमें लगा कि शायद भारत को ही अहिंसा का मार्ग वहाँ से सीखना पड़ेगा । शान्तिमय आन्दोलन के द्वारा समानता-प्राप्ति का सक्रिय शिक्षण उन्हींसे लेना होगा । हाल में ही डॉ० किंग को विश्व का सबसे बड़ा पुरस्कार, नोबल प्राइज देकर उनके अहिंसा सम्बन्धी विचारों का सम्मान किया गया है । ये डॉ० किंग ही थे, जिनके आह्वान पर हजारों नीग्रो जेलों में गये । अमेरिका की जनता ने नीग्रो लोगों को समानता का अधिकार देना स्वीकार कर लिया है । अमेरिका की सरकार ने काले-गोरे के भेद को समाप्त करनेवाला कानून बनाया है । नीग्रो लोगों ने आजादी की लड़ाई के लिए हिंसा, रक्तपात और वैमनस्य का नहीं, बल्कि प्रेमपूर्ण प्रतिकार, असहयोग, सविनय कानून भंग और सत्याग्रह का मार्ग चुना ।

अब्राहम लिंकन के बाद पहली बार राष्ट्रपति जान केनेडी ने एक दमिit जाति के ऑसुओं को पोछने का बीड़ा उठाया । काली और गोरी चमड़ी के नाम पर मनुष्य-मनुष्य के बीच दुर्भाव, घृणा और भेद पैदा करनेवालों से उन्होंने जीवन के नये मूल्य अपनाने की अपील की तथा देश के सामने नागरिक अधिकार कानून उपस्थित किया । इसके पहले कि यह कानून साकार हो पाता, केनेडी के सीने में बन्दूक की तीन गोलियाँ दाग दी गयीं । उनका सपना उनके रहते सक्रिय रूप नहीं ले सका । उनके उत्तराधिकारी राष्ट्रपति जानसन ने कहा कि स्व० जान केनेडी को

सच्ची श्रद्धाञ्जलि देने का सबसे श्रेष्ठ साधन है—नागरिक अधिकार कानून को यथावत् स्वीकार करना। परन्तु गोरी चमड़ी को श्रेष्ठता का प्रतीक माननेवाले कुछ प्रतिक्रियावादी लोग इस अपील को मानने के लिए राजी नहीं हो रहे थे।

काली और गोरी चमड़ी का प्रश्न पूरे अमेरिका में दिन प्रतिदिन तोखा होता जा रहा है। किसी भी समय हिंसा फूट पड़ने का खतरा सिर पर लटक रहा है। प्रतिक्रियावादी नेता मलक्रम एक्स ने स्पष्ट शब्दों में कहा था कि 'गोरेपन के अभिमान में चूर अहिंसा की भाषा कभी नहीं समझेगे। अतः हमें अपने बचाव के लिए बन्दूक चलाने का प्रशिक्षण लेना चाहिए और गोरो के अन्यायों को समाप्त करने के लिए ईंट का जवाब पत्थर से देना चाहिए।' अगर इस युवा नीग्रो नेता की सीख पर अमल किया गया, तो इसमें सन्देह नहीं कि अमेरिका में गोरो और कालो के बीच वैसे ही भयकर रक्तपात का खतरा है, जैसा कि सन् १९४७ में भारत में हुआ था। कहीं-कहीं होनेवाले हिंसात्मक दंगे इस बात का प्रमाण हैं कि हिंसक शक्तियाँ विश्राम नहीं कर रही हैं।

आज अमेरिका का नीग्रो एक दुराहे पर खड़ा है। एक ओर मलक्रम एक्स का बन्दूक का रास्ता है, दूसरी ओर डॉ॰ किंग सद्भावना और अहिंसा का दीप लेकर खड़े हैं। आज का नया नीग्रो 'नागरिक अधिकार कानून' से कुछ आश्वस्त हुआ है। यदि यह कानून अस्वीकृत हो जाता तो निराशा, असन्तोष और प्रतिक्रिया की चपेटों में उलझा हुआ नीग्रो किस मार्ग की शरण लेता, यह कहना कठिन है। जब हम अमेरिका में थे, तब यह कानून कांग्रेस ने तो स्वीकार कर लिया था, पर सीनेट में जाकर अटक गया था। एक टेमोक्रेट राष्ट्रपति द्वारा उपस्थित यह बिल टेमोक्रेट सदस्यों के विरोध के भँवर में उलझा हुआ था। गोरी चमड़ी की उत्कृष्टता के पोषक कुछ सदस्य इस बिल में अनेक संशोधन उपस्थित करके उसे प्रभावहीन, दुर्बल और लँगड़ा बना देना चाहते थे। ये सारे संशोधन न केवल कानून के रूप को बदल डालने,

बल्कि उसे पूरी तरह निकम्मा बना देते । डॉ० किंग की तो यह मान्यता थी कि इस संशोधित बिल को स्वीकार करने के बजाय बिल का न होना ही ज्यादा अच्छा था । बाद में सीनेट ने बहुमत से इस बिल को स्वीकार किया । अमेरिका पर विश्व की आँखें लगी हैं । जनतन्त्र, व्यक्ति-स्वातन्त्र्य और समानता के आदर्शों के लिए अमेरिका सदा से वकालत करता रहा है । यदि अमेरिका में ही इन सिद्धान्तों पर अमल नहीं होता, तो ससार को कितनी निराशा होगी ! इसलिए नीग्रो समानता का महत्त्व राजनैतिक दृष्टि से भी कम नहीं है ।

नीग्रो-आन्दोलन पर अहिंसा का जो प्रभाव है, वह अपना असाधारण महत्त्व रखता है । आज अहिंसा और गांधी लोगो के लिए विशेष चर्चा और अध्ययन के विषय बन गये हैं । रिचर्ड ग्रेग ने कहा था कि 'अमेरिका के नीग्रो छात्र ठीक वही भाषा बोलते हैं, जो भाषा गांधीजी बोलते थे ।' इससे यह स्पष्ट है कि अमेरिका के नीग्रो अपना आन्दोलन धीरज, हिम्मत और गम्भीरता के साथ चला रहे हैं । पर आशंका यही है कि कहीं उनके धीरज का बाधा दूसरे पक्ष की हठधर्मिता के कारण टूट न जाय । यह सही है कि उक्त बिल के स्वीकृत हो जाने मात्र से नीग्रो लोग गन्दी वस्तियों को छोड़कर खूबसूरत महलों में नहीं पहुँच जायेंगे; स्कूलों, सिनेमाओं और होटलों में बरता जानेवाला भेदभाव भी एक ही दिन में समाप्त नहीं हो जायगा, शिक्षा का स्तर भी तुरन्त आसमान पर नहीं चढ़ जायगा, बेकार नीग्रो काम पर नहीं लग जायेंगे; उनकी आर्थिक आय पलों में दुगुनी नहीं हो जायगी; नीग्रो बच्चों को खूबसूरत कपड़े नहीं मिल जायेंगे; स्कूलों में पर्याप्त शिक्षक भी नहीं पहुँच जायेंगे, बीमार नीग्रो तुरन्त दवा भी नहीं पा जायेंगे; इसमें देर होगी । केवल कानून बन जाने से यह परिवर्तन नहीं हो जायगा । यह परिवर्तन तभी होगा, जब अमेरिका की जनता का हृदय-परिवर्तन होगा—जब गोरों के मन में नीग्रो के प्रति सद्भाव पैदा होगा । कानून बन जाने से आज की हीनता की स्थिति पर हथौड़ा अवश्य लगेगा ।

इससे नीग्रो लोग हीन भाव और दूसरी श्रेणी के नागरिक की सतह से ऊपर उठने के लिए तैयार हो सकेंगे। गोरे लोगों के हृदय-परिवर्तन के लिए तथा अहिंसात्मक आन्दोलन चलाने के लिए व्यवस्थित और वैज्ञानिक ढंग से जो प्रशिक्षण-केन्द्र चलाये जा रहे हैं, वे भविष्य के उत्तम समाज की बुनियाद डालेंगे।

सपना साकार हुआ



अमेरिका से विदा होने की वेला आयी। ऐसा लगता था, जैसे हमने कोई सपना देखा हो। हम जब भारत से चले थे और खैबर दर्रे से गुजर रहे थे, तो चार अमेरिकी सज्जन मिले। उन्होंने अपनी कार रोकी और पूछा : “क्या आप हमारे साथ चलेगें ? जहाँ आपको जाना हो, हम छोड़ देंगे।”

हमने कहा : “नहीं, हम गाड़ी में नहीं चलेगें।” तो उन्होंने पूछा : “कहाँ जा रहे हैं ?”

हमने कहा : “हम अमेरिका जा रहे हैं।”

वे चारों अमेरिकी भाई टहाका मारकर हँस पड़े। उन्होंने इसे एक मजाक समझा। कहने लगे : “मालूम है, कहाँ है अमेरिका ?”

हमने कहा : “हम कभी गये तो नहीं हैं, पर नक़्शे में देखा है। बहुत दूर है। फिर भी हम चल ही पड़े हैं। ‘चलता मुसाफिर ही पायेगा मजिल और मुकाम।’ कभी तो हम पहुँच ही जायेंगे।”

उन लोगों को विश्वास तो नहीं हुआ, पर उनमें से एक भाई डॉ॰ स्कार्फ ने अपने घर का पता और टेलीफोन नम्बर देते हुए कहा : “अगर आप संयोग से अमेरिका पहुँच ही जायें, तो हमें टेलीफोन कीजियेगा।”

हमने उनका नम्बर अपनी डायरी में नोट कर लिया। कदम-कदम चल्कर आखिर जब हम अमेरिका पहुँचे और फ़्लॉरेन्सिया शहर में

गुजर रहे थे, तो हमें डॉ० स्कार्फ और उनके साथियों की याद आयी। रात को बारह बजे हमने उन्हें टेलीफोन किया : “डॉक्टर साहब, क्या आपको याद है कि खैबर पास में दो पदयात्री आपको मिले थे।” डॉक्टर बोले : “हाँ, हाँ, मुझे याद है। कहाँ है वे ?”

हमने कहा : “हम आपके नगर में पहुँच गये हैं और हम ही टेलीफोन पर बात कर रहे हैं।”

उन्होंने अपने कानों पर भरोसा नहीं हो रहा था। उन्होंने कहा : “क्या सचमुच आप पहुँच गये ?”

जब हमने कहा कि ‘कल सुबेरे हम आपसे मिलेंगे’ तो डॉक्टर स्कार्फ बोले : “सुबेरा तो बहुत दूर है। मैं रुक नहीं सकता तब तक।”

रात की कड़ी सर्दी में १२ बजे आकर वे हमसे मिले। उन्होंने कहा : “सचमुच सपना साकार हुआ।”

इसी तरह एक अन्य अमेरिकी युवक ने ‘न्यूयार्क टाइम्स’ में हमारी पदयात्रा के प्रारम्भ होने के समाचार पढ़कर प्रधानमन्त्री नेहरू को लिखा कि ‘मुझे मालूम नहीं कि ये दोनों पदयात्री कहाँ हैं ? पर वे जहाँ भी हों, कृपया उन्हें मेरा यह सन्देश दीजिये कि वे जब भी अमेरिका जायें, मेरे घर आकर अतिथि बने।’ हम काबुल पहुँचे, तो नेहरूजी के कार्यालय से एक चिट्ठी हमारे राजदूत ने हमें दी। इतना पहले से आतिथ्य का आमन्त्रण पाकर हमें बड़ी खुशी हुई, पर उस समय हम नहीं जानते थे कि किस तरह उसका आमन्त्रण चरितार्थ होगा। पर आखिर वह चरितार्थ हुआ और उस उत्साही युवक से हम मिले। उसके विद्यालय में जाकर हमने अपनी यात्रा के अनुभव भी सुनाये। वह वेस्टपोर्ट का युवक कहने लगा : “मैंने जब नेहरूजी को चिट्ठी लिखी थी, तो भरोसा नहीं हो रहा था कि आप कभी अमेरिका पहुँच सकेंगे। पर जब आप पहुँच गये तो लगता है कि सपना साकार हुआ।”

## हवाई द्वीप



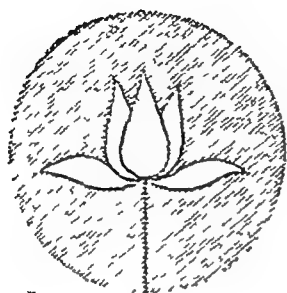
अमेरिका में हमारा आखिरी मुकाम होनोलुलू, हवाई द्वीप में था। सचमुच यह छोटा-सा द्वीप धरती पर स्वर्ग का टुकड़ा ही है। हमने इन सीधे-सादे हवाईयन लोगों के साथ जो चार दिन बिताये, वे कभी भुलाये नहीं जा सकते।

होनोलुलू प्रशान्त महासागर के दक्षिणी हिस्से के एक छोटे-से टापू 'ओआहु' में बसा हुआ एक खूबसूरत नगर है। होनोलुलू में ही पर्ल हार्बर भी है, जहाँ जापान ने बम गिराया था। होनोलुलू पहुँचते ही वहाँ की 'हुला' वालाओ ने हमारे गले में 'लेई'—माला पहनायी तथा 'अलोहा' कहकर हमें बाँहों में भर लिया। अतिथियों के स्वागत का यह निराला ही तरीका है। ग्रास-स्कर्ट कमर में, एक चोली-सी स्तनों पर, एक फूलमाला गले में—यही थी उन 'हुला' किगोरियों की वेप-भूषा। वैसे यहाँ की स्त्रियाँ जो वेप-भूषा आमतौर पर पहनती हैं, उसे 'मुमु' कहा जाता है।

पर्यटकों की होनोलुलू में भारी भीड़ रहती है। हमने 'वाइकिकि' समुद्र-तट पर इन पर्यटकों की बड़ी संख्या में देखा। तीन-चार लाख पर्यटक यहाँ पर प्रतिवर्ष आते हैं और हवाईयन लोगों को १०-१५ करोड़ डालर की आमदनी प्रतिवर्ष होती है। फलों और फूलों की इतनी बहुतायत है कि ससारभर का डिब्बों में भरा हुआ ७५ प्रतिशत अनन्तम हवाई द्वीप-समूह में तैयार होता है।

सन् १८९८ तक हवाई द्वीप का प्रशासन स्थानीय राजा द्वारा होता था। उसके बाद यह द्वीप संयुक्तराज्य अमेरिका के मातहत हो गया। सन् १९५९ से इस द्वीप को अमेरिका का पचासवाँ राज्य घोषित कर दिया गया।

होनोलूलू में हम लोग क्वेकर-भवन में ठहरे थे । हमारा कार्यक्रम रेडियो पर हुआ था तथा कुछ सभाएँ भी आयोजित हुई । होनोलूलू का एक विशिष्ट स्थान है : 'ईस्ट वेस्ट सेटर ।' इस सेटर में दक्षिण-पूर्व एशिया के विद्यार्थियों को पढ़ने के लिए अमेरिकी सरकार विग्रेप रूप से सहायता करती है । भवन बहुत सुन्दर है और अन्य व्यवस्था भी काफी अच्छी है । होनोलूलू से हम जापान की ओर रवाना हुए । ●



पूर्व और पश्चिम की  
समन्वय-भूमि...

**जापान** में



मे तीन-चार महीने रहने, टोकियो से हिरोशिमा की पदयात्रा करने और जापान के शान्ति-आन्दोलन को देखने, समझने और उसे मदद पहुँचाने की बात भी हमारे सामने रखी। इसलिए हमने अपने शान्तिवादी साथियों का निमंत्रण स्वीकार किया और जापान जाने का निश्चय कर लिया।

जापान के लिए रवाना होते ही मैं जापान की परिश्रमी और विनीत जनता के बारे में सपने सँजोने लगा। हमारे विमान की परिचारिकाओं में एक जापानी बहन भी थी। उसकी नम्रता, सेवा, तत्परता और मुस्कराहट दूसरी सभी परिचारिकाओं से उसे भिन्न कर रही थी। यो मन-ही-मन जापान के चित्र खींचते हुए हम टोकियो के अन्तर्राष्ट्रीय हवाई अड्डे पर पहुँचे। विमान से उतरते ही रेडियो और टेलीविजन-वालों ने और पत्र-पत्रिकाओं के संवाददाताओं ने हमें घेर लिया। उनसे छुट्टी पाकर जब हम हवाई अड्डे के बाहर आये, तो जापान बौद्धसंघ, एफ. ओ. आर. ( फेलोशिप ऑफ रिकन्सिलिएशन ), अनार्किस्ट सोसाइटी और डबल्यू. आर. आई. के साथियों ने हमारा स्वागत किया।

विश्व के इस सबसे बड़े शहर में पहुँचते ही एक विशेष परिवर्तन दीख पड़ा। पूर्व और पश्चिम में जो अन्तर है, वह अन्तर स्पष्ट नजर आया। एक बार तो ऐसा लगा, मानो हम वापस कलकत्ता ही पहुँच गये हो। टोकियो की भयंकर भीड़ को देखकर तो कोई भी चकित हुए बिना नहीं रहेगा। मनुष्यों के ऐसे जंगल में रहने से मानवीय स्पर्श कैसे जीवित रहेगा ? शहर की रेलों में सुबह-शाम सफर करने का मौका पड़े, तो 'सेडविच' की भोंति हमारा पिच जाना मामूली बात है।

टोकियो के शान्तिवादी लोगों की एक सभा हुई और उन लोगों ने मिलकर 'शान्ति-यात्रा सहायक समिति' का निर्माण किया। डबल्यू. आर. आई. और उसके प्रमुख नेता श्री सिराई शिम्पे ने पूरी जिम्मेदारी के साथ इस समिति को चलाने का भार उठाया। एक सप्ताह का समय टोकियो में बिताकर हमने अपनी पदयात्रा प्रारम्भ की। अनेक शान्तिवादी

लोग जुलूस बनाकर पूरे शहर में हमारे साथ चले। जापान ही एक ऐसा देश है, जहाँ के लोग अणुबम की भयंकरता के मुक्तभोगी हैं। हिरोशिमा और नागासाकी से निकली हुई भयावह ज्वाला को अभी भी जापान के लोग भूले नहीं हैं। इसलिए हमारी यात्रा को असाधारण समर्थन प्राप्त हो, यह जापानी लोगों की भावना के अनुकूल ही था।

द्वितीय महायुद्ध के सैनिक श्री रिओबुइचिरो ने तय किया कि वे टोकियो से हिरोशिमा की ७०० मील की यात्रा में पूरे समय तक हमारे साथ रहेंगे। हिंसक सेना का एक सिपाही शान्ति की सेना का सैनिक बन जाय, इस घटना का विशेष महत्त्व था। इसी प्रकार अमेरिका की श्रीमती मेरी हार्वी भी विशेष रूप से अमेरिका से हमारी यात्रा में पूरे समय साथ रहने के लिए जापान पहुँची। सन् १९४५ में अमेरिका का एक विमान-चालक अणुबम गिराने के लिए जापान आया और लाखों लोगों को हिंसा की आग में झुलसाकर चला गया। उसी देश की एक सुकुमार बहन ने अपने पैरों के छालों की परवाह न करते हुए ७०० मील पैदल चलकर उस पाप का प्रायश्चित्त किया। हमें प्रसन्नता है कि न्यूयार्क-वाशिगटन की पदयात्रा में जो दो युवक हमारे साथ रहे थे, वे अब वाशिगटन से नयी दिल्ली की शान्ति-यात्रा पर चल पड़े हैं। इसी तरह अमेरिकी शान्ति-आन्दोलन की एक प्रतिनिधि बहन का पदयात्रा के लिए जापान आना विशेष महत्त्व की बात थी।

हमारी पदयात्रा ने जापान के लोगों में रुचि पैदा की। विश्वविद्यालय की दो छात्राएँ भी हमारे साथ चली। कुमारी सुएको के पैरों में छाले पड़ गये। तेज धूप का प्रभाव उसके कोमल शरीर पर ऐसा पड़ा कि होठों तथा हाथों की चमड़ी उधड़ने लगी और फटोले पड़ गये। इन छात्राओं की तपस्या देखकर सुझे नतमस्तक हो जाना पड़ा। पीठ पर सामान लादकर सुबेरे ९ बजे से शाम को ५ बजे तक १२ से १५ मील की दूरी रोज तय करना और फिर रात को प्रतिदिन सभाओं में भाग लेना, भाषण देना, चर्चा करना और अनुवादक का काम करना

यह सब आसान काम नहीं। हर शहर में तो सभा के लिए कोई-न-कोई अच्छा दुभाषिया मिल जाता था, परन्तु बाकी चर्चाओं के लिए ये बहने ही दुभाषिया बनती थी।

प्रत्येक शहर में नगरपालिका के अध्यक्ष हमारा स्वागत करते थे। नगरपालिका के अन्य सदस्यों से भेंट होती थी। नगरपिता हमें अच्छे-अच्छे उपहार भेंट करते थे। अनेक स्थानों पर 'लेबर यूनियन' के लोगो के साथ भी मुलाकात होती थी। जापान का सुप्रसिद्ध श्रमिक-संगठन 'सोह्यो' अणुअस्त्र विरोधी आन्दोलन में बहुत सक्रिय है। इसलिए इस संगठन के लोग हमारे कार्य में विशेष रूप से रुचि प्रकट करते थे।



जापान का शान्ति-आन्दोलन अणुअस्त्र विरोधी मात्र है। उसमें तीन दल हैं। एक की रस्सी पेकिंग से बंधी है। दूसरा दल मास्को और पेकिंग से बंधा न होने पर भी अहिंसा और सम्पूर्ण युद्ध के निषेध की भूमिका में विश्वास नहीं करता। तीसरा दल मुख्य रूप से छात्रों का दल है, उसका प्रभाव सीमित है। इस तरह जापान का आन्दोलन राजनैतिक-दलों द्वारा दमित है, यह कहना अत्युक्ति नहीं होगी। हम जहाँ भी जाते

थे, प्रतिदिन हमसे इस फूट के बारे में पूछा जाता था। हमारा दृष्टिकोण तो यही रहता था कि राजनैतिक गुटबन्दी से ऊपर उठकर सैद्धान्तिक भूमिका के साथ स्वतन्त्र शान्ति-आन्दोलन की रचना करनी चाहिए। डब्ल्यू. आर. आई. जैसी संस्थाएँ छोटी हैं और प्रभावशाली नहीं हैं। इन संस्थाओं को प्रभावशाली बनाने की जरूरत है।

जापान की यात्रा करते समय जिस चीज ने मुझे वेहद प्रभावित किया, वह है इस देश की प्रगतिशीलता। जीवन में, सामाजिक सम्बन्धों में और रुढ़िवादी रीति-रिवाजों में एक जबरदस्त परिवर्तन यहाँ हो रहा है। मजहरी कट्टरता के बन्धन टूट रहे हैं और स्त्री-पुरुषों के सम्बन्धों में नया दृष्टिकोण बन रहा है। 'हमारेपन' को उत्कृष्टता का झूठा गर्व जापान में बहुत था, परन्तु वह तेजी के साथ बदल रहा है। छोटे-छोटे खेतों में कड़ी मेहनत से काम करनेवाले किसानों के जीवन से हम बहुत कुछ सीख सकते हैं। जापान का हर घर एक कारखाना है, यह कहना मुनासिब ही होगा। छोटे पैमाने के इन उद्योगों ने जापान के लोगों को एशिया का सर्वाधिक समृद्ध देश बना दिया है। भारत के हम लोग जब तक अपने जड़-संस्कारों को नहीं बदलेंगे, नया दर्शन और नये मूल्य स्थापित नहीं करेंगे, तब तक हमारे समाज का परिवर्तन सम्भव नहीं। समाज को बदलने के लिए मनुष्य को ही बदलने की जरूरत है।

## गजब का देश



दूसरे लोगों की तरह मेरी भी यह धारणा थी कि जापान भूकम्पों का देश है। जापान जाने की बात उठते ही मन में यह आगका पैदा होती थी कि जिस छोटे-से द्वीप में हर साल पन्द्रह मौ बार भूकम्प के धक्के लगते हैं, वहाँ की यात्रा करना कितना विचित्र होगा? वहाँ के लोग कैसे होंगे? वहाँ के मकान कैसे होंगे? पर जब ३० हजार फुट की ऊँचाई से हमारा 'पानआम' विमान जापान की भग्नी पर उतरा

तब मन पर पहला प्रभाव यही पड़ा कि यह भूकम्पो का ही नहीं, अनुपम सुन्दरता का भी देश है। प्राकृतिक सुन्दरता और मानवीय सुन्दरता का यह देश 'सूर्योदय का देश' कहलाता है। 'फूजी' पर्वत के प्राकृतिक वैभव के सामने मैं नतमस्तक हो गया। जापान के सबसे बड़े ज्वालामुखी पर्वत 'आसो' पहुँचकर वहाँ की भयङ्करता के सामने मैं स्तम्भित रह गया। एक ओर सागर, दूसरी ओर पर्वत के बिना जापान का कोई चित्र ही नहीं खिचता।

हमारी यात्रा केवल यात्रा ही नहीं हुई, उसमें अध्ययन और अध्यापन भी हुआ। इस यात्रा से मुझे एक मुक्त दृष्टिकोण मिला। इस यात्रा में बदलते हुए जापान को मैंने नजदीक से देखा। एशिया का यह छोटा-सा देश एटम बम छोड़कर ससार की शायद हर चीज बनाता है। नये-नये ढंग, नये-नये तरीके अपनाकर ही जापान ने यह प्रगति की है। जापान के लोगो ने अपने स्वत्व को भी सुरक्षित रखा और दुनिया के कोने-कोने से सीखने लायक बातें सीखी। द्वितीय महायुद्ध के बाद यहाँ के सामाजिक दृष्टिकोण में बुनियादी परिवर्तन आ गया है।

## हजामत और स्नान



जापान की स्त्रियाँ खूबसूरत रंग-विरंगे 'किमोनो' पहनकर, सज-धजकर केवल घर में नहीं बैठती, वे जीवन के हर क्षेत्र में पुरुषों के साथ कदम मिला रही हैं। होटलो और रेस्तराँओं पर तो उनका एकाधिकार ही है। इनके अलावा दूकानों पर सामान बेचने से लेकर बस संचालन तक के कामों में स्त्रियों का ही राज है। हजामत बनानेवाली भी स्त्रियाँ ही मिलेंगी। जापान में आप बाल काटने की दूकान पर जाइये। सुन्दर तरुणी मुस्कराकर आपका स्वागत करेगी। फिर आप बहुत ही आरामदेह कुर्सी पर बैठकर हजामत बनवाइये। एक घण्टे तक आपके बाल कटेगें, शेम्पू से सिर बुलेंगा, मालिश-चम्पी होगी। इस तरह आपकी

सारी थकान दूर हो जायगी। हजामत के बाद यदि आप सार्वजनिक स्नानागार में स्नान करने का भी आनन्द उठा सके, तो कहना ही क्या ?

सार्वजनिक स्नानागार में एक बड़े हाल में गरम पानी का बड़ा-सा हौज होता है। इस हौज में पचासो लोग एक साथ नंगे होकर स्नान करते हैं। ५०-६० साल पहले तक तो स्त्रियाँ और पुरुष एक ही साथ इस हौज में नगे स्नान करते थे। अब भी होक्कायदो प्रान्त में कहीं-कहीं ऐसे स्नान-घर हैं। वरना साधारण तौर पर स्त्रियाँ और पुरुष अलग-अलग नहाते हैं। स्त्रियों और पुरुषों के स्नान-घर के बीच एक पतली-सी दीवार होती है। पैसे लेने के लिए एक महिला खिड़की पर बैठी होती है, वही दोनों ओर के स्नान-घरों की सँभाल करती है। स्नान करनेवाले पुरुष नगे ही इस महिला के सामने रहते हैं और कभी-कभी तो वह तौलिया अथवा साबुन देने के लिए स्नान-घर में भी पहुँच जाती है।

पहली बार तो ऐसे सार्वजनिक स्थान में सबके सामने नगे होकर नहाने में बड़ा संकोच मान्द्रम देता है, पर धीरे-धीरे इसका अभ्यास हो जाता है। आम जापानी लोगों को तो बचपन से ही यह आदत होती है, इसलिए उनके मन में तो इस बारे में कोई विकार ही पैदा नहीं होता। ये स्नान-घर बहुत स्वच्छ, सुन्दर और फूलों से सजे-सजाये रहते हैं। फूलों की सजावट जापानी जीवन का विशेष अंग है। वहाँ के शौचालयों तक में फूलों के गमले रहते हैं। जापानी जनता का प्रकृति-प्रेम तथा पुष्प-प्रेम विश्व-प्रसिद्ध है।

छोटी आँखें, दबी नाक, उभरे गाल, चौड़े तलाट और टिगने बढ-वाले जापानी लोगों में नम्रता, सरलता और मिलनसारिता कूट-कूटकर भरी रहती है। यो मानव-स्वभाव सभी देशों में समान-रूप में उत्तम है, पर सामान्य जापानी नागरिक के स्वभाव में जैसी नम्रता है, उगने अपना विशिष्ट प्रभाव मुझ पर डाला। दोनों घुटने टेककर, गिर जमीन पर रखकर प्रणाम करने का और झुक-झुककर विदा होने का जापानी ढंग अपनी निराली शान रखता है। आपने यदि जिन्नीकी गेटी-गी भी

मदद की, तो धन्यवादों से आपकी झोली भर दी जायगी। आमतौर पर मेहनती और ईमानदार जापानी लोग खेती और उद्योगों में यूरोपीय देशों को भी पछाड़ते हुए आगे बढ़ रहे हैं। यदि हम जापान को एशिया का सर्वाधिक समृद्ध देश कहें तो अतिशयोक्ति न होगी। यद्यपि जापान हर तरह का कच्चा माल बाहर से मँगाने के लिए मजबूर है, तथापि हर घर उद्योगों की क्रीड़ा-भूमि बनता जा रहा है। आकर्षक और सस्ता सामान तैयार करने में जापान का मुकाबला कोई नहीं कर सकता। जेबघड़ी जैसे छोटे रेडियो, टेप रिकार्डर और कैमरे जापान की अद्भुत विशेषता हैं। घरों की कौन बात करें, कारों और टैक्सियों में टेलीविजन लगे हैं। युद्ध के बाद जापान की आम जनता का जीवन-स्तर तेजी के साथ ऊपर उठा है। इसके कई कारण हैं, पर सबसे बड़ा कारण है खेती और घरेलू उद्योगों को दिया गया महत्त्व। जापान की बुनियाद खेती पर खड़ी है और यह बुनियाद काफी मजबूत है। हमारे भारतवर्ष में बड़े-बड़े उद्योगों का महल अविकसित खेती की कमजोर बुनियाद पर खड़ा किया गया है। यह महल देखने में कितना ही सुन्दर लगता हो, पर मजबूत बुनियाद के अभाव में उसके कभी भी गिर पड़ने का खतरा है। खेती, उद्योग, व्यापार और शिक्षा की बहुत कुछ जिम्मेदारी स्थानीय नगरपालिकाओं पर है। जापान की नगरपालिकाओं का कार्य केवल पानी, बिजली और सफाई तक ही सीमित नहीं है, उन पर पूरे नगर के सर्वांगीण विकास का उत्तरदायित्व रहता है, यहाँ तक कि पुलिस-विभाग भी नगरपालिका के अन्तर्गत है। जापानी भाषा में नगरपालिका को 'शिया कुगो' कहते हैं, जिसका अर्थ होता है—'नगर की सरकार'। खेती और उद्योगों के विकास की बुनियादी जिम्मेदारी नगर की सरकारों पर है।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि सारे संसार में नगरों के विस्तार का जो तूफान आया है, उससे जापान भी अछूता नहीं है। गाँव के लोग तेजी से शहरों की ओर दौड़ रहे हैं। आज हालत यह है कि ७० प्रतिशत

लोग ग्रहरो में पहुँच गये हैं और केवल ३० प्रतिशत लोग गाँवों में बचे हैं। परिणामस्वरूप शहरों पर आबादी का भारी दाव है, जिसे संभाल पाना कठिन हो रहा है। जिन दिनों मैं टोकियो में था, टोकियो के लोगों को भयंकर जल-संकट का सामना करना पड़ रहा था। जापान की रेलें अपनी कुशलता और तेज रफ्तार के लिए विख्यात हैं। इस छोटे-से द्वीप में अधिक सड़कें और रेलें बिछाने के लिए स्थान नहीं है। रेलों पर सड़कें, सड़कों पर रेलें, इस तरह कई मजिलें बनाकर स्थान बचाया जा रहा है। पहले तो आबादी के मुकाबले यह द्वीप ही छोटा है, फिर जो है, वह भी पहाड़ों से भरा है। चतुर एवं परिश्रमी जापानी किसानों ने पहाड़ों को भी कृषि-भूमि में परिवर्तित कर लिया है। फिर भी नगरीकरण एक समस्या बनती जा रही है। इन शहरों में भारी उद्योग हैं, इसलिए वहाँ पर न खुली हवा है, न खेत और खलिहान ही। चारों ओर गन्दगी, भीड़ और शोरगुल। ट्रकों और गाड़ियों की भड़-भड़ के कारण नगरों की हालत वही है, जो हमारे कलकत्ता आदि शहरों की है।

हमारे जापान-प्रवास के दिनों में टोकियो, ओसाका आदि बड़े शहर 'ओलम्पिक' की तैयारियों में नव-शृंगार कर रहे थे। टोकियो शहर के नीचे 'भू-गर्भ रेलें' बिछ रही थी। टोकियो शहर से हवाई अड्डे तक अपने ढंग की अद्वितीय 'मोनोरेल' बनी है। इसी तरह ओसाका से टोकियो तक करीब चार सौ मील तक एक नयी रेल लाइन बनी है, जो १२५ मील प्रति घण्टे की रफ्तार से दौड़ा करेगी। यह रेल दुनिया की सबसे तीव्र गतिवाली रेल होगी। इसी तरह नये-नये होटलों का भी तेजी से निर्माण हुआ है। जापानी पद्धति के इन होटलों में पलंग, तकिया, सोफा, कुर्सी, टेबुल आदि नहीं होते। खूबसूरत चटाइयों पर गद्दियाँ बिछाकर बैठना और सोना। 'हागी' लकड़ी की चापस्टिक से, छुरी-कॉटा से नहीं, भोजन करना भी विशेष आनन्द देता है। जापानी भोजन अत्यन्त स्वादिष्ट होता है। जापानी भोजन में मछली का प्राधान्य रहता है। इसलिए मुझ जैसे शाकाहारी को थोड़ी दिक्कत स्वाभाविक थी, लेकिन



मदद की, तो धन्यवादों से आपकी झोली भर दी जायगी। आमतौर पर मेहनती और ईमानदार जापानी लोग खेती और उद्योगों में यूरोपीय देशों को भी पछाड़ते हुए आगे बढ़ रहे हैं। यदि हम जापान को एशिया का सर्वाधिक समृद्ध देश कहे तो अतिशयोक्ति न होगी। यद्यपि जापान हर तरह का कच्चा माल बाहर से मँगाने के लिए मजबूर है, तथापि हर घर उद्योगों की क्रीड़ा-भूमि बनता जा रहा है। आकर्षक और सस्ता सामान तैयार करने में जापान का मुकाबला कोई नहीं कर सकता। जेबघड़ी जैसे छोटे रेडियो, टेप रिकार्डर और कैमरे जापान की अद्भुत विशेषता हैं। घरों की कौन बात करे, कारों और टैक्सियों में टेलीविजन लगे हैं। युद्ध के बाद जापान की आम जनता का जीवन-स्तर तेजी के साथ ऊपर उठा है। इसके कई कारण हैं, पर सबसे बड़ा कारण है खेती और घरेलू उद्योगों को दिया गया महत्त्व। जापान की बुनियाद खेती पर खड़ी है और यह बुनियाद काफी मजबूत है। हमारे भारतवर्ष में बड़े-बड़े उद्योगों का महल अविकसित खेती की कमजोर बुनियाद पर खड़ा किया गया है। यह महल देखने में कितना ही सुन्दर लगता हो, पर मजबूत बुनियाद के अभाव में उसके कभी भी गिर पड़ने का खतरा है। खेती, उद्योग, व्यापार और शिक्षा की बहुत कुछ जिम्मेदारी स्थानीय नगरपालिकाओं पर है। जापान की नगरपालिकाओं का कार्य केवल पानी, बिजली और सफाई तक ही सीमित नहीं है, उन पर पूरे नगर के सर्वांगीण विकास का उत्तरदायित्व रहता है, यहाँ तक कि पुलिस-विभाग भी नगरपालिका के अन्तर्गत है। जापानी भाषा में नगरपालिका को 'शिया कुशो' कहते हैं, जिसका अर्थ होता है—'नगर की सरकार'। खेती और उद्योगों के विकास की बुनियादी जिम्मेदारी नगर की सरकारों पर है।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि सारे ससार में नगरों के विस्तार का जो तूफान आया है, उससे जापान भी अछूता नहीं है। गाँव के लोग तेजी से शहरों की ओर दौड़ रहे हैं। आज हालत यह है कि ७० प्रतिशत

में हजारों मुर्दे बह रहे थे। ट्रकों में हजारों मुर्दे भरकर हिरोशिमा को बड़ी मुश्किल से साफ किया गया।

जापान का राष्ट्रीय सविधान अनूठा है। वह 'शान्ति-सविधान' के नाम से प्रसिद्ध है।

जापान के कई विश्वविद्यालयों ने हिन्दी-शिक्षण की ओर विशेष रूप से ध्यान दिया है। भारत में तो कम ही विश्वविद्यालयों में जापानी भाषा की शिक्षा का प्रबन्ध है, पर टोकियो विश्वविद्यालय तथा ओसाका विश्व-विद्यालय में हर साल पचासों छात्र हिन्दी परीक्षाओं में उत्तीर्ण होते हैं। हिन्दी भाषा के प्रति जापान में इतना ध्यान दिया जा रहा है, इसकी हमें कल्पना भी नहीं थी। हम भारत में अंग्रेजी पर इतना ज्यादा जोर देते हैं कि अन्य विदेशी भाषाओं और खासतौर से एशियाई भाषाओं की प्रायः उपेक्षा हो जाती है। इसीलिए आज एशियाई देशों से भारत का सम्बन्ध बढ़ाने की तरफ ज्यादा ध्यान देने की जरूरत है। मैंने ७०० मील की पदयात्रा तथा कई हजार मील की रेल-यात्रा करके जापान को खूब देखा और समझा। ७५ दिन का समय ज्यादा नहीं होता। पर मुझ जैसे पृथ्वी-परिक्रमा करनेवाले के लिए यह समय बहुत कम भी तो नहीं।

## हिरोशिमा-दिवस



६ अगस्त और ९ अगस्त १९४५ ऐतिहासिक वर्षरता के दिन हैं। चन्द्र पल्ले में हिरोशिमा और नागासाकी के हजारों मनुष्यों को भयङ्कर आणविक ज्वाला में भस्मसात् कर दिया गया। निरपराध और निरीह बाल-बच्चे, स्त्री-पुरुष युद्ध-पिपासु कमाण्डरों की निर्दय हिंसा की अग्नि में झोक दिये गये। दुःख तो यह है कि इस करुणाहीन घटना के बावजूद युद्ध के निकम्मेपन को इन्सान ने नहीं समझा।

१९ साल पहले जो घटना घटी, उससे कहीं बढ़-चढ़कर आज युद्ध की ज्वाला फूट सकती है, क्योंकि आज भी विश्व की शक्तियाँ अणु-अन्त्रो

हमारी सहयात्री अमेरिकी बहन मेरी हार्वी तो ऑसुओ में नहा रही थी। किसी अमेरिकी शान्तिवादी का ऐसे अवसर पर भावुक बन जाना स्वाभाविक है। हम सहज ही कल्पना कर सकते हैं कि ऐसी स्थिति में श्रीमती मेरी बहन की मनोदशा क्या हो सकती है? उसके ऑसुओ की धारा देखकर तथा टोकियो से हिरोशिमा की उसकी पद-यात्रा का इतिहास जानकर तो पत्रकार तथा टेलीविजन के कैमरे मुस्तैदी के साथ श्रीमती मेरी की ओर झुक गये। नागरिकों की इस सभा के बाद १५ मिनट तक टेलीविजन पर हमारा कार्यक्रम रखा गया और यह कार्यक्रम 'हिरोशिमा-दिवस' के विशिष्ट कार्यक्रम के रूप में सारे जापान में प्रसारित किया गया।

पिछले साल यहाँ की अणु-विरोधी सस्था 'गेनसुइ क्यो' में जो दो दल हो गये थे, उनमें एक दल को कम्युनिस्ट दल का समर्थन प्राप्त है और दूसरे दल को समाजवादी दल का। जापान की कम्युनिस्ट पार्टी पीकिंग-ब्रॉड कम्युनिज्म की समर्थक है और रूस-अमेरिकी शान्ति-प्रयत्नों में विश्वास नहीं करती। कम्युनिस्ट समर्थित 'गेनसुइ क्यो' का वार्षिक सम्मेलन इस बार हिरोशिमा में न होकर टोकियो तथा क्योटो शहर में हुआ। सम्मेलन में अनेक तरह के विवाद पैदा हुए। इसलिए रूस, भारत आदि के कुछ प्रतिनिधि-मण्डलों ने इस सम्मेलन का बहिष्कार किया और समाजवादी समर्पित 'गेनसुकीन' के सम्मेलन में भाग लिया। यह सम्मेलन हिरोशिमा में आयोजित हुआ था।

जापान में स्वतन्त्र तथा निष्पक्ष शान्ति-आन्दोलन की अत्यन्त आवश्यकता है। हिरोशिमा के कुछ निष्पक्ष लोगो ने 'शान्ति-अध्ययन सघ' की स्थापना की है। यहाँ के लोगो को इस सघ से बड़ी उम्मीदें हैं। इस सघ की ओर से इसी वर्ष एक प्रतिनिधि-मण्डल अमेरिका, यूरोप तथा रूस की यात्रा कर आया है। इस प्रतिनिधि-मण्डल में अधिकतर अणुबम-पीडित, जिसे जापानी भाषा में 'हिवाकुगा' कहते हैं, भाई-बहनें थीं। यह संघ अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति-आन्दोलनों में सम्बन्ध बढ़ाने

के प्रयत्न में भी है। हिरोगिमा में डब्ल्यू. आर. आई. के कुछ सदस्य भी निष्पक्ष और लगनशील हैं। यदि शान्ति-अध्ययन संघ और डब्ल्यू. आर. आई. के लोग मिलकर शान्ति-आन्दोलन का नेतृत्व करें, तो सारे विश्व के शान्ति-आन्दोलन को सबल नेतृत्व प्राप्त होगा। अभी शान्ति-संस्थाएँ अपने-आपको छोटी और कमजोर महसूस करने के कारण आगे नहीं बढ़ पा रही हैं, ऐसा लगता है।

जापान-बौद्ध-संघ की ओर से भी कुछ शान्ति-प्रवृत्तियाँ चलती हैं। पर जापान-बौद्ध-संघ एक धार्मिक सम्प्रदाय है, इसलिए अपने सम्प्रदाय के बाहर उसका प्रभाव नहीं के बराबर है। कुछ शान्ति-संस्थाओं के लोगों को भी जापान-बौद्ध-संघ के साथ निकट सम्पर्क जोड़ने में संकोच होता है। उन्हें इस बात का भय है कि “अगर हम इन बौद्ध-संघ के भिक्षुओं के साथ अधिक सम्पर्क रखेंगे, तो हम पर भी धर्म की चिप्पी लग जायगी।”

जापान-बौद्ध-संघ के प्रमुख फूजीजी गुरुजी के साथ हम लोग तीन दिन तक रहे। एक शान्ति-स्तूप के उद्घाटन-समारोह में भी हमने भाग लिया। फूजीजी गुरुजी के अलावा श्री मरियामाजी और श्री इमाईजी के शुद्ध हृदय से निकली हुई बातों ने हमें बहुत प्रभावित किया।

वापस भारत की ओर



ये जापान के प्रवास के साथ हमारी विश्व-यात्रा पूरी हुई। एक फ्रेंच जलयान ‘वियतनाम’ में हम लोग भारत के लिए रवाना हुए।

हॉगकॉंग में हमारा जहाज दो दिनों तक रुका। हॉगकॉंग दो हिस्सों में बँटा हुआ है। एक हिस्सा चीन की मुख्य भूमि के साथ ही लगा हुआ है और दूसरा हिस्सा समुद्र के बीच एक छोटे-से टापू के रूप में है। यह एक करमुक्त पोर्ट होने के कारण यहाँ हर प्रकार की चीजें काफी सस्ते दामों में मिल जाती हैं। अभी भी हॉगकॉंग ब्रिटिश उपनिवेश है।



आप लोग जब य  
ऐसा नहीं लगता  
लता के साथ सम्पन्न  
करके दिखा दिया ।

आपकी यात्रा की क  
काश । मैं फिर से  
को शांति के रास्ते  
करते हुए इस भू-  
गांधी के देश भारत  
होना सम्भव है ।